

कषाय-मुक्ति

(सुगम मोक्ष मार्ग)

लेखक

स्व. प्रतापचन्द्रजी भूरा

:: प्रकाशक ::

चैन रूप भूरा

ललवाणी मौहल्ला, नई लेन

गगाशहर (बीकानेर)

पुस्तक	कषाय-मुक्ति (सुगम मोक्ष मार्ग)
लेखक	स्व प्रतापचन्दजी भूरा
प्रकाशक	चैन रूप भूरा
प्रथम अनावरण	अगस्त, 2006
मुद्रक	सुराणा उद्योग, यीकानेर 0151-30325355, 24212017

प्राप्ति स्थान
चैनरूप भूरा
 ललवाणी मौहल्ला, नई लेन
 गंगाशहर (यीकानेर)
 फोन 0151-2272964

प्राक्कथन

भारतीय सस्कृति के विविध आयामों में कषाय मुक्ति के आयाम पर प्रवलतम बल दिया गया है। अनन्त की यात्रा में सायन्त्रिक को प्रेरित किया है कि अगर तुम्हे जीवन को सर्वोपरि बनाना है तो सर्व प्रथम तू कषाय से विमुक्त बन। जब तक कषाय की शृंखला से आबद्ध है तब तक अपने मुख्य मुकाम अर्थात् लक्ष्य को साध नहीं सकता।

रामचरित्र मानस के प्रणेता गोस्वामी तुलसी ने भी क्या सटीक कहा है कि—

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुँ ओर।

वशीकरण इक मत्र है, परिहर वचन कठोर॥

ससार एक अजायवधर है जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोग रहते हैं। वे अपनी वृत्ति/व्यवहार के द्वारा सुख-दुख की परिणति को प्राप्त करते हैं। यदि इन काषायिक वृत्तियों का परिहार करदे तो व्यक्ति स्वर्गिक छटा से अनुप्राणित होकर अपने गन्तव्य तक पहुँचने में सफल हो सकता है।

आगम में कषाय के विषय में विश्लेषण करते हुए बताया है कि देशोन कोटि (करोड़ वर्ष) पर्यन्त की गई तपश्चरण रूप क्रिया व चरित्र का जिस रूप में उपार्जन किया वह एक मुहूर्त काल तक की गई कषाय से नष्ट हो जाती है। इसलिए वेयक्तिक जीवन में काषायिक परिणति से दूर रहना चाहिए।

सदा समभाव की अवस्था में विचरण करते हुए लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास करना चाहिए। अन्यत्र भी कहा गया है कि—

प्रथमे य शान्त, ते शान्त मे मति।

धातुक्षीयमानेषु शान्त को न जायते॥

इन पुस्तकों में इन अवगुणों को छोड़ने के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से साधना करने की विधियों पर प्रकाश डाला गया है। जैनागमों में स्वाध्याय-तप में विविधता को बहुत महत्त्व दिया गया है। अतः पुस्तक में कुछ बातों की विविधता दृष्टिगोचर हो रही है जो कि साधना का एक अग है।

धर्म कोविद, तत्त्वज्ञ श्रीमान् प्रतापचन्द्रजी सा भूरा ने इन पुस्तकों स्वयं जीवनपर्यन्त साधना करके अपने मौलिक अनुभव के आधार पर लिखा है, अत ये आत्मा को छूती है। इनको पढ़ना, इनका स्वाध्याय दर्शन उन जीवन की प्रवृत्तियों में इनका समायोजन करना कर्मों के नारा में प्रातः सहायक है।

आज मानसिक तनाव से पीड़ित समाज के लिये ऐसी ही पुस्तकों महती आवश्यकता भी है जो अवगुणों को दूर करने एव मानसिक तनाव हटाने से अपनी अह भूमिका अदा कर सकती है।

इन पुस्तकों की उपयोगिता इस बात से प्रमाणित होती है कि इनमें से 'समता-जीवन', 'ध्यान एक अनुशीलन', 'कषाय मुक्ति' पहला भाग और 'कषाय मुक्ति' दूसरा भाग धार्मिक परीक्षा वोर्ड के भूषण परीक्षा पाठ्यक्रम में समता विभूति आचार्यश्री नानेश की कृपा से रखी गई।

कषाय और अन्य अवगुणों से मुक्त होने के लिए क्षमा, शिरो सत्याचरण, लोभ-मुक्ति आदि गुण प्राप्त करने के लिए कषाय-मुक्ति पुस्तकों को केवल पढ़ना ही काफी नहीं है, किन्तु इन पुस्तकों की महंगी कुछ महीनों तक प्रतिदिन निरन्तर स्वाध्याय करना आवश्यक है। पाठ्यक्रम की सुविधा के लिए समग्र पुस्तकों की सामग्री इसी एक पुस्तक में उपलब्ध करदी गई है।

विश्वास है कि पाठकों को यह पुस्तक 'समता आदारा' शिखर की ओर बढ़ाने के लिए स्फटिक-सोपानों की भौति 'कषाय-मुक्ति' का मार्ग सुझाएगी।

भगवान महावीर ने अपनी मूलवाणी में भी कहा:-

कसिणा कसाया सिचन्ति, जीवस्तु पुणव्यवस्तु।—उत्तरायान

कषाय ही हमारे पूर्व भवों के आधार पर आगामी उग्रा रहे। तैयार करते हैं। अत इनका परित्याग कर हम सिद्धि नामकों प्राप्त करते हैं। यही पुस्तक का लक्ष्य है। सुझा पाठक इससे लाभान्वित होगा।

मध्यम

दिनांक : 05-08-2006

बोथरा चौक, गंगाशहर

प्रकाशकीय

उक्त प्रकाशन वरिष्ठ लेखक निष्ठावान प्राध्यापक और साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के सयोजक / पंजीयक स्व प्रतापचन्द्रजी भूरा की इन कृतियों/पुस्तकों का सग्रह है—कषाय मुक्ति प्रथम भाग (समता आचरण, सुवोध मोक्ष-मार्ग), द्वितीय भाग (कषाय-मुक्ति एक विवेचन), तीसरा भाग एवं चौथा भाग (धर्म कथा द्वारा स्वाध्याय व तप), पाँचवाँ भाग (स्वाध्याय-सग्रह मोक्ष-मार्ग), छठा भाग (धर्म विचार सार), सातवाँ भाग (दोष मत दो निमित्त को), आठवाँ भाग (सिद्ध पद प्राप्ति की साधना), नौवाँ भाग ('समीक्षण ध्यान' मेरी दृष्टि में), दसवाँ भाग (अभ्य वन्नूंगा, सिद्ध बन्नूंगा) ग्यारहवाँ भाग (मोक्ष मार्ग का पथिक), बारहवाँ भाग (कषाय व मोह छोड़ने के उपाय) एवं ध्यान एक अनशीलन।

पुरत्तके सर्वसाधारण पाठको द्वारा उंपयोगी समझी गई है व इनकी मौग भी काफी रही इसलिए समय-समय पर धर्मनिष्ठ सुश्रावको तथा श्री साधुमार्गी जैन सघ गगाशहर-भीनासर द्वारा इनका प्रकाशन कराया जाता रहा, जिनका विवरण इस प्रकार है—प्रथम भाग, प्रथम सस्करण, मई 1984, प्रति 2100, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, द्वितीय भाग, प्रथम सस्करण, 1986, प्रति 2000, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, तीसरा भाग, प्रथम सस्करण, फरवरी 1988, प्रति 3000, चौथा भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1988, प्रति 2500, पाँचवाँ भाग, प्रथम सस्करण, जून 1989 प्रति 2500, छठा भाग, प्रथम सस्करण, सातवाँ भाग, प्रथम सस्करण, अवटूबर 1990, प्रति 4000, आठवाँ भाग, प्रथम सस्करण, सयुक्त 4 से 8 भाग, सवत् 2049, नौवाँ भाग, प्रथम सस्करण, दसवाँ भाग, प्रथम सस्करण, सितम्बर 1993, प्रति 3000, द्यारहवाँ भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1995, प्रति 1500, बारहवाँ भाग, सयुक्त 9 से 12 भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1996, प्रति 1100, ध्यान एक अनुशीलन, प्रथम सस्करण, जनवरी 1986, प्रति 2500।

यह प्रकाशन पूज्य पिताश्री एव मातुश्री की पुण्य स्मृति मे कराया जा रहा है।

—चैनलप भूरा

धर्म कोविद, तत्त्वज्ञ श्रीमान् प्रतापचन्द्रजी सा भूरा ने इन पुस्तकों स्वयं जीवनपर्यन्त साधना करके अपने मौलिक अनुभव के आधार पर हित है, अतः ये आत्मा को छूती है। इनको पढ़ना, इनका स्वाध्याय करना उन जीवन की प्रवृत्तियों से इनका समायोजन करना कर्मों के नाश में प्रदूष सहायक है।

आज मानसिक तनाव से पीड़ित समाज के लिये ऐसी ही पुस्तकों के महती आवश्यकता भी है जो अवगुणों को दूर करने एवं मानसिक तनाव दूर हटाने में अपनी अह भूमिका अदा कर सकती है।

इन पुस्तकों की उपयोगिता इस बात से प्रमाणित होती है कि इनमें से “समता-जीवन”, “ध्यान एक अनुशीलन”, “कषाय मुक्ति” पहला भाग और “कषाय मुक्ति” दूसरा भाग धार्मिक परीक्षा बोर्ड के भूषण परीक्षा दृष्टिकोण से समता विभूति आचार्यश्री नानेश की कृपा से रखी गई।

कषाय और अन्य अवगुणों से मुक्त होने के लिए क्षमा, ध्यान, सत्याचरण, लोभ-मुक्ति आदि गुण प्राप्त करने के लिए कषाय-मुक्ति के पुस्तकों को केवल पढ़ना ही काफी नहीं है, किन्तु इन पुस्तकों का ऋग्मरु कुछ महीनों तक प्रतिदिन निरन्तर स्वाध्याय करना आवश्यक है। पाठदः की सुविधा के लिए समग्र पुस्तकों की सामग्री इसी एक पुस्तक में रामार्दित करदी गई है।

विश्वास है कि पाठकों को यह पुस्तक “समता आवरण” के ऊपर शिखर की ओर बढ़ाने के लिए स्फटिक-सोपानों की भौति “कषाय-मुक्ति” का मार्ग सुझाएगी।

भगवान महावीर ने अपनी मूलवाणी में भी कहा है—

कसिणा कसाया सिंचन्ति, जीवस्स पुणव्ववस्स ।—उत्तराध्यायन शूर्णी

कषाय ही हमारे पूर्व भवों के आधार पर आगामी जन्मों की शृण्या तैयार करते हैं। अतः इनका परित्याग कर हम सिद्धि जीव यों प्राप्त होंगे। यही पुस्तक का लक्ष्य है। सुझ पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

दिनांक : 05-08-2006

बोथरा चौक, गगाशहर

ममगत द्वारा

प्रकाशकीय

उक्त प्रकाशन वरिष्ठ लेखक निष्ठावान प्राध्यापक और साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के सयोजक / पंजीयक स्व प्रतापचन्द्रजी भूरा की इन कृतियों/पुस्तकों का संग्रह है—कषाय मुक्ति प्रथम भाग (समता आचरण, सुबोध मोक्ष-मार्ग), द्वितीय भाग (कषाय-मुक्ति एक विवेचन), तीसरा भाग एवं चौथा भाग (धर्म कथा द्वारा स्वाध्याय व तप), पाँचवाँ भाग (स्वाध्याय-संग्रह मोक्ष-मार्ग), छठा भाग (धर्म विचार सार), सातवाँ भाग (दोष मत दो निमित्त को), आठवाँ भाग (सिद्ध पद प्राप्ति की साधना), नौवाँ भाग ('समीक्षण ध्यान' मेरी दृष्टि में), दसवाँ भाग (अभय बनूँगा, सिद्ध बनूँगा) ग्यारहवाँ भाग (मोक्ष मार्ग का पथिक), बारहवाँ भाग (कषाय व मोह छोड़ने के उपाय) एवं ध्यान एक अनुशीलन।

पुस्तके सर्वसाधारण पाठको द्वारा उपयोगी समझी गई हैं व इनकी मॉग भी काफी रही इसलिए समय-समय पर धर्मनिष्ठ सुश्रावको तथा श्री साधुमार्गी जैन सघ गगाशहर-भीनासर द्वारा इनका प्रकाशन कराया जाता रहा, जिनका विवरण इस प्रकार है—प्रथम भाग, प्रथम सस्करण, मई 1984, प्रति 2100, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, द्वितीय भाग, प्रथम सस्करण, 1986, प्रति 2000, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, तीसरा भाग, प्रथम सस्करण, फरवरी 1988, प्रति 3000, चौथा भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1988, प्रति 2500, पाँचवाँ भाग, प्रथम सस्करण, जून 1989 प्रति 2500, छठा भाग, प्रथम सस्करण, सातवाँ भाग, प्रथम सस्करण, अक्टूबर 1990, प्रति 4000, आठवाँ भाग, प्रथम सस्करण, सयुक्त 4 से 8 भाग, सवत् 2049, नौवाँ भाग, प्रथम सस्करण, दसवाँ भाग, प्रथम सस्करण, सितम्बर 1993, प्रति 3000, द्यारहवाँ भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1995, प्रति 1500, बारहवाँ भाग, सयुक्त 9 से 12 भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1996, प्रति 1100, ध्यान एक अनुशीलन, प्रथम सस्करण, जनवरी 1986, प्रति 2500।

यह प्रकाशन पूज्य पिताश्री एव मातुश्री की पुण्य स्मृति मे कराया जा रहा है।

—चेनरुप भरा

धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री प्रतापचंदजी भूरा परिचय

जन्म स्थान	:	देशनोक
जन्म	:	विक्रम सवत् 1962
पिता	:	श्री सदासुखजी भूरा
माता	:	वृद्धिदेवी
दादा	:	श्री चौथमलजी भूरा
श्वसुर	:	श्री सेसमलजी कोचर (मेहता), सोजत रिटी
धर्म पत्नी	:	स्व नेमकवर
शैक्षणिक योग्यता	:	Intermediate from Board of High School & Intermediate Education, United Provinces, Allahabad in 1928
स्कूल काल की	:	B.A from Agra.
उपलब्धियाँ	:	B.T from Banaras Hindu University, Banarsa
धार्मिक एव सामाजिक	:	करणी हाई स्कूल, देशनोक छात्र राज के ३०% पद को सुशोभित किया।
उपलब्धियाँ	:	अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन राज द्वारा राजस्थान साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा योर्ड के राज्योत्तम पर्यायिक के पद पर लम्बे समय राज ३५% सेवाएँ दी।
	:	श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर-गगारहर न मरा/उपमन्त्री 1970 से 1986 तक।
	:	21-10-1984 से 06-09-1986 तक
	:	साधुमार्गी जैन सघ गगारहर-भीनासर २५% २०१९ से २०३८ तक
	:	स्थानीय साधुमार्गी जैन सघ दीकानेर गगारहर २०१९ भीनासर द्वारा सम्मानित।

कृषाय मुक्ति : समता आचरण

सुबोध मोक्ष – मार्ग

प्रथम भाग

1. अहंकार

आचार्यश्री नानालालजी म सा का श्रमणोपासक 10 जनवरी 1984 पृष्ठ नव पर कथन है—“समता भावना पाने के लिये सर्व प्रथम अहमत्व और ममत्व विसर्जन करना आवश्यक है।”

प्राणी के भौतिक और आध्यात्मिक दोनो प्रकार के उत्थान मे अहकार सबसे बाधक तत्त्व है। 1 अहकार शराब की तरह मनुष्य को पागल जैसा बना देता है। शराब पीने से नशा आता है किन्तु अहकार से तो वैसे ही चौबीसो घटे नशा रहता है। अहकार से मनुष्य की बुद्धि दब जाती है। उसे अच्छे और बुरे का भेद दीखना बद हो जाता है। वह गलत निर्णय पर पहुँच जाता है और गलत काम कर डालता है। ऐसे कामों के लिये उसे बाद मे बहुत पछताना पड़ता है। 2 अहकार से मित्रों की सख्या घट जाती है और शत्रुओं की सख्या बढ़ जाती है। दूसरे लोग उससे भीतर ही भीतर घृणा करने लगते हैं और उसे नीचा दिखाने की ताक मे रहते हैं। मौका मिलने पर लोग अभिमानी का आर्थिक नुकसान भी करते हैं। 3 अहकारी सभी को अप्रिय लगता है। उसे कोई मन से सहयोग देना नहीं चाहता। 4 अहंकार से अशुभ कर्मों का आगमन और बधन होता है। 5 अहकार से दान, शील, तप आदि अच्छी करणी का फल भी प्राय निर्वर्थक-सा बन जाता है।

दूसरो को मूर्ख समझने वाला और स्वय की बुद्धि का अभिमान करने वाला तन्दुल मत्स्य सातवे नरक मे जाता है। वह सोचता है—“यदि मैं इस बडे मत्स्य की जगह होता तो एक भी मछली को बाहर नहीं जाने देता। सभी को निगल जाता।” अभिमान मे की हुई भाव हिसा से वह महा भयकर अशुभ कर्मों का बध करके सातवे नरक जाता है। अहकार सभी बुराइयों की जड़ है।

बोध धर्म मे अस्मिता-अभिनिवेश अर्थात् अहकार को कर्मों के बध का कारण माना गया है। जब भारत से धर्मबोधि नामक बौद्ध भिक्षुं चीन गये तब

वहाँ के सम्राट बु ने उनका बड़ा सम्मान किया और पूछा—“मैंने महाराज, तु के हजारों मंदिर बनवाये हैं उनकी लाखों मूर्तियों दनवाई है। मैंने भौद्ध दर्शन के हजारों ग्रथ लिखवाये हैं। मैंने घर-घर प्रचारक भेजकर दोषहरण के बहुत प्रचार कराया है। मैंने हजारों बौद्ध भिक्षुओं को भोजन दाराया है। मूँ इसका क्या फल मिलेगा ?” सम्राट बु सोचता था कि मुझे महान परम दर्शन प्राप्ति होगी। किन्तु उत्तर सुनकर उसे बहुत निराशा हुई।

बौद्ध भिक्षु धर्मबोधि ने कहा—“सम्राट ! इससे तुम्हारा बुद्ध भी लगा कल्याण नहीं होगा।” इससे तुम्हारे अहकार की पुष्टि और तुम्हिं हुए ससार में अहकार ही सब से बड़ा पाप है और अहकार-शून्यता ही सब से बड़ा धर्म है।”

अहकार करने वाला प्राय सोचा करता है—1 मैं जो रोधता दूर कर्त्ता ठीक है। 2 मैं जो कहता हूँ वह सही है। 3 मैं जो करता दूर कर्त्ता अनुभव है। 4 मैं बुद्धिमान हूँ। 5 मैं दूसरों से अच्छा हूँ। 6 मैं दत्ता आदर्शी हूँ। 7 लोग मेरे जैसे बने। ऐसे लोग तलवार के दल पर भी दूरारों को अपने जैसा धार्मिक बनाने की कोशिश करते हैं।

अहकार कई लोगों में प्रकट होता है। कुछ लोग छोटी-छोटी करता को अपनी इज्जत का प्रश्न बना कर अकड़ जाते हैं आर पार्टी की गता, “को अशांत बना कर तनावग्रस्त हो जाते हैं। कुछ लोग शास्त्ररूप की तरह अकड़ जाते हैं। चाहे वे सामने वाले लोगों को निरोग भ दूर करें लेकिन वे झुकते नहीं। कुछ लोग कूप में रहने वाले धमड़ी गढ़क की गता अपने को बैल से भी बड़ा दिखाने के लिये फूल-फूलकर फट जाते हैं। कुछ लोग मूर्ख कौवे की भाँति चालाक लोमड़ी जैसे लोगों दी गता भ लगता है। अपने मुँह की रोटी भी खो देते हैं। अपनी बडाई सुनने का इच्छा प्राप्ति प्राय दूसरों से ठगा जाता है।

कुछ अपवादों को छोड़कर धनिकों को धन द्या, रातारामिया को अपनी सत्ता का, विद्वानों को अपनी विद्या का, वक्ताओं को अपने भाषण का, लेखकों को अपने लेखों का, गायकों को अपने गाने का अर्थ धार्मिक पुराणों को अपनी धार्मिक क्रिया का अहकार प्राय हो ही जाया करता है। किंतु जिन त्यागी महात्माओं ने अपनी आत्म-साधना के लिये अपना धन, परिवर्त सुख और सब कुछ छोड़ दिया है उन्हें तो अहकार के प्रति सतत ग्रामरूप रहना चाहिये। ऐसा नहीं हो कि अहकार के कारण अपनी साधना का मृत्यु उद्देश्य से वे भटक जावे। संत चाहे कितना ही बड़ा, ज्ञानी और तार्ता हो

उनकी क्रिया भी कितनी ही कठिन और उच्च हो, किन्तु जरासी असावधानी होने पर अहकार से उनका सारा तप और धार्मिक क्रियाएँ मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से प्राय निर्थक-सी बन जाती है।

मनुष्य को सबसे बड़ा अहकार अपनी बुद्धि का होता है। मूर्ख, अशिक्षित, अज्ञानी, दीन और भिखारी भी अपनी बुद्धि को सबसे बड़ी मानता है। किसी प्राणी को अपनी बुद्धि का अत नहीं दीखता। यह मनुष्य का स्वभाव-सा बन गया है कि वह प्राय दूसरों के कार्यों में त्रुटियाँ देखता रहता है। इससे उसके अहकार की वृद्धि होती रहती है। जो प्राणी दूसरों में गुण देखने की कोशिश करता है वह अहकार से बच जाता है और विनय गुण को प्राप्त करता है।

अहकार जब उग्ररूप धारण करता है तो वह क्रोध के रूप में प्रकट होता है। वह लड़ाई-भगड़े और विनाश का कारण बन जाता है। बड़े-बड़े विश्व यद्व भी अहकार की प्रेरणा से होते हैं।

अहकार मनुष्य की ऊँखों में, चेहरे पर, चाल में, बोली में, भाषण में, कामों में, पोशाक में और प्राय प्रत्येक क्रिया में प्रकट होता रहता है। अहकारी प्राय सबसे आगे ऊँचे आसन पर बैठता है। भीड़ में वह सबके बीच में मुखिया बनता है। उसके मुँह से प्राय अपनी प्रशसा की वातें निकला करती है। उसके वाक्यों में 'मैं, मैंने, मुझे, मेरे द्वारा' आदि शब्द निकलते रहते हैं।

निरभिमानी व्यक्ति किनारे दूर कोने में रहता है। वह बहुत कम बोलता है। वह स्वयं को बड़ा नहीं बताता किन्तु हर काम का श्रेय दूसरों को देता है। उसकी बोली मधुर और प्रिय लगती है। उसकी बात सुनने से सुनने वालों को प्रसन्नता और शांति मिलती है।

अहकार सब दुर्गुणों का मूल है। अहकार छूटने से बाहुबलीजी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। अहकार छूटने के ये उपाय हैं—

अहकार से होने वाली हानि का बार-बार प्रतिदिन अध्ययन ओर चितन किया जाय।

अपने अवगुणों की सूची बनावे, उनके लिये मन में पश्चात्ताप करे, उन्हें छोड़ने का सकल्प और प्रयास करे।

अपने से ऊपर बढ़ो के गुण देखे जावे और उनसे अपनी तुलना की जावे। क्या मेरे पास शालिभद्रजी के बराबर धन, अभयकुमारजी के बराबर बुद्धि, गौतम स्वामी के बराबर ज्ञान है? क्या मैं राजा हरिशचन्द्र जैसा दानी

या धन्ना मुनि जैसा तपस्वी या मुनि गजसुकुमाल जैसा समतामय है। दोनों नहीं हूँ तो फिर अहंकार किस बात का ?

सतत जागरुकता रखी जाय। मिनट-मिनट में सोचिये कि मेरे विचारों, बोली या कामों में कही अहंकार तो नहीं आ गया है ?

2. ममत्व

अहंकार के समान ही प्राणी का दूसरा प्रबल शत्रु है—ममत्व। ममत्व से कर्मों का बधन होता है और समता से उनका क्षय होता है। प्राणी ममत्व भाव के कारण ही ससार में बधा हुआ है। चबदह पूर्व के ज्ञान को धारण करने वाले, केवली तुल्य माने जाने वाले श्री गौतम स्वामी के केवलानन दी प्राप्ति में बाधक था केवल भगवान महावीर के देह के प्रति उनका प्रशंसन राग। वह राग भी अप्रशस्त नहीं था, फिर भी बाधक बना रहा। उसके दूर होते ही उन्हे कैवल्य की प्राप्ति हो गई। प्रात स्मरणीय मरुदेवी माता ने कोई ब्रत धारण नहीं किया था। उन्होंने कुछ भी त्याग प्रत्याख्यान नहीं किये थे, सामायिक या नवकारसी भी नहीं की थी, फिर भी हाथों के लिए ही गृहस्थ वेश में बैठे हुए भी पुत्र-मोह के समाप्त होते ही उन्हे केवलानन और परमात्म-पद की प्राप्ति हो गई थी।

परिवार या सम्पत्ति के सोह में बंधा हुआ प्राणी अनेक बार भरने के बाद वही सर्प, बिछु, भैसा, बैल, कुत्ता, बिल्ली, घूँह, मेडक छिपकली, जौँ, आदि बनकर चक्कर काटता है और दुर्गति में जाता है।

ममत्व या राग से मुक्त होने के लिये तीन प्रकार की पिवार-धारणा में गहराई से उत्तरना चाहिये। प्रथम—सब प्राणी अलग-अलग है एवं उसके से पूर्णत स्वतंत्र है। दूसरी—परिवार किसी को कर्म-दण्ड रो दना नहीं सकता। तीसरी—परिवार वालों से जैसा लेना-देना वाकी है देना ही नहीं, वैसा ही सम्बन्ध और वैसा ही योग बनता है।

जीवन भर ममत्व-त्याग का उपदेश देने वाले सभी महात्मा भारत चबदह पूर्व के ज्ञान के धारक गणधर गौतम जैसे जानी पुरुष भी गमय पर राग से प्रवाहित हो जाते हैं। अत ममत्व त्याग के लिये उपर्युक्त पिवार-धारणा का अधिक चौबीसों घटे धितन-मनन करना आवश्यक है।

प्रथम विचार-धारा—निगोद के जीव इतने नजदीक-नजदीक ही उनके एक-एक शरीर में अनन्त-अनन्त जीव हैं जो एक रात्रि द्वारा एक साथ भोजन ग्रहण करते हैं, एक रात्रि उन्न ल्लो है और एक रात्रि मरते हैं। फिर भी उन सभी के परिणमन अलग-अलग है, उनका मन ए

परिणाम भी अलग-अलग हैं। वे मरने के बाद सब साथ नहीं रहते। कुछ वही रह जाते हैं, कुछ तिर्यच बन जाते हैं, कुछ मनुष्य बन जाते हैं। वे सब अलग-अलग हो जाते हैं। वास्तव से सभी जीव अलग-अलग हैं, सब स्वतंत्र हैं, एक दूसरे से पृथक् हैं। कोई किसी का हमेशा का साथी नहीं है।

हम मानव तो बहुत विकसित प्राणी हैं। हमारे सबके पौदगलिक शरीर भी अलग-अलग हैं, कार्मण शरीर भी अलग-अलग है, हमारे विचार, हमारे स्वार्थ, जीवन पथ, करणी, मन के परिणाम, हमारे पिछले जन्मों के स्थान जहाँ से हम आये हैं और भविष्य के जन्मों के स्थान जहाँ हमें इस देह को छोड़ कर जाना है वे सभी अलग-अलग हैं, हर दृष्टि से हम लोग अलग-अलग हैं। कोई किसी का आश्रित नहीं है, किसी का स्थायी साथी नहीं है।

परिवार में कोई किसी का 'अपना' नहीं है। भाई-भाई, पिता-पुत्र, यहाँ तक कि पति-पत्नी में भी अनेक बार अपने-अपने विचारों और स्वार्थ भेद के कारण भयकर झगड़े और अलगाब पैदा हो जाते हैं। सुग्रीव-वालि, कर्ण-अर्जुन, कौरव-पाडव, सुन्द-उपसुन्द भाई-भाई ही तो थे। उग्रसेन-कस, श्रेणिक-कोणिक, हिरण्यकश्यप-प्रह्लाद, शाहजहा-आौरगजेब पिता पुत्र ही तो थे। राजा प्रदेशी और सूरिकता पति-पत्नी ही तो थे। व्यवहार में परिवार परिवार दीखता है किन्तु निश्चय में कोई किसी का नहीं है। आप हमेशा चितन करते रहिये—

सब अलग अलग, सब अलग अलग।

सब अलग-अलग की भावना को दोहराने के साथ-साथ स्वय को दूसरों से और दूसरों को स्वय से अलग होने की स्थिति में देखने और अनुभव करने का अभ्यास भी करना आवश्यक है। इस सिद्धात को अपने जीवन की सत्य घटनाओं में घटित हुए रूप में देखिये। सोचिये कि अमुक-अमुक व्यक्ति मेरे सबधी है। मैंने उनके साथ अनेक बार अलग-अलग होने का व्यवहार किया है। मैंने उनका 'अपना' होकर कभी उनको सहयोग नहीं दिया। हम निश्चय दृष्टि से तो अलग-अलग ही हैं किन्तु व्यवहार में भी अलग-अलग हैं। इस प्रकार की सत्य घटनाओं के चितन से ममत्व तोड़ने की साधना में सफलता मिलेगी।

दूसरी विचार-धारा—कर्म-फल-भोग-दृष्टि से सब प्राणी अलग-अलग हैं। सब अपने-अपने कर्मों का फल स्वय ही अलग-अलग भोगते हैं। हमारे कष्ट के समय दूसरे प्राणी—माता, पिता, बहन, भाई, पुत्र, पुत्री, पत्नी—सब

असहाय होकर केवल देखते रहते हैं। कर्मों के कठोर फल को भोगते हुए प्राणी को परिवार कर्म-दड़ से नहीं बचा सकता। वह उसके अशुभ कर्मों द्वारा शुभ कर्मों में नहीं बदल सकता, उसके दुख दर्द को दूर नहीं कर सकता। उसका नाथ नहीं बन सकता, उसको शरण नहीं दे सकता, शरीर छोड़ दर्द जाते हुए को रोक नहीं सकता। प्राणी के अशुभ कर्मोंदय के समय उसके परिवार उसे अधिकतम सहयोग देने की उत्कृष्ट भावना रखते हुए भी उसके नहीं दे सकता। कर्मों की प्रेरणा वश सभी उससे अलग हो जाते हैं। अतः कर्म-फल-भोग-दृष्टि से सब प्राणी अलग-अलग हैं। अतः जिसने सूत्र है—

परिवार किसी को कर्म-दड़ से नहीं बचा सकता।

तीसरी विचार-धारा कहती है—'कर्ज पुराना पड़ा हुआ है, इसी हेतु परिवार बना है। कुछ लेने कुछ देने आये, किन्तु मोह मे सब भरमाये।'

परिवार प्राणियों के अस्थायी मिलाप की एक ऐसी सरथा है जो प्राणी अपने पूर्व जन्मों के अपने हित या अहित में निमित्त बनने वाला है। साथ, राग या द्वेष के सम्बन्ध में जुड़कर उनके हित या अहित में निमित्त बनने के लिए, व्यवहार में अपने साथ किये गये उपकारों या अपकारों का बदला देने या लेने के लिए, मित्र या शत्रु भाव से पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी भाई-बहन, माता-पिता, स्वामी-सेवक या अन्य किसी का रूप लेकर अपने कर्मों से नियत समय पर, नियत समय (आयु) के लिए, परिवार में आते हैं और अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हुए, परिवार के हित या अहित में निमित्त बनते हुए, राग या द्वेष से नवीन कर्मों का वध करते हुए अपने निस्वार्थ, निष्काम समता भाव एव आत्म-भाव से सबकी सम्यक् आत्म-भाव को अपनी ऋण-मुक्ति का कार्य मानकर उसे करते हुए, अपने कर्मों का शाश्वत करते हुए चले जाते हैं। सक्षेप में परिवार में अपना-अपना पुराना लगा-जाना लिया दिया जाता है। वहाँ एक दूसरे के प्रति राग-द्वेष करने का कोई कारण नहीं है।

परिवार के या बाहर के अपने सपर्क में आने वाले किसी प्राणी के साथ हमारा उपकार या अपकार का बदला या सुख दुःख का पुराना रिकॉर्ड या देना जैसा बाकी है उसे लेने या देने के लिये कर्मों की प्रेरणा से पूर्व ही कर्मों का बध, वैसा ही सम्बन्ध और वैसा ही योग बन जाता है। यहीं पूर्व जन्मों का राग और प्रेम पूर्वक कुछ लेना बाकी है तो लेन वाला पुत्र-पुत्री, जंवाई या मित्र बनकर या गोद आकर या अन्य किसी रूप में उत्तर-

अपना लेना ले लेता है। यदि द्वेष से या दुख देकर लेना बाकी है तो वह चोरी करके, डाका डालकर, या व्यापार में धोखा देकर या रिश्वत से अपना लेना ले लेता है और जिससे लेता है उसे दुखी भी बना देता है। इसी प्रकार देने वाला भैसा या बैल बनकर या नौकर बनकर भी अपना देना चुकाता है। यह लेना देना कर्मदय के अनुसार सुख या दुख के रूप में लेना-देना पड़ता है। यह छूटता नहीं है। इस लेन-देन में समता रखने वाला कर्मों की निर्जरा कर लेता है और राग-द्वेष और आर्तध्यान, रौद्रध्यान करने वाला नवीन कर्मों का बधन कर लेता है।

जैसा लेना वैसा योग।

वैसा बधन वैसा भोग।

चितन का सूत्र-परिवार में कर्ज चुकाया जाता है। वहाँ कोई किसी का 'अपना' नहीं है। सब अलग-अलग हैं।

आत्मोन्नति चाहने वाले प्राणी को निश्चय के साथ-साथ व्यवहार दृष्टि पर भी ध्यान देना चाहिये।

निश्चय दृष्टि चित्त धरी, पाले जे व्यवहार।

पुण्यवत ते पामशे, भव सागर नो पार।

निश्चय दृष्टि से कोई किसी का अपना नहीं है। सब प्राणी अलग-अलग है किन्तु व्यवहार दृष्टि कहती है कि जब तक हम गृहस्थ हैं, परिवार में साथ-साथ रहते हैं, तब तक एक दूसरे के हित में निमित्त बनना हमारा कर्तव्य है। यह व्यवहार है, यह नीति है और यह आत्म-धर्म भी है। परिवार में साथ-साथ रह कर भी ममत्व-शून्यता का बहाना करके अपने परिवार वालों की उचित सेवा नहीं करना, उनको सम्यक् सहयोग नहीं देना, उन्हे निराश करना, धोखा है, हिसा है, पाप है। .

ममत्व-शून्यता का यह अर्थ नहीं है कि हम परिवार में रहकर परिवार की सेवा नहीं करे। परिवार पर मोह नहीं रख कर सबको आत्मा, मात्र आत्मा मान कर उनकी आवश्यक उचित सेवा करना प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है और गृह त्याग के बाद सारे समाज और प्राणी मात्र की आत्म-सेवा करना प्रत्येक त्यागी सत महात्मा का कर्तव्य है। तीर्थकरों ने भी समाज की आत्म-सेवा हित साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका—इन चार तीर्थों की स्थापना की है और उन्हे दिव्य आत्मोपदेश देकर अपने कर्तव्य का पालन किया है।

दूसरों की सेवा करने वाला व्यवहार में तो दूसरों की सेवा करता हुआ दीखता है किन्तु निश्चय दृष्टि में तो वह दूसरों की सेवा नहीं किन्तु

स्वयं की ही सेवा कर रहा है। अपने लिये ही अच्छी करणी कर रहा है। उसका अच्छा फल उसे ही मिलेगा। किसी को 'अपना' नह समझो दिन, आत्मा समझकर उसकी सम्यक् सेवा करो।

साधना का तरीका—साधनाएँ अनेक प्रकार की होती हैं और अनेक प्रकार से की जाती हैं। किन्तु इसमें मूल रूप में दो ही दाते हैं। प्रथम है—चित्त की अधिक से अधिक एकाग्रता और दूसरी है—साधना में उन्हें से अधिक समय लगाना। चित्त की एकाग्रता बनती है कुछ दिनों पर अन्यास करने से, प्रतिदिन नियमित समय पर साधना करने से, एवं स्थान में शात वातावरण में बैठकर चितन करने से। कमजोर या दीमां पुरुष लेट कर भी चितन-मनन और ध्यान कर सकता है। समय की दृष्टि से सभी समय इस कार्य के लिये उपयुक्त है किन्तु रात्रि को रोते राता और प्रात उठते ही उषाकाल में चित्त अधिक शात रहता है अत ये दोनों समय अधिक उपयुक्त हैं।

कुछ लोग आधी रात का समय भी उपयुक्त बताते हैं। कुछ रात के दिन रात्रि का सधि-काल अर्थात् सूर्योस्त और सूर्योदय को साधना का अच्छा समय बताते हैं। किन्तु ममत्व शून्यता की स्थिति प्राप्त करने के लिये नियमित समय के अलावा दूसरा समय भी इस कार्य में लगाना आवश्यक है। अत इस चितन के लिये तो सभी समय उपयुक्त है। चितन-मनन, ध्यान, जप चौबीसो घटे चलते रहना चाहिये। चितन मरने वाले दुकानें में, बिस्तर पर लेटे समय भी किया जा सकता है।

कहा जाता है—“सौ बार दोहराने से ज्ञान आता है। हजार बार दोहराने से वह स्थिर होता है। हजार गुणा हजार अर्थात् दस लाठा भर दोहराने से वह जन्म-जन्मातर के लिये स्थायी बन जाता है।” जितना अधिक चितन-मनन होगा उतनी ही शीघ्र सफलता मिलेगी। वार-नार दोहराने से वह अचेतन मन में उत्तर कर स्थायी भाव बन कर आवरण का अग बन सकेगा।

3. शत्रुत्व-

किसी प्राणी को अपना शत्रु समझना भूल है। कोई भी प्राणी अपने कर्मों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। आपके अशुभ कर्माद्य के बिना दूसरे अन्य प्राणी आपके दुख में निमित्त नहीं बन सकता। आपको कहि दूसरे मिल रहा है तो वह आपके स्वयंकृत अशुभ कर्मों का फल है। दूसरा प्राणी तो मात्र निमित्त बन सकता है, उसे शत्रु मानना भूल है।

अशुभ कर्मादय से एक प्राणी पत्थर के ऊपर गिर जाता है, उसका पैर टूट जाता है। वह किसे शत्रु माने ? कैसर होने से किस पर क्रोध किया जावे ? व्यापार में धन चला जावे या आग में सारी सम्पत्ति जल जावे तो किसे शत्रु माना जावे ? वास्तव में कोई किसी का शत्रु नहीं है। यह तो स्वयंकृत अशुभ कर्मों का दड़ है जिसके फल-भोग से तीर्थकर भी नहीं बच पाते।

भगवान महावीर ने अपने कानों में कील ठोकने वाले को शत्रु नहीं माना। मुनि गजसुकुमाल ने सोमिल को उपकारी माना। व्यवहार से शत्रु दीखने वाले पर हमें क्षमा भाव रखना चाहिये। कहा जाता है “66 क्रोड मास खमण के तप से भी क्षमा बड़ी है।” किसी ने कहा है—“क्षमा मर्त्यलोक से मोक्ष जाने का पुल है।”

शत्रुत्व का, द्वेष भावना का क्षय करने के लिये कुछ महीनों तक मुनि गजसुकुमाल, मुनि स्कन्दक, मुनि अर्जुनमाली आदि की अद्भुत क्षमा एव समता का गुण-गान और ध्यान कीजिये। इससे आपको अपूर्व शाति मिलेगी और आप स्वयं किसी दिन मुनि गजसुकुमाल बन सकेंगे। बार-बार चितन-मनन कीजिये—

शत्रु नहीं कोई शत्रु नहीं है।

शत्रु नहीं है, शत्रु नहीं है॥

4 मुनि गजसुकुमाल का चितन

मुनि गजसुकुमाल अपने बड़े भाई महाराज श्रीकृष्ण के साथ हाथी पर बैठकर भगवान नेमिनाथ के दर्शन करने गये। राह में सोमिल ब्राह्मण की पुत्री, अद्वितीय सुन्दरी, रमणिरत्न सोमा को देखकर, गजसुकुमाल के सर्वथा योग्य समझकर महाराज श्रीकृष्ण ने उसे सोमिल की स्वीकृति से कुआरे अन्त पुर में भिजवा दिया, किन्तु कर्मों का विधान कुछ और ही था। गजसुकुमाल दीक्षित होकर शमशान भूमि में जाकर ध्यानस्थ खड़े हो गये। सोमिल ने जब उन्हे इस साधु स्थिति में देखा तो पूर्व जन्म के वैर के कारण, बदला लेने के लिए क्रोध में आकर उसने मुनि गजसुकुमाल के सिर पर गीली मिट्टी की पाल बनाकर उनके सिर पर जलते अगारे रख दिये। मुनि गजसुकुमाल का सिर जलने लगा। उनके शरीर में अथाह वेदना होने लगी, किन्तु वे शात भाव से ध्यान में स्थिर होकर चितन करने लगे। उन्होंने कुछ-कुछ इस प्रकार का चितन किया होगा—

सोमिल मेरा शत्रु नहीं है। ससार में कोई किसी का शत्रु नहीं होता।

अच्छी करणी करता हुआ आत्मा ही अपना मित्र होता ह और उसे जल्दी करता हुआ आत्मा ही अपना शत्रु होता है। व्यवहार में ही हम उसे करता हुआ प्राणी हमें हमारा शत्रु दीखता है किन्तु सर्वज्ञ की दृष्टि में शत्रु नहीं माना जाता, वह तो मित्र, निर्जरा-सहायक, कर्म-राजा हितोन्नपरम उपकारी माना जाता है।

प्राणी अपनी करणी का फल पाता है। वह याहे तत्त्वार द्वे द्विरूपों कोने में जाकर रह जावे किन्तु वह कर्म-फल पाने से बच नहीं सकता। किसी शक्तिशाली प्राणी के पास चला जावे, किन्तु कोई उसे दूजा नहीं सकता। कर्म प्राणी के संस्कार बन कर, कार्मण शरीर के लघु में सदा सर्वर उसके साथ उसके अन्दर ही रहते हैं। वे दूर जाते ही नहीं। उन्हें इन संक्षय करने के सिवाय उनसे बचने का कोई दूसरा उपाय ही नहीं है। इनमें आये हुआ और निकायित कर्मों से तो किसी भौति यथा ही नहीं इन सकता। हजारों लाखों वर्षों के बाद भी समय पर अपना फल देकर देशम् होते हैं।

कर्म अपने कर्ता को फल देने में कभी भूल नहीं करते। नहरार अपराधी को या किसी को दण्ड देने में भूल कर सकता ह किन्तु दर्म भूल नहीं करते। वे कभी धोखा भी नहीं खाते। चतुर या बुद्धिमत्त प्राणी इन तर्क एव प्रयास से सरकार से उचित दण्ड पाने से बच सकता ह और वह बुद्धिवाला व्यक्ति निर्दोष होते हुए भी दण्ड पा सकता ह किन्तु कर्म नहर, में ऐसा नहीं होता। मैंने कभी कोई ऐसा अपराध किया होगा, किसी दो गारा दिया होगा, किसी के सिर पर अगारे रखे होगे, तभी आज गेरे निर पर वह अगारे रखे गये हैं।

व्यवहार में तो सोमिल ने मेरे सिर पर अगारे रखे ह मिल्नु निश्चय दृष्टि से तो मैंने स्वयं ही अपने सिर पर अंगारे रखे हैं। मैंने दर्म पर मजाक में या स्वार्थवश ऐसा नाटक रचा होगा, उसीकी यह प्रतीक्षा है। यह मेरे निज कर्म का ही फल है।

अकृत से दुःख या सुख की प्राप्ति नहीं होती। ऐसा नहीं हो सकता कि मैंने कुछ अपराध नहीं किया हो, फिर भी ये अगारे अकारण दी मूर्ति की रखे जावे। यदि बुरी करणी किये बिना ही दुख मिलता तो अच्छी जगह किये बिना ही सुख भी मिलता। फिर लोग सुख के लिए दान-रीत-दान-प्राप्ति का मार्ग क्यों अपनाते? यह निश्चित है कि ये अंगारे मैंने ही दुर्ग दर्म का फल है। इन्हें अपने सिर पर रखने वाला मैं ही हूँ, सोरीनन्द नहीं।

‘सोमिल मेरा शत्रु नहीं, सहायक है, उपकारी है। वह आज मेरी कर्म निर्जरा मे सहायक बना है। आज नहीं तो कभी-न-कभी तो इस कार्य के फल को मुझे भोगना ही पड़ता। यह अच्छा हुआ कि आज मेरी सदबुद्धि की अवस्था मे, समता भावना की स्थिति मे, इस कर्म-फल को समता भाव से भोगने का शुभ अवसर सोमिल ने मुझे दिया है। मैं उसका कृतज्ञ हूँ। आज मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा हो रही है। कर्मों की निर्जरा हो रही है, आत्मा की शुद्धि हो रही है और सभवत मोक्ष की प्राप्ति भी हो सकती है। सोमिल ने मेरा अहित नहीं किया है, मेरा हित ही किया है। अहित तो उसने अपना ही किया है। उसने मेरे निमित्त से भारी कर्मों का बध किया है, जिसका दड़ भोगना उसके लिए बहुत कठिन होगा। परमात्मा उसे सदबुद्धि दे, सुमति दे, सम्यक् ज्ञान दे और इस कर्म के फल को समता पूर्वक भोगने की शक्ति दे।’

कुछ लोग अपने दुख मे निमित्त बनने वाले को अपना शत्रु मानकर उससे बदला लेते हैं और कुछ लोग उसे क्षमा भी कर देते हैं किन्तु क्या कोई किसी को क्षमा प्रदान कर सकता है? क्या पीडित के द्वारा क्षमा प्रदान किये जाने से पीडक उस पाप के फल-भोग से छूट जाता है? यदि ऐसा होता हो तो मैं एक बार नहीं, किन्तु हजार बार सोमिल को क्षमा प्रदान करता हूँ। मेरी ओर से वह पाप और पाप के दड़ से मुक्त बने।

अपराधी सोमिल नहीं है। अपराधी तो मैं हूँ। मैंने पूर्व मे भी पाप किया और निमित्त बनकर सोमिल के विचारो को विकृत एव दूषित बनाकर उसमे बदला लेने की भावना उत्पन्न की और आज भी उसके लिए नवीन भयकर कर्म बध का निमित्त बना। क्षमा मुझे मँगनी चाहिए। वह तो आज मेरा उपकारी बना है। कर्म निर्जरा मे सहायक बना है। मित्र सोमिल! मेरे अपराध के लिए मैं क्षमा की भीख मँगता हूँ।

मेरे सिर पर जो रखे गये हैं वे अगारे नहीं हैं। वे तो मेरे कर्म रोग काटने की गोलियाँ हैं। मेरे रोग को मिटाने की अचूक दवा है। मुझे इस दवा को समतापूर्वक पीना है। दवा तो दवा ही होती है। वह कभी मीठी और कभी केडवी भी हो सकती है। ज्ञानी ऐसी दवा को ही कर्म-रोग काटने की दवा मानते हैं। उसका आनन्दपूर्वक सेवन करते हैं। वे चिकित्सक को शत्रु नहीं किन्तु अपना मित्र और एव उपकारी मानते हैं। आज मैं इस दवा को पीकर रोग मुक्त बन सकूगा। यह अमृत है, इसे पीकर अमर बन सकूगा।

भगवान नेमिनाथ ने मुझ पर असीम कृपा की है। उन्होने मुझे मेरे

कर्म काटने का सरल, सुगम, शीघ्र लाभदायक और अचूक मार्ग यज्ञ है। उनकी कृपा से मैं समतापूर्वक इस कर्म-रोग से मुक्त हो सकूँगा। मैं उन्हें तो हमेशा दूसरों पर दया ही करते हैं।

“मैं आत्मा हूँ। देह से भिन्न हूँ। मैं अमूर्त हूँ चेतन हूँ। मैं अस्त-अन्त हूँ और शाश्वत हूँ। आग मुझे जला नहीं सकती। शस्त्र काट नहीं सकता। पानी गला नहीं सकता। हवा सुखा नहीं सकती। मैं अछेद्य हूँ उन्नेश हूँ। मैं आत्मा हूँ आत्मा का आत्मा के सिवाय अपना कुछ भी नहीं होता। दर्शन शरीर मेरा नहीं है। मैं शरीर नहीं हूँ। शरीर के जाने से मेरा कुछ भी नहीं जाता। मैं निराकार हूँ निर्विकार हूँ विमल ज्योति हूँ”

मुनि गजसुकुमाल की भावना उच्च से उच्चतर और उच्चतम भूमिका पर पहुँच गई। उन्होंने इस नश्वर देह को त्याग कर परमात्म-पद प्राप्त कर लिया।

धन्य है मुनि गजसुकुमाल, धन्य है उनकी समता। उन्हें दार्शन वंदन है, वदन है, वदन है। यह निश्चित है कि मुनि गजसुकुमाल की इन और समता की अनुमोदना से भाव विभोर होने वाले प्राणी के अशुभ कर्मों महान निर्जरा होगी।

5. आत्म-भावना

श्रीमद रायचन्द्रजी ने कहा है—“आत्म भावना भावता जीता ले केवलज्ञान रे।” देहात्म-भेद-ज्ञान को जैन दर्शन ने सम्बन्ध का बताया है। जब तक प्राणी को अपने आत्मा के अस्तित्व और साथ ही उसके नित्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व एव मुक्तत्व में पूर्ण विश्वास और दृढ़ श्रद्धा नहीं हो जाती तब तक वह मिथ्यात्व से घिरा रहता है। आत्म-भावना वाले प्राणी अहमत्व, ममत्व, शत्रुत्व दुखानुभूति और सुखानुभूति इन परम बच सकता है और परमात्म-पद का अधिकारी बन सकता है।

“आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ मैं अमूर्त हूँ चेतन हूँ। मैं अदाह्य हूँ अजर-अमर हूँ शाश्वत हूँ। ज्योति पुज हूँ ज्ञान लय हूँ, ज्ञान धन हूँ चेतन हूँ। निराकार हूँ निर्विकार हूँ विमल ज्योति हूँ आत्म हूँ। आत्मा हूँ—मैं आत्मा हूँ मात्र आत्मा हूँ। मैं शरीर नहीं हूँ। शरीर दर्शन से मेरा कुछ भी नहीं आता। मैं (आत्मा) और शरीर दोनों से निर्गत हूँ, मैं चेतन हूँ सूक्ष्म हूँ अमूर्त हूँ शाश्वत हूँ। शरीर जड़ हूँ, शरूल हूँ और नाश्वान है। दोनों मेरे महान अतर हैं और वे अलग-अलग हैं। मैं हूँ—अमूर्त होने के कारण मैं (आत्मा) शरीर की इन्द्रियों ने उमड़ा हूँ।

इन भौतिक ऑखों से देखा नहीं जा सकता। कान, नाक, जीभ और त्वचा से मैं जाना नहीं जा सकता। इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से मुझे नहीं जान सकने के कारण लोग सरलता से मेरे अस्तित्व का ज्ञान नहीं कर पाते। मेरे अस्तित्व में लोगों को शीघ्र ही श्रद्धा भी नहीं हो पाती।

मैं शरीर नहीं हूँ। मैं न स्त्री हूँ न पुरुष हूँ। न बाल हूँ न वृद्ध हूँ। न जैन हूँ न अजैन हूँ। न शैव हूँ न वैष्णव हूँ। न हिन्दू हूँ न मुसलमान हूँ। न छूत हूँ न अछूत हूँ। न बड़ा हूँ न छोटा हूँ। न बुद्धिमान हूँ न मुर्ख हूँ। न अच्छा हूँ न बुरा हूँ। मैं तो मात्र आत्मा हूँ। आत्मा के सिवाय और कुछ भी नहीं हूँ।

मैं चेतन हूँ—मेरे अस्तित्व का ज्ञान मेरी चैतन्यता के माध्यम से ही पाया जा सकता है। यह शरीर चेतना के सहारे ही खाता-पिता है, चलता-फिरता है, सुनता-बोलता है और देखता-जानता है। मेरे द्वारा इस शरीर को छोड़ दिये जाने के बाद यह शरीर कुछ भी नहीं कर सकता, बेकार हो जाता है, मिट्टी बन जाता है। लोग इसे क्षण भर भी घर मे नहीं रखते। घर से बाहर श्मशान मे ले जाकर इसे जलाकर इसकी भस्म बना देते हैं। मेरे अस्तित्व का सबसे प्रबल प्रमाण मेरी चेतना है, जो इस शरीर को चलायमान रखती है और जिसके निकल जाने पर जड़ देह जलाने योग्य बन जाती है।

मैं अवध्य हूँ—शस्त्रो द्वारा मेरा छेदन, भेदन या वध नहीं हो सकता। आग मुझे जला नहीं सकती। पानी मुझे गला नहीं सकता। हवा सुखा नहीं सकती। मैं अजर-अमर हूँ, मैं शाश्वत हूँ।

मैं ज्योति पुज हूँ मैं ज्योति हूँ अद्भुत ज्योति हूँ। ससार की सभी ज्योतियों से भिन्न हूँ। अत मेरी कल्पना करना भी कठिन है।

मैं ज्ञान रूप हूँ—मैं (आत्मा) ज्ञानरूप हूँ, ज्ञान का भडार हूँ। ज्ञान की न्यूनाधिकता का कारण मेरे ऊपर आया हुआ ज्ञानावरणीय कर्म का आवरण है, उसके हटते ही मैं सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बन जाता हूँ।

मैं आनन्द धन हूँ—मैं आनदमय हूँ। बाहरी मूर्त पदार्थों में सुख नहीं है, वहाँ तो सुखाभास है जिसका परिणाम कभी-न-कभी दुख की प्राप्ति में मिलता है। मैं (आत्मा) स्वयं में स्थिर होकर स्वयं के द्वारा स्वयं की अनुभूति से, अकथनीय आनन्द पा सकता हूँ। वहाँ चिन्ता, भय, दुख का नाम निशान भी नहीं है। आनन्द के लिए बाहर झाँकने की जरूरत नहीं है।

मैं निराकार हूँ—मेरा कोई आकार नहीं है। शरीर अवस्था में मैं शरीर

प्रमाण बड़ा या छोटा हो जाता हूँ।

मैं निर्विकार हूँ—शुद्ध रूप मेरे काम, क्रोध, मान, माया, लोग इन मोह इन सबसे रहित हूँ।

मैं विमल ज्योति हूँ—मैं निर्मल ज्योति हूँ मैं शुद्ध चेतना हूँ। मैं इन्हें हूँ। आत्मा के सिवाय मैं और कुछ भी नहीं हूँ। आत्मा का आत्मा के सिवाय कुछ भी नहीं होता। मेरे सिवाय मेरा यहाँ कुछ भी नहीं है। मेरे बाहर यह कहा नहीं जा सकता। मुझे इन चर्म चक्षुओं से देखा नहीं जा सकता। मैं न कोई रूप है, न कोई रेखा है।

“आत्म-ज्ञान ही परम ज्ञान है, स्वानुभूति सम्यक् दर्शन है। आत्म-रमण स्यम है, तप है, आत्म-ध्यान ही परम धर्म है।” आत्म दर्शन के उपाय—आत्म अमूर्त है। उसे इन चर्म चक्षुओं से देखा नहीं जा सकता। उसकी अनुभूति और उसके साक्षात्कार के लिये आध्यात्मिक ग्रथों के अध्ययन एवं सां महात्माओं के मुखारविद से ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ नीचे लिए विधि से ध्यान भी किया जा सकता है—

प्रथम चितन—शरीर की प्रत्येक क्रिया आत्मा की चैतन्य शक्ति के कारण ही सभव है। जैसे दूध मेरी मिला हुआ है वैसे ही शरीर के कण-कण मेरी आत्मा रमा हुआ है। इसका गहरा और वार-वार चितन जीवा जावे।

दूसरा चितन—शरीर से भिन्न किन्तु शरीर मेरी आत्मा की स्थिति के कल्पना करना, कल्पना द्वारा ध्यान करना, ध्यान द्वारा आत्मा की अनुभूति करना और उसका दर्शन करना चाहिये। यह काम आसान तो नहीं, किन्तु अभ्यास करने से सफलता मिलेगी।

तीसरा उपाय—अपने शरीर से आत्म-प्रदेशों को ऊपर उठाने की कल्पना की जावे और इस साधना से ध्यान द्वारा आत्म-दर्शन का उत्तम किया जावे।

चौथा उपाय—अपनी आत्मा को लोक के अग्र भाग मेरुमाला के सिद्ध स्वरूप मेरी, अटल अवगाहना मेरे देखने का ध्यान किया जावे।

पाँचवा उपाय—अपने आत्मा को शरीर से ऊपर उठाकर भिन्नों शरीर का दाह-सस्कार देखा जावे। इससे देह की आसक्ति हट जाए।

छठा—सिद्धों का अटल अवगाहना की स्थिति मेरी ध्यान किया जावे।

सातवां—दूसरे प्राणियों के शरीर मेरी आत्मा की स्थिति की कल्पना की जावे।

आठवा—मुनि गजसुकुमाल, मुनि स्कदक आदि के जीवन के अतिम समय में उनके शरीर से निकलकर ऊपर उठते हुए आत्मा का कल्पना द्वारा ध्यान किया जावे।

आत्म-भावना या आत्म ध्यान से केवलज्ञान की प्राप्ति भी समव हो संकती है।

6 समता आचरण

समता आचरण का अर्थ है कि मनुष्य दुखद और सुखद दोनों प्रकार की परिस्थितियों में अशुभ विचार और अशुभ काम नहीं करे। वह कुविचारों और कुकर्मों से दूर रहे। वह अच्छे विचारों और अच्छे कामों में ही लगा रहे। वह ऐसे विचार और ऐसे काम करे जिससे उसका अपना भला होवे और दूसरों का भी अहित नहीं होकर आत्म-हित होवे। समता आचरण समता विचारों से ही बना है। समता भावना के बिना समता आचरण नहीं बनता।

समता आचरण के लिये चार बातों से बचना आवश्यक है। 1 दुख चेतना से बचना, 2 दुख चेतना में अशुभ सकल्प-विकल्प से बचना, 3 सुख चेतना से बचना और 4 सुख चेतना में अशुभ सकल्प-विकल्प से बचना।

दुख चेतना का अर्थ है—दुखद परिस्थिति में दुखी होना, व्याकुल होना, दुख की अनुभूति करना। दुख-चेतना से बचने का अर्थ है कि बाहर चाहे दुखद स्थिति बन जावे किन्तु प्राणी के भीतर मन में दुख नहीं आवे। वह आर्तध्यान नहीं करे, उसकी शाति भग नहीं हो। मन में चिता, भय, शोक, उदासी नहीं आने पावे।

मन में दुख की चेतना आने पर प्राणी अनेक प्रकार के अशुभ विचारों में उलझ जाता है। वह अनेक प्रकार के अशुभ सकल्प-विकल्प करता है—यह काम करूँ? वह काम करूँ? क्या करूँ? क्या नहीं करूँ? दुख से कैसे बचूँ? ऐसे विकल्पों से बहुत से बुरे काम भी हो जाते हैं। जो प्राणी दुख चेतना से बचेगा, उसके विचार और उसका आचरण समता विचार और समता आचरण बने रहेगे।

मुनि अर्जुनमाली का साधु जीवन पूर्ण समता आचरण का सर्वोत्तम उदाहरण है। दीक्षा लेने के बाद जब वे गोचरी जाते तब कुछ लोग उन्हे गालियाँ देते। कोई उन्हे पीट भी देता। कहीं अन्न मिलता तो जल नहीं मिलता। कहीं जल मिलता तो अन्न नहीं मिलता।

मुनि अर्जुनमाली चिन्तन करते—मैंने पूर्व जन्मों में और इस जन्म में लोगों को अन्तराय दी है। उस अन्तराय कर्म का फल मुझे अन्न-जल के

अन्तराय रूप मे भोगना पडेगा। मैंने अनेक प्राणियों की हत्या की है और को अनाथ बनाया है, उन्हे असाता पहुँचायी है। उसका फल भी मूरे है और कष्ट के रूप मे भोगना पडेगा। मुझे जो कष्ट मिल रहा है उस अधिक दंड पाने का मै पात्र हूँ।

महापुरुषों ने दुख और कर्म काटने का उपाय बताया है—सत्त्वाचरण। समता रखने से दुख दवा बन जाता है। वह दुख को मिटा है और कर्मों को भी काटती है। उससे नये कर्मों का आना भी रुक जाता है।

मेरी समता भावना के कारण मेरा दुख अब औषध बन चुका है। मेरे दुख को मिटा रहा है। वह मेरे कर्मों को काट रहा है, मेरे कर्म उद्धार आत्मा से झड़ रहे हैं। मेरी आत्मा शुद्ध हो रही है। वे अपनी आत्मा से कर्मों को झड़ते हुए देखने की कल्पना करते हुए अनेक बार ध्यानस्थ हो जाते हैं।

इस प्रकार अपने गृहस्थ जीवन मे 1141 स्त्री-पुरुषों की हत्या हुई वाले मुनि अर्जुनमाली ने अपने पापों के लिये पश्चात्ताप किया और अपने समता आचरण द्वारा उसी भव मे कर्मों को काट कर मोक्ष प्राप्त किया। “धन्य है मुनि अर्जुनमाली, धन्य है उनका साधु जीवन, धन्य है उनका पश्चात्ताप भावना, धन्य है उनका समता आचरण, धन्य है उनका ध्यान। उनके आचरण का अनुमोदन और अनुसरण करने वाला परमात्मा-पद अधिकारी बन जाता है।

इस दृष्टि से प्राणी तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम वे जो दुख दो दुःख मान कर दुखी होते हैं और आर्तध्यान से भारी कर्मों का उपर्जन हुआ है अपनी आत्मा का पतन कर लेते हैं। जैसे चक्रवर्ती की रानी श्रीदेवी भगवति की मृत्यु पर छ मास तक विलाप करती है और छठे नरक मे जाती है।

दूसरे वे जो मुनि अर्जुनमाली की भाँति अपने पापों का प्राप्तिरिक्त करते हैं, समता आचरण का पालन करते हैं, समता के कारण उपर्जन कल्पना मे दुख को दवा मान कर उससे अपने कर्मों को झड़ा हुआ दृष्टि का ध्यान करते हैं और कर्म-वधन से मुक्त हो जाते हैं। यह दुख-दुख-चेतना-मुक्ति से ही सभव होती है।

तीसरे वे जो अपने आत्म-ध्यान मे, अपने ज्ञान-ध्यान मे उत्तम है कि उनके कानों मे चाहे कीले ठोकी जावे, उनके शरीर मे काहे जावे उतारी जावे, उनके मुँह से आह तक नहीं निकलती, उनके दुख-दुख-दुखानुभूति का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता। संनेह है कि उन्ह अपने दुख-

मेरे दुख की अनुभूति ही नहीं होती होगी। वे दुख-चेतना-मुक्त समता-आचरण के साक्षात् मूर्त रूप हैं।

भौतिक-सुख-चेतना भी प्राणी को समता विचार और समता आचरण से बहुत दूर ले जाती है। भौतिक-सुख-चेतना वाले प्राणी का अर्थ है— विषय-भोगों में मस्त, इन्द्रिय-सुखों में छूबा हुआ, सासारिक-सुखों में आसक्त, मास-मदिरा-कुशील-सेवन में लिप्त, सुख प्राप्ति हेतु आर्त-रौद्र-ध्यान करता हुआ और अनेक प्रकार के बुरे सकल्प-विकल्प करता हुआ, दूसरों के हित-अहित का ध्यान नहीं करने वाला, समता विचार और समता आचरण से शून्य प्राणी। जो मनुष्य भौतिक-सुख-चेतना में छूबा हुआ है और सासारिक सुख-भोगों की इच्छा करता रहता है वह समता से बहुत दूर चला जाता है। समता आचरण के लिये आवश्यक है भौतिक-सुख-चेतना से मुक्ति और इन विषय-भोगों के सकल्पों-विकल्पों से भी मुक्ति, इन सभी बातों से उदासीनता।

कुछ अपवादों को छोड़कर प्राणी के अधिकाश अशुभ विचार और अशुभ काम प्राय किसी-न-किसी प्रकार की अशुभ या अशुद्ध सुख-चेतना से ही होते हैं। आत्म-हत्या करने वाला भी शायद अपनी आत्म-हत्या से दूसरों को दुखी बना कर स्वयं सुख पाने की कल्पना करता होगा। युद्ध में लड़ते हुए मरने वालों को अपनी वीरता दिखाने और वीर कहलाने के विचारों से उनके मन में सुख की अनुभूति होती होगी। कठोर अग्नितापस भी स्वयं को भयकर ताप देकर महान् तपस्वी कहलाने की भावना से या स्वर्ग-सुख पाने की आशा से सुख अनुभव करते होंगे। सुख की अनुभूति शरीर से कम और मन से अधिक होती है। यही कारण है कि लोग प्राय मानसिक सुखानुभूति के लिये बड़े-बड़े कष्ट और खतरे उठाने के लिये तैयार हो जाते हैं।

सुख बाहरी पदार्थों में नहीं है। वह तो मन के भीतर विचारों से मिलता है। शत्रु के मुँह से गाली सुनने से क्रोध आता है किन्तु ससुराल में महिलाओं के मुँह से गीतों में गाली सुनने से क्रोध नहीं आता, क्रोध की जगह प्रसन्नता होती है। जिन कामों से एक समय में लोगों को सुख होता है उन्हीं कामों से दूसरे समय में उन्हीं लोगों को दुख होता है।

मनोविज्ञान कहता है कि प्राणी यदि विषय-सुख-भोगों से होने वाले भावी दुखों का चिन्तन करे, भौतिक सुखों को सुखाभास मानने लगे, उनसे अन्त में दुख पाने वाले यादवों और कौरवों के ऐतिहासिक उदाहरणों का

चितन-मनन करने लगे, तो उनकी विचारधारा बदल सकती है। भौतिक-सुख-चेतना और उससे संबंधित अशुभ सकल्पो-विकल्पो से सकते हैं। उनके विचार समता-विचार और उनके आचरण समता उन्हें बन सकते हैं।

मास-मदिरा-कुशील-कुव्यसन आदि सुख भोगों से बहुत हैं। भोगों से शरीर में रोग आने का भय हमेशा बना रहता है। प्रायः रोग से धिरे रहते हैं। 2 उनका धन भोगों में खर्च हो जाता है। वे गरीब बनकर बहुत दुख पाते हैं। 3 उनका आत्म-पतन हो जाता है। 4 वे अनेक प्रकार के कुव्यसनों में फस जाते हैं। 5 कुव्यसनों के द्वारा कुसगति में फस कर दुख पाते हैं। 6 कुव्यसनों और कुसगति द्वारा वे अनेक शत्रुओं से धिरे रहते हैं और बार-बार सकट में फस जाते हैं। 7 भोगी इस जन्म में भी दुख पाते हैं और भविष्य के जन्मों में भी दुख में जाकर दुख ही पाते हैं।

दुख और भौतिक-सुख दोनों की चेतना से मुक्त प्राणी हिरण्य चोरी, कुशील और परिग्रह से प्राय बच जाता है। वह क्रोध, मान, लोभ से भी काफी बच जाता है। उसे किसी प्राणी से राग-ह्वेष करना, कोई कारण नहीं बनता। उसे कोई प्राणी या पदार्थ या घटना भिन्न अप्रिय नहीं लगती। वह आर्तध्यान और रौढ़ ध्यान से भी प्राय बचता है। सातों कुव्यसन भी उससे दूर ही रहते हैं।

जो प्राणी अपनी समता भावना के कारण अपनी कल्पना में दुख को कर्म-रोग काटने की दवा मानकर अपने कर्मों को अपना आम झाड़ रहा है, जो भौतिक सुखों को सुखाभास मान कर उनमें आत्मा न होता, उसके मन में अशुभ सकल्पो-विकल्पो को स्थान ही नहीं निपाता। समता आचरण वाला वीतराग प्राणी परमात्म-पद का अधिकारी है।

दुख चेतना और उससे पैदा होने वाले सकल्पो-विकल्पो से बचने के लिये चितन-सूत्र है—“समता के कारण दुख दवा द्वन् भावा”। कर्म-रोग को मिटा देता है। मुनि अर्जुनमाली के सभी कर्म परमनाम भावना और शुभ ध्यान से कट गये। स्वयं पर दुख आए ताप या दर्द दोहराइये “समता के कारण मेरा दुख कर्म-काटने की ददा द्वन् पैदा मेरे कर्म कट रहे हैं।”

भौतिक सुख-चेतना और उससे पैदा होने वाले अशुभ सद्व्यवहार से बचने के लिये चितन सूत्र है—सुख चेतना का फल है भावा।

हानि, आत्म-पतन, कुव्यसन, कुसग्ति, सकट, इस जन्म मे दुख और अगले जन्म मे दुर्गति।"

अन्य प्रकार की साधना के साथ-साथ उपर्युक्त सूत्रों को दोहराइये, मन की एकाग्रता से जप कीजिये। जप से पैदा होने वाली ध्वनि तरगों की अजीब और अदृश्य शक्ति किसी भी गुण को स्थायी भाव बना कर प्राणी के आचरण से उतारने मे समर्थ है। शुभ भावना से किया गया जप स्वाध्याय तप का अग है।

7. राग-द्वेष

किसी प्राणी को अपना मानना या उसे अकारण ही बड़ा या अच्छा या धनवान आदि समझना राग है और किसी को शत्रु मानना या अकारण ही गरीब भिखारी आदि समझना द्वेष है। सदभावना से किसी को अनिष्ट एव पतन से बचाने के लिए आवश्यक कारणवश वस्तुस्थिति का निष्पक्ष भाव से अपनी जानकारी के अनुसार कथन करना राग द्वेष नहीं होता किन्तु अकारण किसी के सबध मे उसके अच्छा या बुरा होने का कथन करना राग द्वेष ही है।

प्राणी के बुद्धिमान या मूर्ख, बड़ा या छोटा, रक या राव, भला या बुरा, सज्जन या दुर्जन, अपना या पराया, मित्र या शत्रु होने का विचार करना पर-द्रव्य का चितन है और राग-द्वेष है। प्राणी को मात्र प्राणी समझना, उसको मूलरूप मे विशुद्ध आत्मा के रूप मे देखना, उसे मात्र आत्मा मानना, वीतराग भाव है।

दुख मे दुखी होना या सुख मे फूलना राग-द्वेष है किन्तु दुख मे समता रखना, उसे समभाव से भोग लेना और सुख मे आसक्त नहीं होना, उदासीन रहना, उससे होने वाले भावी दुखों पर विचार शुरू कर देना राग-द्वेष-मुक्ति है।

8 कर्म बंध और क्षय

कर्म है प्राणी के द्वारा किये गये पुरुषार्थ के बदले मे उसे मिलने वाला फल जिसे लोग दैव भाग्य या होनहार भी कहते हैं। ससार मे एक प्रकार के अति सूक्ष्म कर्म-वर्गण के पुद्गल भरे हुए हैं। जब-जब प्राणी के मन या वचन या काया या तीनों योगों से जरा भी हलन-चलन होती है तो ये पुद्गल प्राणी की ओर आकर्षित होते हैं, मन के अच्छे या बुरे विचारों के अनुसार अच्छे या बुरे स्स्कार बनकर कर्म के रूप मे आत्मा के साथ जुड़

- 8 पश्चात्ताप से चन्द्रदुर्गाचार्य को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।
 9 पश्चात्ताप से कूरगडुक मुनि को कैवल्य प्राप्त हुआ।
 10 पश्चात्ताप से प्रसन्नचन्द्र मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।
 11 अनुमोदना—मुनि गजसुकुमाल आदि की समता की अनुमोदने की विजय सेठ और विजया सेठानी के आजीवन अखडित शील दर्शकी अनुमोदना, सुमुख गाथापति के दान की अनुमोदना और दूसरे सेठ के दान भावना की अनुमोदना तिराने वाली हैं।
 12 “आत्म-भावना भावता, जीव लहे केवलज्ञान रे”—ऐसा श्रीमद् रथलाल ने कहा है।

9. सत्य की शक्ति

“सच्चं खु भगव” सत्य ही भगवान है। सत्यवादी को ईश्वर के इन ससार की सभी शक्तियों के आशीर्वाद प्राप्त होते हैं। सत्यवादी स्वयं परमात्मा तुल्य है। सत्यवादी मे देवताओं से भी अधिक शक्ति होती है।

आचार्यश्री जवाहरलालजी मसा का “हरिश्चन्द्र तारा” पृष्ठ १६ पर कथन है—“विश्वामित्र के तपबल से बधी हुई अप्सराओं को मुक्ता, हरिश्चन्द्र ने अपनी सत्य बल की शक्ति द्वारा बधन मुक्त कर दिया। कहने लगी—“ऋषि का वह तप-बल जिसका प्रभाव मेटने से हम देखिया असफल रही, वह तप-बल हरिश्चन्द्र के सत्यबल से परास्त हो गया। सत्य मे देवताओं और तपस्वियों से भी अधिक बल होता है।”

आनन्द प्रवचन भाग नव पृष्ठ चार पर आचार्यश्री आनन्ददत्तीः सा का कथन है—“सत्य से समुद्र मे जहाज झूटता नही। सत्यवादी से जलते नही, पहाड पर गिरने से मरते नही, युद्ध से वध जाते हैं, दान अभियोग शत्रुता से भी मुक्ति पा लेते हैं। सत्य से आकृष्ट होकर देह सत्यवादी की सेवा करते हैं। सत्य मे हजार हाथियों का वल है।

धर्मशास्त्रो मे कहा गया है—“सत्य चेत्पसा च किं” अर्थात् सत्य तप से अधिक सत्य है। “नास्ति सत्यात्परो धर्म” अर्थात् सत्य रो नाश्वरो धर्म नही।

साच बराबर तप नही, झूठ बराबर पाप,

जाके हृदय सांच है, वाके हृदय आप॥

10 शील की महिमा

“धन्य है, धन्य हैं आप दोनो। आपकी भक्ति करने से अपर अपर पारणा करने से चौरासी हजार मुनियों की भक्ति करने और पारणी

— के बराबर फल होता है, ऐसा केवल ज्ञानी मुनि विमल ने हमे बताया है। आप दोनों विवाहित होकर भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं। धन्य है आप, धन्य है आपका अखडित ब्रह्मचर्य, धन्य है आप दोनों का जीवन।” विजय सेठ और विजया सेठानी की विनयपूर्वक स्तुति और भक्ति करते हुए, शील के महात्म्य को बताते हुए, दूर चम्पा नगरी से आये हुए, बारह व्रतधारी श्रावक श्रेष्ठी जिनदास ने सबके सामने रहस्योदघाटन किया। इस रहस्य को और शील की महिमा की बात सुनकर वहाँ बहुत लोग एकत्रित हो गये। विजय सेठ के माता-पिता तो पौत्र देखने की आशा वर्षों से लगाये हुए थे। उन्हे क्या पता था कि उनके पुत्र ने शुक्ल पक्ष में अखण्ड शील पालन का और उनकी पुत्रवधू ने कृष्ण पक्ष में शील पालन का व्रत विवाह के पूर्व ही ले लिया था।

अखण्ड शील की बात प्रकट होने पर विजय सेठ और विजया सेठानी अपने पूर्व निश्चय के अनुसार दीक्षा लेकर मुनि विजय और साध्वी विजया बन गये और अपने कर्मों को क्षय करके उन्होंने परमात्म-पद प्राप्त कर लिया।

दोनों तरुण थे, सुन्दर थे, विवाहित थे, पति-पत्नी थे, रात्रि में एक कमरे में एक ही पलग पर सोते थे। आध्यात्मिक वार्तालाप भी करते थे किन्तु काम-वासना उन्हे छू भी नहीं सकी। ऐसे दम्पति की भक्ति से चौरासी हजार मुनियों की भक्ति का लाभ हो तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? मुनि विजय और साध्वी विजया ने अपने आजीवन अखडित शील-पालन और सयम से मोक्ष प्राप्त किया।

1 विजय सेठ और विजया सेठानी के शील-पालन की अद्भुत घटना और इसके महात्म्य की बात सुनने से प्राणी के मन में शील-पालन की शुद्ध भावना का जन्म होता है।

2 इस घटना का गुणगान और अनुमोदन करने से उत्पन्न होने वाली भाव-तरगों से उस शील-भावना का पोषण और उसकी वृद्धि होती है।

3 अपनी भौतिक औंखे बद करके कल्पना द्वारा उस घटना की काल्पनिक चित्रावली का ध्यान करने से प्राणी का मन शील-भावना पर एकाग्र हो जाता है। मन में इतनी शक्ति नहीं है कि वह औंखों को या कान को छोड़कर दूसरी जगह चला जावे।

4 शीलव्रत के महात्म्य का जप करने से मौन जप से उत्पन्न होने वाली आत्मिक ध्वनि-तरगे शील-भावना को मजबूत बनाती है।

5. बहुत दिनों के शील भावना के ध्यान के अभ्यास से शील स्थायी भाव बन कर प्राणी के अचेतन मन से उतर जाती है और इस आचरण का अंग बन जाती है। इस साधना मे लगा हुआ प्राणी किसी साधु विजय या साध्वी विजया बन जाता है। जरूरत है दृढ़ श्रद्धा के प्रतिदिन कुछ महीनों तक ध्यान करने की।

11. कुछ भ्रम

बहुत लोग सोचते हैं कि धन और भौतिक सुख केवल वर्तमान खोटे पुरुषार्थ से मिलता है। जैसे खाद्य पदार्थों मे मिलावट, काला दार्ढरे तस्करी, दो नम्बर के धधे, सरकारी कर चोरी, धोखा, झूठ, चोरी, ठगी इन रिश्वत, गरीब शोषण एवं हिसक धधा।

यदि उपर्युक्त विचार ठीक हो तो वर्तमान मे खोटे धधे करने वाले हजारों प्राणी दीन-हीन, गरीब और दुखी क्यों हैं? सभी खोटे धधों से न कमा कर सुखी क्यों नहीं बनते?

तर्क मे कहा जाता है कि वर्तमान पुरुषार्थ का फल तुरन्त मिलता है। लाल मिर्च खाते ही मुँह जलने लगता है और गुड खाते ही जलन कम हो लगती है। किन्तु कर्म सिद्धान्तानुसार कर्मों का फल 88,00,000 जनों वाले भी मिलता है। उसका तुरन्त ही मिलना जरूरी नहीं है।

यदि केवल वर्तमान काल की क्रिया का ही फल मिला करता है तो क्या पूर्व-कृत पुरुषार्थ से उपार्जित कर्म-फल बेकार है?

ससार के सभी महापुरुषों और धर्मों का कहना है कि अशुभ कर्मों का फल बुरा होता है। इस मान्यता के अनुसार वर्तमान मे खोटे धधे करने वाले को दुख ही मिलना चाहिये। किन्तु अभी बुरा काम करने वाले बुरा तो प्राणियों को धन और सुख मिल रहा है। ऐसा दीखता है कि वर्तमान का फल वर्तमान मे ही मिलना जरूरी नहीं है। वह अठयासी लाख भी भी मिल सकता है।

धन और सुख की प्राप्ति मे केवल वर्तमान पुरुषार्थ ही काफी नहीं। इसके लिये पुण्य का उदय होना जरूरी है। पुण्य चाहे पूर्व-कृत पुरुष से सचित हो, चाहे वर्तमान परिश्रम से उपार्जित हो।

पुरुषार्थ तो मात्र क्रिया है। क्रिया के साथ पुण्योदय हो तो धन भौतिक सुख मिलता है और पापोदय हो तो वही पुरुषार्थ धन-हानि दुःख का कारण बन जाता है। व्यापार पुरुषार्थ है। व्यापार मे पदार्थ दाता दाता गिर कर व्यापारी को हानि हो सकती है, माल आग मे जल राक्षा हो सकती है।

मे बह सकता है, उसे कीड़े खा सकता है। चोरी, ठगी या धोखा भी हो सकता है।

यदि प्राणी के अन्तराय कर्म या अशुभ कर्म का उदय है तो उसे किसी भी पुरुषार्थ से धन और सुख मिलने वाला नहीं है। यदि शुभ कर्म का उदय है तो वर्तमान मे किसी भी पुरुषार्थ के नहीं बनने पर भी केवल पूर्व-कृत शुभ पुरुषार्थ से सचित पुण्य के उदय से धन और सुख की वर्षा भी हो सकती है। शालिभद्रजी के साथ ऐसा ही हुआ। सेठ सुदर्शन ने सूली से रक्षा के लिये कुछ भी नहीं किया, किन्तु देवो ने सूली का सिहासन बना दिया। भगवान पाश्वर्नाथ की रक्षा भी केवल निमित्तो द्वारा हुई। प्रह्लाद की अग्नि से रक्षा हुई।

कभी-कभी वर्तमान काल के पुरुषार्थ के बिना और किसी भी सहायक निमित्त के बिना भी प्राणी के किसी पूर्व-सचित पुण्य से उसका काम बन जाता है, उसकी रक्षा हो जाती है। जैसे गोशालक की तेजोलेश्या से भगवान महावीर की रक्षा हुई। अर्जुनमाली के मुद्गर से सेठ सुदर्शन की रक्षा हुई। बेहोशी की दशा मे नदी मे बहाये गये भीम की सर्प-दशो द्वारा मृत्यु न होकर रक्षा होना पूर्व-सचित पुण्य का ही तो फल है।

यह केवल भ्रम है कि वर्तमान अशुभ खोटे धधो से अधिक धन और सुख मिलता है। शुभ कर्म के उदय मे साधारण शुभ पुरुषार्थ से ही धन और सुख मिल सकता है। खोटे धधो से आने वाला धन समय आने पर दुख का ही कारण बनेगा।

जिस महान पुण्योदय से आपको मानव देह मिली है, अच्छा कुल, अच्छा धर्म, त्यागी धर्म-गुरु और प्राय सभी साधन मिले है उसी पुण्य से आपका जीवन-निर्वाह हो सकेगा—इस बात पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए। नीति-मार्ग पर चलते हुए, विचारो मे समता और आचरण मे समता रखते हुए, मानव-जीवन के मूल लक्ष्य, परमात्म-पद की प्राप्ति की ओर आगे बढ़िये।

12 अमृत-बिन्दु

यह विचार कि मैं किसी प्राणी की या समाज की सेवा कर रहा हूँ—शायद हृदय के किसी कोने मे छिपे हुए अहकार ने भेजा है और यह विचार कि मैं दूसरो के परिश्रम और कृपा से ही बना हूँ, मुझे उनकी सेवा द्वारा उनके ऋण से मुक्त बनना चाहिये—विनय के आगमन की सूचना है।

कषाय - मुक्ति एक विवेचन

भाग - 2

अन्तिम और अन्तरिम लक्ष्य

जीवन का अंतिम लक्ष्य है—आत्म शुद्धि, आत्मा के सिद्ध स्वरूप दर्शाना प्राप्ति और अन्तरिम लक्ष्य है—कषाय आदि अवगुणों की निवृत्ति।

हम अनादि अनत काल से विषय विकारो मे फसे हुए हैं और इतने मुग्ध हो चुके हैं कि हमें इनसे निवृत्त होने का विचार भी नहीं आता। यदि कभी किसी दुर्घटना या किसी के उपदेश से विरक्ति का क्षणिक विकार आता भी है, तो वह क्षण भर ठहर कर कपूर की भाँति उड़ जाता है। इसके दो कारण हैं—प्रथम, हमारे विचारो मे विषय विकारो मे सुख प्राप्ति का दिखाई देना। और दूसरा, इन भोगो मे लम्बा अनत काल का हमारा इन्हें भोगते रहने का अभ्यास।

इन गलत विचारों में परिवर्तन लाने और सुधार करने के लिए प्रथम निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं—

(क) धार्मिक एव सत्साहित्य का अध्ययन, आध्यात्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, सत्संगति, सत वाणी का श्रवण आदि।

(ख) अपने अवगुणों का अवलोकन, उनकी सूची बनाना, उन दुष्कर्मों के लिए पश्चात्ताप करना एवं दड प्रायशिचत लेना।

(ग) उन अवगुणों को छोड़ने के लिए कुछ उपायों का विचार करना सकल्प करना, उन सकल्पों को दिन रात अधिक से अधिक घार दौहराते रहना।

(घ) अपनी आत्मा को निर्देश देने के लिए चुने हुए रिहायातों को सक्षिप्त वाक्य या सूत्र रूप में लिख लेना, उनका जप करना एवं उनके अर्थ पर विस्तारपूर्वक चितन करना।

(ड) इतिहास, साहित्य, अपने पड़ोसियों के एवं अपने जीवन में आई हुई दुर्घटनाओं पर चितन करके उन विचारों एवं सिद्धातों पर अपनी श्रद्धा को दृढ़ करना जिससे वे चेतन मन से अवचेतन मन में उत्तर कर स्थानी भाव बना सके।

अवगुणों को छोड़ने के लिए दूसरा उपाय है—दीर्घ अभ्यास। अभ्यास का अर्थ है—जीवन में घटने वाली घटनाओं में उन सिद्धातों को लागू करना। जैसे क्रोध जीतने का अभ्यास करने वाला किसी घटना पर जो उसे बुरी लगे उस पर क्रोध नहीं करे और यह विचार करे—“यह कष्ट तो मेरे पूर्वकृत कर्मों का ही फल है। इस पर समता रखने से ही मेरा यह कर्म नष्ट होगा। यह दुख तो मेरे कर्मरोग की दवा है, चिकित्सा है। इस दवा को समतापूर्वक पीना है। अपने मन को इन विचारों में या अन्य विचारों में लगाता हुआ क्रोध से बचने का उपाय करे। प्रत्येक क्रोध पैदा करने वाली घटना के समय समता रखने का अभ्यास करे। दीर्घकाल के अभ्यास से क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

आजकल मानिसक तनाव को दूर करने एवं जीवन के अतिम लक्ष्य निर्विकार दशा एवं परमानन्द की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की साधना एवं ध्यान किये जाते हैं, जैसे एक बिदु या पदार्थ पर दृष्टि जमाकर त्राटक ध्यान द्वारा मनोविजय पाना। विपश्यान ध्यान, नासाग्र पर दृष्टि जमाना, श्वास या शरीर-तत्र-प्रेक्षा, शरीर के किसी शक्ति-केन्द्र को जागृत करना। ये सब प्रयास मन को वश में करने के लिए किये जाते हैं। ये केवल साधन हैं—मन को वश में करने के।

हमारे जीवन का लक्ष्य है—कषाय-मुक्त होना, जिसमें प्रथम स्थान है क्रोध का। क्रोध एक ऐसा दुर्गुण है जो बड़े-बड़े तपस्वियों और साधकों को भी आसानी से नहीं छोड़ता। अत अपना समय अन्य साधनों की बजाय सीधा क्रोध की निवृत्ति की साधना में लगाना ज्यादा उपादेय रहेगा। दूसरों के द्वारा दिये गये कष्ट को दुख नहीं मानकर कर्म काटने की औषधि मानने की साधना से क्रोध निवृत्ति और समता की प्राप्ति हो सकेगी।

जब हम कष्ट में समता रखकर उसे दवा मान ले और निमित्त बनने वाले को परम उपकारी, अपना हितैषी और क्रोध रोग काटने की दवा देने वाला चिकित्सक मान ले और 24 घंटे इसका चितन-मनन-स्मरण करे, इसे क्षण भर भी नहीं भले, तो क्या हमारा क्रोध समाप्त नहीं होगा ?

क्रोध निवृत्ति की साधना

जैनागमो में चार प्रकार का क्रोध बताया गया है। प्रथम है अनन्तानुबंधी क्रोध जो पत्थर की तेड़ के समान है। यह क्रोध की तीव्रतम् दशा है, जो जीवन भर नहीं मिटती। इससे नरक गति की प्राप्ति होती है और मनुष्य कभी सुखी नहीं बनता।

दूसरा है अप्रत्याख्यानी क्रोध जो सूखे हुए तालाब में बनी हुई दल्ल के समान है। यह भी क्रोध की तीव्र दशा है जो वर्ष भर नहीं मिटती। इससे प्राणी को तिर्यच (पशु-पक्षी) की गति की प्राप्ति होती है। यह भी दुरुदायी है।

तीसरा है प्रत्याख्यानी क्रोध। यह गाड़ी के जाने से रेत में दल्ल लकीर के समान है और स्वयं ही मिट जाती है। यह क्रोध की मद दरा है, जिससे प्राणी को मनुष्य गति की प्राप्ति होती है।

चौथा है सज्जलन क्रोध जो पानी में बनी लकीर के समान है। दूर क्रोध की मंदतम दशा है, जिसमें प्राणी का देवगति का वध होता है। ग्रेम जितना ही कम होगा, आत्मा पर कर्मों का उतना ही कम वंध बनेगा और आत्मा के उत्थान की उतनी ही अधिक संभावना होगी।

अच्छा यह रहेगा कि हम सर्वप्रथम क्रोध-निवृत्ति की साधना से प्राप्त करें। इससे हमारा सारा ध्यान एक ही दुर्गुण की निवृत्ति की ओर लगेगा जिससे सफलता जल्दी मिलेगी।

मनुष्य का एक प्रबल अवगुण है—क्रोध। इसके सबध में कहा जाता है कि जिसने क्रोध को जीत लिया, उसने अपने जीवन की तीन चांशादं साधना पूर्ण करली। देखने में भी आता है कि कुछ बड़े-बड़े विद्वान् पहिला तपस्वी, सत महात्मा भी समय पर इसके शिकार होने से नहीं बच पाते। क्रोध आने पर प्राणी अपना आपा भूल जाता है और क्रोध में ऐसा भयकर अनर्थ कर बैठता है कि जन्म भर उसके दुखद परिणाम को भोगना परता है। क्रोध अनेक शत्रुओं को पैदा कर देता है और प्राणी जीवन भर भय, चिंता, सघर्ष और झगड़ों से फसा रहता है।

क्रोध आने के कई कारण हैं। जब प्राणी की इच्छापूर्ति में कोई वापक बनता है तब बाधक पर क्रोध आता है। प्राणी की इच्छा होती है सुर भोगना, दुख से भागना, किसी को मारना, किसी को तारना, आराम करना अपना काम करना, धन-सग्रह करना। इनमें वाधा देने वाले पर क्रोध आता है। यदि कोई व्यक्ति हमारा अपमान करता है या हमें कठवीं वात कहता है तब भी हमें क्रोध आ जाता है। अत हमें हमेशा सजग रहना चाहिए कि हम कोई ऐसा काम नहीं करें जिससे अनावश्यक रूप में झगड़ा यद।

क्रोध आने पर प्राणी साधारणतया तीन प्रकार के कार्य करता है। प्रथम—पदार्थों की तोड़-फोड़ करता है। दूसरे—सामने वाले प्राणिपक्षी को गाली देना, उसे पीटना, धोखा देना, उसकी हत्या करना आदि में लाप सकता है। तीसरे—वह स्वयं भूखा रहने, घर से भागने, अपने शरीर को छोड़

पहुँचाने, या आत्म-हत्या करने के कार्य में लग सकता है। ये सभी त्यागने योग्य हैं। हमें सजग रहकर इससे बचना चाहिए।

क्रोध से रोगोत्पत्ति, धन-हानि, मान-हानि एवं अनेक प्रकार के सघर्ष एवं दुख हो जाते हैं। क्रोध करने वालों ने हमेशा दुख ही उठाया है। जैसे-कौरव, कर्ण, रावण।

क्रोध निवृत्ति से स्वास्थ्य, धन, मान, सुख एवं परमात्म-पद की प्राप्ति होती है। इसके उदाहरण हैं—मुनि गजसुकुमाल, मुनि-मैतार्य, मुनि उदाई, मुनि अर्जुनमाली, मुनि स्कदक और वे पाँच सौ नव दीक्षित नव-युवक सत जिन्हे पालक ने धाणी में पिलवा दिया था। इन सतों की मृत्यु घटनाओं की कथा का श्रवण, अध्ययन, इसके समता-भाव का अनुमोदन, इनसे प्रमोद भावना का आना और इन्हे बार-बार भावपूर्वक भाववदन करना क्रोध का नाश करता है। इससे कर्मों की निर्जरा, आत्मा की शुद्धि और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

क्रोध के समय प्राणी उसे दुख देने वाले व्यक्ति के कामों में दोष ढूढ़ने, उसके अपराधी होने के प्रमाण पाने, उसे दड़ देने, धोखा देने, हानि पहुँचाने, नीचा दिखाने और उससे बदला लेने की योजना बनाने आदि में लग जाता है। प्राणी को सजग होकर इन बातों से बचना चाहिए।

क्रोध से बचने के लिए सर्वप्रथम कर्म सिद्धात का अध्ययन एवं उसमें गहरी श्रद्धा बनाना आवश्यक है। उसे यह समझना एवं मानना चाहिए कि ससार का कोई भी प्राणी निश्चय में किसी दूसरे प्राणी को अर्थात् मुझे सुख या दुख नहीं दे सकता। मुझे जो दुख मिल रहा है वह मेरे ही किए हुए दुष्कर्मों का फल है। दूसरा प्राणी तो केवल निमित्त ही बन सकता है। मैं मेरे दुष्कर्मों के उदय से आये हुए इस दुख या कष्ट से बच नहीं सकता। अत मुझे पूर्ण समताभाव रखकर इस आये हुए कष्ट को कर्म-रोग के काटने की दवा समझकर समतापूर्वक पी लेना चाहिए। यह मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा हो रही है। मेरे अशुभ कर्मों की निर्जरा हो रही है। मेरे आत्मा की शुद्धि हो रही है। और सभव है मुझे मुक्ति की प्राप्ति भी हो जावे।

यह प्राणी जो मेरे इस कष्ट में निमित्त बना है, जो मुझे शत्रु दिख रहा है, वह न तो मेरे लिए बुरा है और न मेरा शत्रु ही है। वह मेरा हितैषी और परम उपकारी है। मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा के लिए डॉक्टर बनकर आया है। मुनि गजसुकुमाल, मुनि खदक आदि ऐसा चितन करके क्रोध-निवृत्त हुए और वे ससार भ्रमण से मुक्त बने।

क्रोध दूर करने के कुछ साधारण उपाय भी हैं। जैसे—प्रतिकूल दिल्ली के समय उस स्थान से कुछ दूर चले जाना या जल पी लेना या कोई सुन्न रोचक पुस्तक या कहानी पढ़ने में लग जाना। मन को किसी भी दूर रोचक कार्य में लगा देने से क्रोध वाली घटना भूली जा सकती है। द्रव्य से होने वाली हानि पर विचार किया जावे। क्रोध पर विजय से होने वालाभ पर विचार किया जावे। क्रोध से दुख और क्रोध निवृत्ति से सुख पावाले लोगों के उदाहरण पर चितन मनन किया जावे। ऐसे अनेक उपाय हैं।

अवगुण निवृत्ति की साधना के सबंध में मनोविज्ञान का कहना है कि गलत और बुरे विचारों और सस्कारों को दूर करने के लिए सही और अच्छे विचारों और सस्कारों का बार-बार चितन-मनन कीजिए। किसी अच्छे विचार को दस-बीस मिनट तक बार-बार दोहराने से आपके मन में उस विचार की तरण पैदा होगी और वे बुरे विचारों की तरण को तोड़ देंगी। इसमें समय लगेगा किन्तु सफलता अवश्य मिलेगी। साधकों का कहना है कि आप जो कुछ दोहराते हैं उस पर यदि आपको प्रारम्भ में पूर्ण विश्वास नहीं भी हो तो भी आपका दोहराना और जप करना व्यर्थ नहीं जावेगा। बार-बार दोहराने से वे विचार आपके मन में स्थान बना लेंगे, अवधेतन में में उत्तर जावेगे, स्थायी भाव का रूप ले लेंगे, और आपके जीवन के आचरण बन जावेगे। कहा जाता है कि दस लाख बार दोहराया हुआ विचार जन्म जन्मान्तर में भी साथ रहता है। अत आप जो विचार अपनाना चाहते हैं उसे जपिये, बार-बार दोहराइये, पहुंची या कागज पर लिखिये, कुछ दो तीव्र गति से जपिये, फिर मद गति से जपिये, उसके अर्थ पर भी चितन कीजिये और उसकी सत्यता पर अनेक दृष्टियों से चितन-मनन भी करें। उसमें दृढ़ श्रद्धा बनाइये।

दुख-चेतना-निवृत्ति और क्रोध-निवृत्ति के लिये धितन करिये- 'दुर
मेरे पाप कर्मों का फल है।' दुख में समता रखते हुए सोचिये- 'दुरा गर
पाप कर्मों को काटने की दवा है और निमित्त मुझे पाप कर्म काटना की दवा
देने वाला डॉक्टर है।'

आप उपर्युक्त सूत्रों को दिन रात में वार-वार दोहराइये, उनका अपना पर चितन कीजिये। रात्रि के शात वातावरण में सोते समय दस-वीरा भिन्न इनको दोहरावे, सबरे उठते ही काफी समय तक इनको दोहराय। उन उपायों से किसी को पॉच-दस महीनों में ओर किसी को दा-वार लाई ग्रन्थ से मुक्ति और पूर्ण समता की प्राप्ति हो सकेगी। दिन रात के 24 घण्टे

मे केवल एक घटे ध्यान साधना करना और 23 घटे आर्त-रौद्र ध्यान करना और अवगुणों का अभ्यास करना कुछ-कुछ ऐसा ही लगता है जैसे 24 घटो मे एक रूपया कमाना और 23 रूपये खर्च करना। अत शीघ्र सफलता के लिये एक घटे के नियमित समय के एकावधान के अतिरिक्त जब-जब भी समय मिल सके, तब-तब दिन मे कई बार अपने लक्ष्य का चितन एव स्मरण करते रहना चाहिये। उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय अपना लक्ष्य अपनी स्मृति मे रहना चाहिये, तभी सफलता मिलेगी।

ध्यान मे एक ही विषय पर एकावधानता का होना आवश्यक है किन्तु ध्यान के उसी विषय मे विषयातर होना ध्यान मे बाधक नही, किन्तु साधक है। जैसे क्रोध निवृत्ति के ध्यान मे—क्रोध क्या है? उसके कितने भेद है? उसके कारण क्या-क्या हो सकते है? उसमे प्राणी क्या-क्या विचार करता है और क्या-क्या अनर्थकारी काम करता है? उससे होने वाली हानि क्या है? उसकी निवृत्ति से क्या-क्या लाभ होते है? उनके उदाहरणो पर भी विचार किया जावे। क्रोध निवृत्ति के भिन्न-भिन्न क्या-क्या उपाय है? उनका ध्यान, चितन-मनन भी आवश्यक, उपादेय और साधना मे साधक है। इसे विषय मे विषायन्तर 'होना कहा जा सकता है किन्तु यह कार्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मन की थकान को दूर करने वाला और उसे अधिक सक्रिय बनाने वाला है। इससे विचारो मे पूर्णता एव दृढ़ता आती है। ऐसा ध्यान सहज-ध्यान या सहज-योग कहा जा सकता है।

क्रोध से बचने का साधारण उपाय—क्रोध आने की जहाँ घटना हो रही है, वहाँ से उठ कर दूसरी जगज चले जाना, ठड़ा पानी पी लेना, कोई कहानी पढ़ने से लग जाना या किसी दिलचस्पी वाले काम मे लग जाना।

क्रोध पर विजय पाने का दूसरा उपाय—इसके दो सूत्रो का दिन मे कई बार कुछ महीनो तक प्रति दिन जप करना अर्थात् उन्हे दोहराते रहना और उनके अर्थ का चितन करते रहना। वे दो सूत्र ये है—(क) दुख मे समता रखूगा यह दुख कर्म-रोग काटने की दवा है। (ख) दुख मे निमित्त बनने वाला मुझे कर्म-रोग काटने की दवा देने वाला डॉक्टर है।

क्रोध जीतने का तीसरा उपाय है कि चार प्रकार के अभ्यास किये जावे। प्रथम अभ्यास है—भूतकाल की क्रोध की एक घटना को याद करके उसके लिये पश्चात्ताप किया जावे और कुछ दड प्रायश्चित लिया जावे। जैसे दो दिन मिठाई छोड़ना, नमक छोड़ना, कुछ दान देना, उपवास या एकत करना। इसके साथ ही कल्पना द्वारा उस घटना मे अपने आचरण

को समतामय बनाने का अभ्यास करना अर्थात् यह सोचना कि यह कष्ट, दुख या सकट मेरे ही किसी पूर्वकृत प्रापकर्म का फल था। वह दुःकभी-न-कभी भोगना ही पड़ता। यह कष्ट मेरे किसी पूर्वकृत प्रापकर्म का टाटने आया था। लेकिन मैं समता नहीं रख सका। भविष्य मे कोई प्राप्ति कितना ही दुख देवे, मैं पूर्ण समता रखूँगा। मुनि गजसुकुमालजी ने दुख को दवा माना और दुख से निमित्त बनने वाले को कर्म-रोग करनी दवा देने वाला डॉक्टर माना।

दूसरा अभ्यास—निकट भविष्य मे घटने वाली सम्भावित घटनाओं दर्शानी बनाइये और एक-एक घटना को याद करके कल्पना द्वारा प्रत्येक घटना को अपने किसी पाप का फल मानकर उसमे पूर्ण समता रखने का संकल्प कीजिये।

तीसरा अभ्यास—वर्तमान मे होने वाली प्रत्येक घटना मे उपर्युक्त दोनों सूत्रों का तीन-चार बार चितन करके अपने आचरण को पूर्ण समताना रखे। यदि कुछ कमी रह जावे तो उसके लिये पश्चात्ताप कीजिये और दर्शन प्रायश्चित्त भी लीजिये।

चौथा अभ्यास—जिन व्यक्तियों से आपकी थोड़ी भी नाराजगी हो उनके नाम ले लेकर उनके पास सबेरे और रात्रि मे पाँच-दस मिनट मिना भावना का और शुभकामना का सदेश भेजिये—“मैं आपका मित्र हूँ। आपका भला चाहता हूँ। आपका भला हो, भला हो, भला हो।” आप इस सदेश दर्शन भेजते समय आप अपने मन मे कल्पना कीजिये कि यह वात आप उराद कान मे कह रहे हैं। सबेरे और रात्रि मे भेजा गया यह मोन सदेश, रामान है, जादू का सा काम करे और आप दोनों मे मित्रता स्थापित हो जाएँ। प्राणीमात्र के कल्प्याण की भावना बहुत उत्कट और उद्यतरूप धारण करने तो इससे तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन भी हो सकता है।

साधना के लिए सर्व प्रथम एक दुर्गुण को छोड़ने की साधना प्रार्थना करना ठीक है। इसका कारण यह है कि मन की सारी शक्ति एक ही गति पर केन्द्रित हो सकेगी। आप उठते वैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, दिन मे पचास बार दोहराइये “क्रोध छोड़ना है, इस पुनरावृत्ति से सजगता रहना है, जो सफलता की जननी है।

दुर्भावना-निवृत्ति

मनुष्य की दूसरी बड़ी कमजोरी है—दुर्भावना। हमारे मन मे कुछ ऐसे स्सकार जम गये हैं कि जब हम अन्य किसी प्राणी का पतन देखते हैं,

सुनते हैं तो मन में एक प्रकार की विचित्र सत्तुष्टि की हलकी-सी लहर पैदा हो जाती है मानो मुझे कुछ प्राप्ति हो गयी है। "मैं उस व्यक्ति से कुछ ऊपर उठ गया हूँ। वह मेरे सामने सिर उठाने, बोलने लायक नहीं रहा। उसका यह पतन बुरा होते हुए भी मेरे लिए तो अच्छा ही है। मैंने तो उसका पतन नहीं कराया। मैं तो निर्दोष हूँ। किन्तु मेरे मन लायक बात हो गयी।" कभी-कभी इससे हमें विचित्र सुख जैसा कुछ अनुभव होने लगता है। यह भावना ऊपर से दुष्कर्म नहीं दिखते हुए भी गहराई में भयकर भाव दुष्कर्म है। लोग चाहे इसे दुष्कर्म नहीं माने, किन्तु यह महान् दुष्कर्म है और उस प्राणी के आध्यात्मिक विकास को रोक देता है।

जो अनुभवहीन है उनकी दुर्भावना प्रकट हो जाती है और जो डस्से भी नीचे स्तर वाले लोग हैं, वे ऐसी घटनाओं पर अपनी प्रसन्नता को मिठाई बॉटकर भी प्रकट करते रहते हैं। दूसरों के सकट या पतन में खुश होना केवल अपने लिए अनावश्यक भयकर अशुभ कर्मों का बध करना है। अत प्राणी को हमेशा दुर्भावना से बचना चाहिए और दूसरों के लिए शुभ भावना भाकर अपना आध्यात्मिक विकास करना चाहिए।

जो प्राणी दुर्भावना से भरा हुआ है उसके लिए विकास और साधना के सभी दरवाजे बद हो जाते हैं। वह किसी का कुछ भी बुरा नहीं करता हुआ भी तन्दुल मत्स्य की भाँति सातवी नरक के आयुष्य का बध कर लेता है। तन्दुल मत्स्य एक छोटा-सा चावल के दाने जितना मत्स्य होता है। वह बड़े-बड़े मत्स्य के भौंह पर बैठा रहता है। बड़ा मत्स्य मुँह खोले हुए पड़ा रहता है। अनेक मछलियाँ जल प्रवाह के साथ उसके मुँह में जाती हैं और सुरक्षित ही खेलती हुई उसके मुँह से बाहर निकल जाती है। वह चावल जितना छोटा तन्दुल मत्स्य सोचता है—“यदि मैं इस बड़े मत्स्य की जगह होता तो एक भी मछली को मुँह में आने के बाद बाहर नहीं निकलने देता।” वह खाता तो एक भी मछली को नहीं है, किन्तु केवल दुर्भावना के कारण ही सातवी नरक जाता है।

दुर्भावना का दूसरा रूप है दूसरों को दुख देने का विचार करना। ऐसा प्राणी केवल भाव-हिस्सा से ही महान भयकर नरक के आयुष्य का बध कर लेता है। दुर्भावना से बचने और भावना को शुभ एवं शुद्ध बनाने के लिये बार-बार दोहराइये—

सबका भला हो, सबका भला हो, सबका भला हो।

परिवार-मोह-ममता की निवृत्ति

प्राणी की तीसरी प्रबल कमज़ोरी है—परिवार की मोह-ममता। एक परिवार में, सास-बहुओं में, देवरानी-जेठानी में, ननद-भौजाई में देवर-भैंज में तो भेदभाव और अलगाव का होना अस्वाभाविक नहीं भी हो सकता क्योंकि वे अलग-अलग माताओं की सताने हैं किन्तु एक ही माता-दंसतानों में, बहन-भाइयों में, भाई-भाई में, पुत्र की शादी के बाद माता-पुमें और पिता-पुत्र में भी कभी-कभी भयंकर अलगाव और सघर्ष पेंदा जाता है। फिर भी लोग परिवार के मोह में फसकर आत्म-कल्याण और न्याय की बात पर विचार नहीं करते। इस सबध में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण विचार करना आवश्यक है।

प्रथम दृष्टिकोण है—आत्म-स्थिति का। इस दृष्टिकोण से सभी प्राणी अलग-अलग हैं। सबकी आत्माएँ, शरीर, विचार, स्वार्थ आदि अलग-अलग हैं।

दूसरा दृष्टिकोण है—कर्म-फल-भोग का। एक ही परिवार में एक हँसता है, दूसरा रोता है। एक भरपेट स्वादिष्ट पौष्टिक भोजन करता है, दूसरा भूखो मरता है। एक स्वस्थ है, दूसरा रोगों से पीड़ित पड़ा हुआ करता रहा है। एक अमीर है, दूसरा गरीब है। एक स्वामी है, दूसरा सेवक है। एक पडित और बुद्धिमान है, दूसरा अशिक्षित और मूर्ख है। एक सुखी है, दूसरा दुःखी है। कोई किसी को अपना पुण्य, अपनी आयु, अपना सुख दे नहीं सकता और दूसरे का पाप, उसकी मौत, उसका दुख ले नहीं सकता। फिर दोनों का एक ही परिवार में होना या दो परिवारों में होना समान-रा ही है। परिवार में सब अलग-अलग है। कोई किसी का नहीं होता।

तीसरा दृष्टिकोण—पूर्व जन्मों के कर्म विपाकों से, राग-ह्वेष से जुड़ हुई आत्माएँ पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि के भिन्न-भिन्न रूप धर कर परिवार में आती हैं और परिवार वालों के कर्म-फल प्राप्ति में सिर्फ निमित्त वनकास अपना पुराना कर्ज चुकाती हुई या दिया हुआ कर्ज वसूल करती हुई या बदला लेती या देती हुई नाटक के पात्रों की तरह अलग-अलग चली जाती हैं।

चौथा—प्राणी कर्म रूपी मदारी के हाथ में बदर या रीछ की भौंति नारा दिखाता हुआ, अपना कर्म-फल भोगता हुआ, परिवार में रहता हुआ भी एक अपेक्षा से सबसे अलग ही है।

पाँचवा—यह जीवन एक योत्रा है और सभी प्राणी यात्रा से अग्रिम कुछ भी नहीं है। परिवार केवल यात्रियों का झुंड है। यात्रियों में काई यिनीं का “अपना” नहीं होता।

छठा—सभी प्राणी एक दूसरे के लिए निमित्त से अधिक कुछ नहीं है। निमित्त को “अपना” समझना और उस पर मोह करना भूल है।

सातवा—प्राणी ने मनुष्यों, देवों, तिर्यचों के अनेक परिवारों में अनेक बार जन्म लिया है। वह किस परिवार को अपना परिवार माने? वह उन्हें पहचान भी नहीं सकता।

आठवा—एक महिला पीहर को अपना परिवार माने या ससुराल को? जिस महिला ने दो-तीन बार तलाक दिया है वह अपना परिवार किसे समझे? पीहर को या प्रथम ससुराल को या दूसरी ससुराल को या तीसरी ससुराल को? एक मनुष्य के कई पत्नियाँ हैं। क्या आने वाले भविष्य के जन्म में भी यह परिवार कायम रहेगा? राजा सगर के साठ हजार पुत्र बताये गये हैं और कौरव सौ भाई थे। क्या भविष्य में भी ये परिवार ऐसे ही परिवार बने रहे थे या सब अलग-अलग हो गये थे?

नवा—मनुष्यों के कर्म, मन के विचार और भावनाएँ अलग-अलग होती हैं। वे मर कर अलग-अलग गतियों में अलग-अलग परिवारों में जाते हैं। अत परिवार किसी का रथायी नहीं रहता, वे हमेशा बदलते रहते हैं।

दसवा—एक प्राणी की दसवीं पीढ़ी में उसके सैकड़ों परिवार बन जाते हैं। वह किसे अपना परिवार माने? किसमें जन्म ले?

ग्यारहवा—यदि परिवार में सब अपने ही अपने होते तो “अपनों” में अलगाव, मन-मुटाव, शत्रुता और बदला लेने की भावना क्यों रहती है? सुग्रीव-बालि, कर्ण-अर्जुन, कौरव-पाडव, रावण-विभीषण, उग्रसेन-कस, हिरणकश्यप-प्रह्लाद आदि इस बात के प्रमाण हैं कि परिवार में शत्रु भी जन्म लेते हैं। परिवार के सभी सदस्य आपस में “अपने” नहीं होते। ससार में कोई किसी का “अपना” नहीं होता। प्राणी को अकेले से दुकेला तो उसके कर्म ही बनाते हैं।

बारहवा—प्राणी की सबसे बड़ी चाह है सुख की प्राप्ति। किन्तु वह भूलता है कि हमारे सुख में निमित्त बनना भी परिवार के हाथ में नहीं है। सुख-सुविधा की प्राप्ति होती है शुभ कर्मों से, पुण्योदय से। हमें सुख देना किसी अन्य प्राणी या हमारे परिवार के हाथ में नहीं है। हमें पर-कृत या परिवार-कृत का फल नहीं मिल सकता। इस ज्ञान में दृढ़ श्रद्धा का उत्पन्न होना ही परिवार-ममता-मोह को दूर करता है। याद रखिये—“पर-कृत या परिवार-कृत कर्म का फल हमें नहीं मिल सकता, परिवार बेचारा क्या करे?”

तेरहवा—कुछ मनुष्य जन्म से ही विकलाग पैदा होते हैं। कौई अगहीन है, कौई अधा है, कौई लूला-लगड़ा है, कौई बहरा है, कौई नहीं है, कौई जन्म से ही असाध्य भयंकर रोग से पीड़ित है, कौई अति द्रव्यं और दुष्ट स्वभाव वाला है, कौई बिलकुल ही मूर्ख और बुद्धिहीन है, कौई बिलकुल ही पुण्यहीन है, उसके सुख के लिये बेचारा परिवार क्या लें? परिवार हजार-हजार उपाय करके भी उसके हित में कुछ भी नहीं ले सकता। अत परिवार-मोह-ममता हटाने के लिये स्वाध्याय का एक सूत्र है—“परिवार किसी को उसके पाप-कर्म फल-भोग से बचा नहीं सकता, परिवार बेचारा क्या करे ?”

“परिवार का मेला मानो, कठपुतली का खेला है।

अपने-अपने कर्म भोगता, जाता जीव अकेला है।”

किसी भी प्राणी को, एक भी प्राणी को उसके पाप-कर्म-फल-भोग र तीर्थकर भी नहीं बचा सकते। अपने परम भक्त राजा श्रेणिक को भगवन् महावीर भी नरकगमन से बचा नहीं सके। परिवार बिचारा क्या करे ?
चेतावनी

यह निश्चित है कि परिवार में भी कौई किसी को कुछ देता लेता नहीं है। किन्तु पूर्व जन्मो का जो लेना-देना बाकी है वह तो निमित्त यन्म लेना-देना ही पड़ेगा। इससे कौई भी प्राणी किसी हालत में बचा नहीं सकता। अत हमें परिवार में अपने कर्तव्य का पालन समता भाव से, तात्त्व भाव से, राग-द्वेष रहित भाव से करके ऋण मुक्त एव कर्म मुक्त यन्म चाहिये। जो प्राणी ममता-त्याग के बहाने अपने कर्तव्य से विमुख होता है वह साधक नहीं बन सकता और अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त नहीं दर सकता किन्तु वह अपने-आप को धोखा देता है। बड़े से बड़े त्यागी के लिए भी समाज सेवा करना उसका कर्तव्य है, इसे बड़ा परिवार कहा जा शकता है। वसुधा को ही अपना कुटुम्ब मानकर छ काया के जीवों पर दगा करना ही परमधर्म है।

दुख चेतना-निवृत्ति

क्रोध, दुर्भावना एव ममता की निवृत्ति के बाद प्राणी का चाथा अव्यग्रह है—दुख चेतना। प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न हो जाने पर साधारण प्राणी को में, गरीबी में, पदार्थों के अभाव में, इच्छापूर्ति नहीं होने पर, उसे दुख माना जाता है, दुखी होता है, रोता है, चिल्लाता है, उससे भागने का प्रयास किया जाता है।

अनेक सघर्ष और अनर्थ करता है। ये सब दुख से दुखी होने के विचार के कारण होते हैं। यदि प्राणी उसे दुख नहीं मानकर उसे अपने कर्मों का फल माने, उसमें सम्भाव रखे, उसे कर्म-रोग काटने की दवा माने और उसे हँसते-हँसते पीले अर्थात् सहन करले, उससे कुछ शिक्षा ग्रहण करे तो वह दुख भूल में पड़ जाता है। विचार धारा दूसरी ओर चली जाती है और दुख दुख नहीं रहता, वह समता के कारण दुख और कर्म काटने की दवा बन जाता है।

दुख पदार्थ या परिस्थिति में नहीं रहता, वह विचारों के कारण पैदा होता है, जिस भूख और कष्ट में साधारण लोग दुख मानते हैं उसी भूख और कष्ट में तपस्ची सुख मानते हैं। भूख में जो भोजन मीठा लगता है वही मीठा भोजन पेट अधिक भर जाने पर दुखद लगने लगता है। शत्रु द्वारा जिस गाली को सुनकर प्राणी को दुख होता है और क्रोध आता है, ससुराल में गीतों में उसी गाली को सुनकर उसे प्रसन्नता होती है। यह सब विचारों से होता है। यदि प्राणी अपनी विरक्त विचार धारा को दृढ़ करे और कष्ट को सहर्ष सहने का अभ्यास करता रहे तो उसे दुख चेतना से बचने के लिए कोई कठिनाई नहीं होगी। वह अनेक प्रकार के कष्टों और कर्म बधनों से बच जावेगा।

चक्रवर्ती की पटरानी श्रीदेवी पति-वियोग मे छ महीने विलाप करती है और वह छठे नरक मे जाती है। अत दुख चेतना से बचना चाहिये।

दुख चेतना मे प्राणी अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प करता है, आरम्भ-समारम्भ की योजनाएँ बनाता है, शत्रु से बदला लेने के भावो मे अशुभ विचार धारा मे बहता चला जाता है और विचारो के प्रवाह मे ही भयकर कर्मो के बधन करके नरक मे चला जाता है। दुख चेतना से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। यदि किसी भी परिस्थिति मे प्राणी दुख को दुख नही माने, दुखी नही होये, उसे कर्मो का फल माने और समता रखे तो वह मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का यात्री बन जाता है। उसके लिये मोक्ष का मार्ग सरल और सुगम बन जाता है।

सुख चेतना-निवृत्ति

अनुकूल परिस्थिति में, भौतिक सुख भोगो में, सुख अनुभव करना सुख चेतना है। राज्य सत्ता पाने पर, धन-सम्पत्ति एवं भोगो की प्राप्ति होने पर, मद्य-मासादि में, जुआ व्यभिचार आदि में, प्राणी सुख अनुभव करता है। मासाहारी पशुओं का शिकार करने में, अडे आदि के भक्षण में सुख मानता है। यह सुख चेतना है। कुछ व्यक्ति दूसरों को दूख देने में, लड़ाने-भिड़ाने

मे सुख मानते हैं। कुछ लोग दूसरों के पतन और सकट मे हल्की-रँड़ी की अनुभूति करते हैं। दुर्भावना वाले प्राणी दूसरों के अनिष्ट की हँड़ी करते हुए और उन्हे अनिष्ट पहुँचाने का कार्य करते हुए भी दूसरों शुभयोग की स्थिति मे उनका तो कुछ भी बुरा नहीं कर सकते, किन्तु इन्हें लिए अशुभ कर्मों के बध करके अपना ही बुरा करते हैं। सुख-नेतृत्व अनुभूति का परिणाम होता है—दुख-प्राप्ति। सुख मे प्रारम्भ से अन्त तक दुख ही दुख भरा है।

काम भोगो मे सुख नहीं, किन्तु महान् दुख है। सुख चेतना कारण काम भोगो मे अधिक फसे हुए प्राणी विजय सेठ और विजया तंत्र के अखड़ शील पालन की कथा का और राज्य प्राप्ति के लोभ ओर तत्त्व के भय की भी परवाह नहीं करके अपने शील की रक्षा करने वाले तत्त्व सुदर्शन की शील रक्षा की कथा का बार-बार अध्ययन, कीर्तन, तत्त्व अनुमोदन एवं ध्यान करके इन कार्यों से उत्पन्न होने वाली विचार तत्त्व ध्वनि तरगो और भाव तरगो से इस भयकर अवगुण से मुक्ति पा सकते हैं। काम की उत्पत्ति केवल शृगार या एकात से नहीं होती। इसका वास्तव जनक है भोगो की कल्पना और इसका नाश करने वाला है शील रक्षण कथाओं मे प्रमोद भावना का आना, उससे अपने अदर शील रक्षण की तत्त्व का पैदा करना एवं उन्हे दृढ़ करना। इनके उदाहरण हैं—कुणाल, दुर्गादास, साध्वी राजमती, सती मदनरेखा आदि।

मनुष्य सुख खोजता है प्राय परिवार मे, दुर्भावना मे, अपने शरीर काम वासना मे, सग्रह मे और विकथा मे किन्तु इनमे सुख नहीं मिलता।

सुख चेतना शायद दुख चेतना से भी अधिक दुखदायी हो रात है। अनुकूल परिस्थिति, धन-सम्पत्ति, शक्ति व सत्ता पाकर प्राणी शवण व कौरवों की भृति अनीति पर उत्तर जाता है और लोगों के दुख का काम बन जाता है। अपने लिए सुख प्राप्ति की कामना से दूरारों दे लिए विनाशकारी योजनाएँ बनाकर वह स्वयं ही दुखों मे फस जाता है।

सुख बाहरी पदार्थों मे है ही नहीं। यह तो सुखाभास है। भर्तुर्लभिन्न ने कहा है—“भोगे रोगभय” भोगो मे रोग भरे पड़े हैं। धन-सत्ता के नशे प्राणी कर्तव्या-कर्तव्य का भान भूल जाता है। दुर्भावना मे रुखानुभूति करने वाले केवल पाप और भविष्य मे दुख के भागी बनते हैं। सुख का गिरावच भयकर विष के समान है जो प्राणी को भयकर वेदना पहुँचाता है और अन्त जन्मो मे रुलाता है।

सुख वास्तव में है त्याग में, प्राप्त पदार्थों और आये हुए सुखों को दूसरों को देने में। अपना तो अपनी आत्मा के सिवाय कुछ भी नहीं है। ससार के सभी पदार्थ पराये हैं, दूसरों की धरोहर है। इस धरोहर को समालने में नहीं, किन्तु लौटाने में ही सच्ची स्वतंत्रता और सुख है। इसे रखना तो परतंत्रता है, चौकीदारी है, बधन है, भय और चिंता को गले लगाना है। सच्चा सुखी वही है जो दुखियों के दुख को दूर करे और सुखियों के सुख को देखकर प्रसन्नता अनुभव करे। “सच्चा सुख है इच्छा-निवृति में, परिग्रह त्याग में, धरोहर लौटाने में।”

प्राणी जो भी काम करता है वह चाहे कुछ भी हो, उसका अन्तिम मूल लक्ष्य होता है—भविष्य से सुख प्राप्ति की आशा। और सुख प्राप्ति का माध्यम है शरीर, इन्द्रियों और मन। अत सुख चेतना-निवृत्ति के लिये आवश्यक है देह की आसक्ति से निवृत्ति।

देहासक्ति छोड़ने का प्रथम सूत्र है—

यह शरीर मेरा नहीं है, यह नाशवान है

इसके जाने से मेरा कछ भी नहीं जाता।

दूसरा सूत्र है—

खण्मेत सोक्खा, बहकाल दक्खा ।

क्षणभर का सुख बहुत समय तक दुख देता है।

कभी-कभी इस शरीर मे इतने भयकर वेदना वाले रोग एक ही साथ पैदा हो जाते है कि प्राणी का सुख से जीना कठिन हो जाता है। कैंसर, ऑटडियो मे धाव, पैर की हड्डी का टूट जाना आदि प्राणी को सुख से नहीं जीने देते। “यह शरीर दुखो की खान है।” शरीर की आसक्ति छूटने से सुख-चेतना छूट सकती है।

इच्छा-निवृत्ति

इच्छा भी मानव की बड़ी कमजोरी है। इच्छा ही ससार है, यही बधन है। यही सब योजनाओं, दुर्भाविनाओं, अवगुणों, दुखों, कष्टों, सघर्षों एवं युद्धों का कारण है। यदि इच्छा समाप्त हो जाती है तो उस प्राणी के लिए ससार भी नहीं रहता, विषय वासनाएँ नहीं रहती, वह पूर्ण प्रुष बन जाता है।

इच्छा साधारणतया पाँच प्रकार की होती है—1 दुखों से भागने की, 2 सुख भोगने की, 3 शत्रुओं को मारने पीटने की, 4 अपने प्रियजनों को तारने, सुधारने एवं सुख देने की और 5 धर्म पालन द्वारा अपना भविष्य सुधारने की।

यह ध्यान रखने की बात है कि इच्छाएँ आकाश के समान उन सभी इच्छाएँ कभी किसी की भी पूर्ण नहीं हुई। एक इच्छा के पूर्ण होने दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। अत इच्छापूर्ति से ही सुख प्राप्ति कामना करने वाला कभी भी सतुष्टि और सुखी नहीं बन सकता।

इच्छा निवृत्ति सबसे कठिन कार्य है। इसकी निवृत्ति का सरल मुख्य उपाय है—कर्म सिद्धात का गहरा अध्ययन और बार-बार चित्तन-द्वारा उस पर अपनी श्रद्धा का दृढ़ बनना। जब तक अन्तराय कर्म न है तब तक कितनी ही तीव्र इच्छा करो, कितना ही भारी पुरुषार्थ करो, जो पूर्ण हो नहीं सकती, संसार की कोई भी दृश्य या अदृश्य शक्ति इच्छा में सहायक बन नहीं सकती। जब अन्तराय कर्म समाप्त होगा, शुभ कर्म उदय होगा, तब भोग, उपभोग, सभी सुखद पदार्थ और अनुकूल परिस्थिति आपकी सेवा में उपस्थित हो जावेगी। कभी-कभी तो विना इच्छा और जो पुरुषार्थ के भी पूर्वकृत निकायित और महाशुभ कर्मों के उदय से सभी द प्राप्त हो जाता है। भगवान महावीर पर गोशालक ने तेजोलेश्या छोड़ी। उसमय महावीर स्वामी ने अपनी रक्षा के लिए क्या कोई इच्छा और जो पुरुषार्थ किया था ? उनकी रक्षा उनके निकायित आयु कर्म से खद्द हुई। शुद्धात्मा सेठ सुदर्शन की अर्जुनमाली के रक्षा कैसे हुई ? शील में सेठ सुदर्शन के लिए शूली का सिहासन कैसे बना ? क्या उन्होंने इच्छा की थी या कोई पुरुषार्थ किया था ? वे सिर्फ अपने शुद्ध ज्ञान में, आत्म एव परमात्म ध्यान में लीन रहे। दुर्योधन द्वारा जहर रिलात बेहोशी की दशा में नदी में बहाया गया भीम उस दशा में अपनी रक्षा पुरुषार्थ कर ही क्या सकता था ? किन्तु उसके पूर्वकृत शुभ आयु-कर्म उसकी रक्षा की। वर्तमान में क्यूवा के राष्ट्रपति क्रास्त्रों की हत्या के लिए बड़ी शक्तियों द्वारा आठ बार प्रयास किये गये किन्तु उसके शुभ दी आयु-कर्म ने उसे उन स्थानों पर जाने ही नहीं दिया जहाँ पर उनकी की जानी थी। शालिभद्रजी ने वर्तमान में कोई इच्छा या कोई पुरुषार्थ न किया किन्तु उनके पूर्वकृत अदृष्ट शुभ पुरुषार्थ ने, उनके तीव्र पूण्यादय महान सम्पत्ति का स्वामी बना दिया। करोड़पति की गोद जाने वाला, लाटरी का प्रथम बड़ा इनाम पाने वाला कौनसा बड़ा पुरुषार्थ करना है ? सब कुछ पूर्वकृत अदृष्ट शुभ पुरुषार्थ का ही फल है। अतराय कर्म के जो कुछ भी नहीं हो सकता। भौतिक इच्छाएँ करना, केवल नदीन कर्मों के जो कुछ भी नहीं हो सकता। भौतिक सुख सम्पत्ति की प्राप्ति शुभकर्म एवं शुभ का ही कारण बनती है। भौतिक सुख सम्पत्ति की प्राप्ति शुभकर्म एवं शुभ-

करने से ही होती है, केवल इच्छा करने से और अशुभ खोटे पुरुषार्थ से नहीं होती।

कुछ लोग अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपनी प्रखर बुद्धि और अपने बल का प्रयोग करते हैं। इस सबध में तीन बातें याद रखने योग्य हैं—1 बुद्धिर्यस्य बल तस्य, निर्बुद्धेस्तु कृतो बल, 2 बुद्धि कर्मानुसारिणी, 3 विनाशकाले विपरीत बुद्धि अर्थात् 1 जिसके पास बुद्धि है उसके पास बल है, बुद्धिहीन के पास बल कहाँ है ? 2 बुद्धि प्राणी के पूर्वकृत कर्मों का अनुसरण करती है अर्थात् शुभ कर्मोदय के समय अच्छी और सहायक बन जाती है और अशुभ कर्मोदय के समय विपरीत और नाशक बन जाती है। यदि किसी को काश्मीर की ओर जाना हो तो उसके अशुभ कर्मोदय के समय उसकी बुद्धि में कोलम्बो का मार्ग ही काश्मीर पहुँचाने वाला दिखने लगता है और उसका यात्रा का पुरुषार्थ उस गतव्य स्थान के पास पहुँचाने के बजाय उसे दूर भेज देता है। उसकी सारी यात्रा, सारा पुरुषार्थ अधिक हानिकारक बन जाता है, 3 विनाश के समय बुद्धि विपरीत बनकर प्राणी का नाश करवा देती है। कौरव, यादव, रावण आदि इसके अनेक उदाहरण हैं।

केवल बुद्धि और बल से ही मनोरथ पूर्ण हो जाते तो आज बहुत से व्यक्ति जो दुखी है, दुखी नहीं रहते। बुद्धि और बल से ही इच्छा की पूर्ति नहीं होती।

इच्छा-निवृत्ति के लिये जपने का सूत्र है—

“यदि पुण्य का उदय है तो इच्छा के बिना भी सुख-सम्पत्ति की वर्षा हो जाती है। यदि पाप का उदय है तो इच्छा या पुरुषार्थ करने पर भी कुछ नहीं मिलता। अत इच्छा-निरोध तप करके कर्मक्षय क्यों नहीं करते ?”

निष्काम भावना से, स्वार्थ रहित मन से, दूसरों का भला करने, उनकी शुद्ध सेवा करने, उनका आत्महित करने में निमित्त बनने की इच्छा रखना एव प्रयास करना, इच्छा दिखते हुए भी इच्छा नहीं है। ये कर्तव्य पालन है जिसका उपदेश ससार के प्राय सभी धर्म गुरुओं ने दिया है और अपनी मर्यादा के अनुसार उसका पालन भी किया है।

अहंकार-निवृत्ति

अनेक आन्तरिक शत्रुओं को जीतने वाले बड़े-बड़े उपदेशक और धन और स्त्री-परिवार आदि के महान त्यागी तपस्वी सत महात्मा भी कभी-कभी

अहकार के वशीभूत हो जाते हैं। अहंकार में यह विशेषता है कि इन शिकार बनने वाले प्राणी शायद यह समझ भी नहीं पाते होंगे कि उन्हें उन पर सवार हो चुका है और वे पतन के अंधकूप में गिरते जा रहे।

शायद मनुष्य को स्वय को बहुत समझदार और बड़ा मानने में स्वय की प्रशंसा सुनने में बड़ा आनन्द आता होगा। यदि ऐसा है तो उस कौरे की उपमा दी जा सकती है जिसने लोमड़ी से अपने भैंठे मुरीले सुरीले स्वर और गाने की प्रशंसा सुनकर अपनी मूर्खता से लोमड़ी अपना मधुर गाना सुनाने के लिये अपना मुँह खोला और अपने मुँह की देखोयी। अभिमानी पुरुष आर्थिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से उजाता है। वह प्रशंसा सुनने में शुरू से अन्त तक घाटे में रहता है। युद्धिं लोग अपनी प्रशंसा सुनते ही नहीं। जहाँ प्रशंसा सुनी, वही ठगाई हूँ।

प्राणी को अपने सौन्दर्य, धन, शरीर-बल, परिवार-बल, सत्तान् विद्या, भाषण कला, लेखन कला, दान, शील, तप, धार्मिक आचरण आदि प्राय अहकार हो जाया करता है। किन्तु अशुभ पाप-कर्म के उदय होने कोई भी धन या बुद्धि काम नहीं देती। सब साधक भी वाधक एवं भास बन जाते हैं।

कुछ लोगों को स्वय के बहुत समझदार, सही ओर धर्मात्मा होने अहकार हुआ करता है। किन्तु सभव है उनकी मूल समझ में ही भूल या अहकार ने उनकी समझ को ही नासमझ में बदल दिया हो। यह निर्विवाद है कि उनमें अहकार का महा भयकर अवगुण आ चुका है। सभी बुराइयों और अनर्थों का मूल है।

अहंकार एक भयकर अधकूप है जिसमें अधकार ही अध्यार छा हुआ है। वहाँ प्राणी को कुछ भी अच्छा नहीं दिखाई देता। यह एक भयां तूफान है, आंधी है जो सब गुणों को उड़ाकर दूर फेंक देती है। अगिना वह मदिरा है जो बिना कुछ पीये ही प्राणी को मदाय और देखान दना दे है। बुद्धिमान वही है जो इससे बचता रहता है।

छोटी-छोटी वातों को अपनी इज्जत का प्रश्न यना कर गुड़ अनुभवहीन मनुष्य शाहबलूत के पेड़ की भौति अकड़े रहते हैं और तलान् तूफान के आने पर जड़ से उखाड़ कर फेंक दियें जाते हैं। किरी ने कहा है—

बड़ा कौन है, बड़ा कौन है, मुझे बताओ बड़ा कौन है।

बड़ा वही है, बड़ा वही है, जो झुकता है बड़ा वही है ॥

छोटी-छोटी बातों पर कभी नहीं अकड़ना चाहिए।

अहकार सब अवगुणों एवं बुराइयों का मूल है। अभिमानी व्यक्ति को लोग अपने मन में महामूर्ख समझते हैं। लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये चाहे उसके सामने उसकी बड़ाई करते हो किन्तु वास्तव में उससे घृणा करते हैं। अहकार नरक का मार्ग है। अहकार से दान, शील, तप, धार्मिक आचरण आदि सभी अच्छी क्रियाओं का फल मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से प्राय निरर्थक-सा रहता है।

अहकार से बचने का प्रथम उपाय—यह सूत्र जपना कि ‘किसी प्राणी को उसके पाप कर्म फल भोग से मैं या तीर्थकर भी नहीं बचा सकते और मेरे भयकर निकाचित कर्मों की रेखाओं को मैं नहीं बदल सकता, फिर अहकार किस बात का करूँ ?’

दूसरा उपाय है—अपने अवगुणों को याद करके उनके लिये पश्चात्ताप करना एवं उन्हे दूर करने की साधना करना।

तीसरा उपाय है—इस बात का चितन करना कि अहकारी प्राय कौवे की भाँति प्रशसा करने वाली लोमड़ी से ठगा जाता है या अकड़ने वाले पेड़ की भाँति आधी से उखाड़ कर फेंक दिया जाता है।

संग्रह-निवृत्ति

भगवान महावीर का यह स्पष्ट कथन है कि आत्मा के सिवाय कोई भी अन्य पदार्थ अपना नहीं है। धन-सम्पत्ति, परिवार और यह शरीर भी अपना नहीं है। ये सब मृत्यु के आते ही पीछे छूट जाते हैं। ये सब पर-पदार्थ हैं। इनमें आसक्ति रखने वाला, इनका सग्रह करने वाला, इनका लोभ करने वाला, इन परिग्रहों को जमा करने वाला, ससार से ही बधा रहेगा, ससार में ही चक्कर काटता रहेगा। ससार से छुटकारा और मोक्ष की प्राप्ति तभी संभव है जबकि प्राणी धीरे-धीरे या तुरन्त ही इनका मोह छोड़कर पूर्ण अपरिग्रही, पूर्ण त्यागी बने।

साधारण व्यक्ति के लिए त्याग का क्रम कुछ-कुछ इस प्रकार हो सकता है—प्रथम सुख-दुख-चेतना-निवृत्ति की साधना, फिर धन सम्पत्ति

की निवृत्ति का कार्य दान आदि द्वारा, फिर परिवार की नोह-नम-विरक्ति और अत मे शरीर की आसक्ति से मुक्ति। महापुरुष तो इन रुपों एक झटके मे ही छोड़ देते हैं। जैसे शालीभद्रजी ने और धन्वजी ने कहा-

भौतिक सुख एवं धन-सम्पत्ति की प्राप्ति शुभ कर्मों के उदय के दृश्य है। वे प्राणी की इच्छा या केवल पुरुषार्थ के अधीन नहीं है। अज्ञुन रक्षा के उदय होते ही चोर, डाकू, आग, बाढ़, रोग, व्यापार में हानि या अन्य किसी मार्ग से धन-सम्पत्ति चली ही जाती है। धन परायी धरोहर है इन्होंने हो सके इसका सदुपयोग दान एवं धर्म कार्यों में किया जावे। अपना रक्षा भी निश्चित समय पर छूटने वाला है। इसकी भी आसक्ति छोड़कर इन्होंने सदुपयोग निष्काम पर-सेवा में किया जावे। दुखियों के दुख को यथार्थ यथामर्यादा अपने त्याग एवं सेवा द्वारा दूर करना और सुखियों को दंडना प्रसन्न होना जीवन लक्ष्य की प्राप्ति में बहुत आवश्यक है।

त्याग में भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि किसी पदार्थ या अलूक्त का केवल त्याग कर देने से आसक्ति नहीं छूटती। आसक्ति छूटती है उन अवगुण की हेयता और उसके प्रतिपक्षी भाव की उपादेयता का दिन ॥ ८ ॥ बार चितन, स्मरण करते रहने से। उस अवगुण के जाते ही उसका प्रतिपक्षी गुण स्वत प्रकट हो जावेगा क्योंकि आत्मा स्वय ही अनत गुणों का भूत है।

संग्रह करना परियह है और पाप है। दान देना दान, शीत, तां
भावना मे प्रथम धर्म बताया गया है।

लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि दान से विधाता के लेखा (कर्मा की रेखा) भी झूठे पड़ जाते हैं (वदल जाती है)।

त्याग से, दान देने से अनेक गुणों की प्राप्ति होती है। इसलिये भगवान् मत करो, दान दो, दान दो, दान दो। यदि आपका पुण्योदय है तो दान देने से धन की कमी नहीं होगी और एक के बदले दस या दश मिलेंगे। कीर्ति पाप का उदय है तो धन चाहे जमीन में गाड़ दीजिये वह कायदा रख जावेगा। पापोदय के समय धन को चोर, डाकू, ठग ले जाते हैं, दृश्य अपने में, बाढ़ में चला जाता है, उसे वीमारी खा जाती है। वह ठहर नहीं रहता। इसलिये दान दो, दान दो, अधिक से अधिक दान दो।

मरते समय यदि किसी से मोह-ममता रह गई तो मरने के बाद सर्प, भूत, प्रेत बनकर वही मड़साते रहोगे, दुख पावोगे और दुर्गति में जावोगे। ध्यान का सूत्र है—“पुण्य का उदय हो तो चाहे जितना दान दो, धन की कमी नहीं होगी और पाप का उदय है तो धन किसी भी तरह ठहरने वाला नहीं है।”

विकथा-निवृत्ति

विकथा का अर्थ है—व्यर्थ की कथा। दूसरों के बातों की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषों का कथन, श्रवण एवं चितन विकथा है। दुनिया की स्वार्थ-प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपात् पूर्ण, गन्धी राजनीति आदि की बातों के समाचार, लेख, भाषण, साहित्य, आलोचना आदि को पढ़ना, सुनना, उनकी राग द्वेषात्मक बातों में पड़ना विकथा है। यह अनर्थ दड़ है, प्रमाद है, भावहिसा है, राग-द्वेष है।

जैन आगमों में विकथा के चार भेद बताये गये हैं—स्त्री-पुरुष कथा, देशकथा, राजकथा, भोजन कथा। बड़े-बड़े समझदार पडित, विद्वान, धर्मात्मा, नेता और साधक लोग भी आजकल विकथा में पड़ना अपनी शान समझने लगे हैं। यह वर्तमान सभ्यता का एक चिह्न बनने लगा है किन्तु इसमें 80 प्रतिशत लोगों का 80 प्रतिशत समय व्यर्थ जाता है। एक बात और भी है कि हम दूसरों के भीतरी भावों को जान नहीं सकते। इसलिये एक पक्ष को भला और दूसरे पक्ष को बुरा समझने का हमारे पास कोई आधार भी नहीं है। इस दृष्टि से विकथा से असत्याचरण का बड़ा दोष भी हमें लग जाता है।

घरो मे बैठी हुई महिलाएँ, मर्दानी बैठक मे बैठी हुई मित्र-मडली, राजनीतिक गदी चर्चा मे रसपान करने वाली जनता और कभी-कभी धर्मस्थान मे बैठे हुए भक्त लोग भी विकथा के सागर मे नहाने लगते हैं।

विकथा से बचने के लिए पाँच निषेज्ञात्मक और पाँच विधेयात्मक
उपाय हैं। जहाँ दूसरों की निन्दा होती है, झूठी प्रशंसा होती है व्यर्थ की,
राग-द्वेष बढ़ाने वाली बाते होती हो वहाँ पर कुछ भी
मत कहो वहाँ से उटकर चले जाओ
मत सुनो अपने काम में लग जाओ

- मत देखो परमात्मा का भजन करो
 मत सोचो स्वाध्याय सूत्रों का ध्यान करो
 मत बैठो पर-सेवा मे लगो

अपने बचत के समय को निष्काम निस्वार्थ, बिना कुछ वेतन दि-
 दूसरों की शुभ हितकारी सेवा मे लगाओ। (क) रोगियों की मुफ्त मे-
 करो, (ख) कलाकार हो तो मुफ्त मे दूसरों को कला का इन-
 (ग) विद्वान हो तो किसी परोपकारी संस्था मे मुफ्त मे काम
 (घ) साधारण मनुष्य भी बीमारो, गरीबो, दुखियों के घर जाकर उनके
 पोछ सकता है या (ड) छोटे-छोटे बच्चों को मुफ्त मे पढ़ाओ।

विकथा से अनेक अवगुण आते हैं और विकथा से बचने वाल-
 प्रतिशत राग-द्वेष से बच जाता है। विकथा से बचना मोक्ष मार्ग पर चलन-
 आत्म-ध्यान

विकथा एवं अनेक प्रकार के विकारों से बचने के लिये ज्ञान ।
 एवं आत्म-ध्यान सबसे सुन्दर उपाय है। आत्म-ध्यान मे निम्नलिखित ..
 की साधना की जाती है—1 शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग ..
 2 यह शरीर मेरा नहीं है। 3 यह शरीर मैं नहीं हूँ इसमे जो चेतन है ..
 मैं (आत्मा) हूँ। आत्म-ध्यान के बाबत विशेष बाते “ध्यान एक अनुरील-
 मे दी गई है जो अ भा साधुमार्गी जैन सघ, धीकानेर से प्रकाशित हो चुम्ही ।।

साधना का एक साधन

कषाय-निवृत्ति की साधना के लिये नीचे दिये गये शब्द-चित्र वे-
 बार-बार देखिये और लिखिये जिससे इस पुस्तक मे दी गई राधना की नी-
 बातें हर समय ऊँखों के सामने झलकती रहें। ऊँखे शायद मन की अपेक्षा
 अधिक शक्तिशाली हैं। यदि ऊँखे इस शब्द चित्र को देखती रहेंगी तो मन
 मे इतनी शक्ति नहीं है कि वह दूसरी ओर भाग जावे।

क्रोध	दुख-चेतना	अह
दुर्भावना	सुख-चेतना	साप्रट
परिवार मोह	इच्छा	विकथा

साधना का सुगम मार्ग

हमारा लक्ष्य है निर्विकार दशा की प्राप्ति। इसके लिये क्या यह ज्यादा हितकारी नहीं रहेगा कि अन्य दूसरे प्रकार के साधना और ध्यान के मार्गों में अपना समय नहीं लगा कर हम अपनी साधना क्रोध-निवृत्ति या दुर्भावना-निवृत्ति से ही प्रारम्भ करे? इधर-उधर भटकने से क्या लाभ?

अवगुण-निवृत्ति की साधना में दो लाभ हैं। प्रथम—इससे सभी मानसिक तनाव आदि दूर होगे और मन पर पूर्ण विजय प्राप्त होगी। दूसरा—इससे हमारे सचित कर्मों की महान निर्जरा होगी।

ध्यान के लिए सात बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। 1 ध्यान का सूत्र, 2 शात एकात स्थान, 3 सुखासन, 4 निर्धारित शात समय, 5 एकाग्रता, 6 पुनरावृत्ति और 7 अभ्यास। इसमें अतिम दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जावे। सूत्र को दिन रात में कई बार दोहरावे। सोते-जागते, उठते-बैठते, बस में यात्रा करते समय भी, दुकान में काम करते समय भी, और रात्रि में बिस्तर पर लेटे हुए भी स्वाध्याय या ध्यान के सूत्र को दोहराइये। पुनरावृत्ति यानी दोहराना साधना का महत्वपूर्ण अग है।

साधना में अभ्यास का भी बहुत महत्त्व है। इस पुस्तक के प्रारंभ में अभ्यास के कुछ भेद बताये गये हैं। उनके अलावा किसी गुण को जीवन में उतारने के अन्य तरीके भी हो सकते हैं। गुणों को अपने आचरण का अग बनाना ही साधना का चरम लक्ष्य है।

आत्मा की निर्विकार दशा की प्राप्ति के लिये आचरण शुद्धि की आवश्यकता है और आचरण की शुद्धि तभी सभव है जबकि विचार शुद्ध हो सके। विचार-शुद्धि का उपाय है दिन रात में कई बार समता या स्वाध्याय के सूत्रों को दोहराते रहना, उनकी पुनरावृत्ति करते रहना। और आचरण-शुद्धि का उपाय है—उन सूत्रों का पालन करना, उन्हें आचरण में उतारना। किन्तु यदि मोहनीय कर्म की प्रबलता से इस जन्म में यदि वे आचरण का अग नहीं बन सके तो भी उनकी साधना में लगे रहिये। उनके चितन-मनन और स्वाध्याय से बने हुए सस्कार व्यर्थ नहीं जावेगे। वे अगले किसी जन्म में साधक की आचरण-शुद्धि में सहायक बनेगे। कोई भी क्रिया व्यर्थ नहीं जाती। फिर इन सूत्रों का ध्यान या स्वाध्याय तो आभ्यतर तप है। वह व्यर्थ कैसे जावेगा ?

हृदय परिवर्तन की कला

अपनी सतान या किसी सबधी या मित्र का हृदय-परिदर्शन -
सुधार) करने हेतु इन बातों का पालन कीजिये। 1 उसे सुधारने हेतु
विचार कीजिये। 2 स्वयं को प्रथम सुधारिये। एक शराबी किसी दूँहे
उपदेश देकर शराब नहीं छुड़ा सकता। 3 जिसे सुधारना हो रहा
यथाशक्ति यथा मर्यादा सहायता कीजिए। उसे अपनी तरफ ले
कीजिये। 4 दूसरों के सामने उसकी बुराई या निन्दा मत करें।
5 उसस घृणा या द्वेष मत करिये। 6. उसकी विषमता या अपनु
कारण ढूढ़िये और उसे कुमार्ग, कुसगति, कुप्रभाव और कुविचारों से
रखने के उपाय कीजिये। 7 उसके गुणों की प्रशसा कीजिये जिससे
आपको अपना हितैषी समझने लगे। 8 जब वह किसी खुशी की दर
हो उस समय एकात मे प्रेम-पूर्वक उससे वार्तालाप करते हुए प्रश्नोत्तर
ढग से उसी के मुँह से उसकी भूल या अवगुण की बात कहलावाइये। त
तक हो आप अपने मुँह से उसके अवगुण की बात नहीं कहें।

9 यदि वह आपसे दूर रहता हो या मिलना पसंद नहीं द्या
हो या नाराज रहता हो तो उससे उसके समाने कुछ भी नहीं कहे दिया रात्रि में जब कि वह प्राय शात या सुप्त अवस्था में हो या उषाकाल में उपदेशात्मक विचार या सुधार के निर्देश विचार तरगो द्वारा भेजिये। चोरी करने वाले को चोरी की आदत छुड़ाने के लिये यह सदेश भेजिये-
भाई तुम इमानदार बनो, सत्यवादी बनो। सत्यवादी की सहायता लोग और देवता भी करते हैं। सत्य एक महान तप है।"

10 यदि कोई महिला रात्रि मे, सवेरे ऐसा चितन करे या जाप कि “मेरी सत्तान सुन्दर, स्वस्थ, सुशील और सुयोग्य हो” तो उसकी रात्रि उसके विचारों के अनुसार ही होगी।

11 रात्रि मे मौन विचार तरगे भेजते समय यह कल्पना कीजिएः
 आप यह निर्देश चुपचाप उसके कान मे कह रहे हैं चाहे वह हजार
 दूर ही बैठा हो या सो रहा हो। धैर्य और विश्वास से कुछ मर्दाना
 सफलता मिलेगी।

कषाय मुक्ति :

तीसरा भाग

कषाय मुक्ति की कसौटी और फल

वही मुनि कषाय मुक्त माना जाता है जो रोग या दुख में दुखी नहीं होता। भौतिक सुख (इन्द्रिय सुख या शरीर सुख) को सुख नहीं मानता और हर समय शुद्ध भावना (विचार या ध्यान) में लीन रहता है। कषाय मुक्ति का फल है—सिद्ध पद की प्राप्ति।

कषाय-मुक्ति का अभ्यास

कषाय से मुक्त होने का अभ्यास करने का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ स्थान है—गृहस्थी के लिए अपना घर। जो पुरुष या स्त्रीयों अपने क्रोध, अहभाव, कपट और स्वार्थ को छोड़कर प्रेमभाव, विनयभाव और अनुकम्पा भाव से त्याग भाव पूर्वक अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर और सगे-सबधी की सेवा करते हैं, वे कषाय मुक्त हो जाते हैं। जो घर में ही लड़ाई-झगड़े, कपट, कलह आदि रखते हैं उनके लिए कषाय मुक्त हो जाना कठिन हो जाता है। कुछ मनुष्य और स्त्रियों जब तक वे स्वयं वृद्ध नहीं हो जाते तब तक वे वृद्धों के मन की वेदना को समझ नहीं पाते। जब वे स्वयं वृद्ध हो जाते हैं तब उन्हें पता चलता है कि घर के वृद्ध लोगों के मन में वेदना क्या थी और वे क्या चाहते थे? तब वे पछताते हैं और कहते हैं—हाय! हाय! हमने अपने जीवन में कुछ नहीं किया। हमने घर में लड़ाई-झगड़े रखे। हमने वृद्धों के अतर की बातों को नहीं सुना और वे अपने मन की बाते अपने साथ मन में ही ले गए।

ससार में मनुष्य चाहे कितना ही गरीब हो किन्तु यदि वह अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर, सगे-सबधी एवं धर्म गुरुओं की प्रेमपूर्वक सेवा करता है तो ससार के महापुण्यवान और महाभाग्यवान लोगों की गिनती में उनका स्थान गृहस्थों में सर्वप्रथम रहता है। ऐसे पुरुष ही कषाय मुक्त होते हैं और वे अपना ससार घटाते हैं।

दंड का अधिकार

आप विचारिए कि दड़ देने का अधिकार और उसकी शर्ति क्या है। क्या आप अपने से शरीर बल, धन् बल, राज्य बल दुष्टि दल उम्मीदों; आपसे हर प्रकार से अधिक शक्तिशाली स्वय के अपराधी को भी दर्द सकते हैं या अपने से कमजोर अपराधी को ही क्रोध और अहमत मुझे, बदला लेने की भावना से दो डडे लगाकर कषाय भाव से नवीन दर्म दर्शाएँ भविष्य के लिए झगड़े की नीव को मजबूत कर अपना ससार ही दर्द रखें।

कुछ चालाक और चतुर आदमी कानून का सहारा लेकर १९३५ सरकार से दड़ पाने से भी बच जाते हैं किन्तु राज्य सरकार के दड़ से राज्य वाले भी वास्तव में दड़ देने वाली एक अदृश्य किन्तु अचूक महान दर्भंगा के दंड से नहीं बच पाते। दड़ देने का वास्तविक अधिकार कर्मशक्ति दड़ १ राजसत्ता जो दंड देती है वह भी कर्मशक्ति के अधीन है।

सत सस्कृति यही कहती है कि दड़ देना कर्मशक्ति का ही दाम है। कषाय मुक्ति का अभिलाषी किसी व्यक्ति को दड़ देने का काम अपना नहीं में नहीं लेता। वह अपराधी के सामने पूर्ण समताधारी मुनि गजासुकुमार। नहीं जाता है और वह अपराधी को दड़ मिले ऐसी इच्छा भी नहीं करता।

कषाय-मुक्ति में असफलता क्यों ?

कुछ लोग कषाय के चार भेद क्रोध, मान, माया, लोभ में से प्रभाव में क्रोध से होने वाले अनर्थ को देखकर मन में पक्का विचार एवं दृढ़ रूप करते हैं। और कुछ लोग तो क्रोध छोड़ने का पच्चखाण भी गिलकुल भूमि जाते हैं और क्रोध में आकर कभी-कभी महा अनर्थ भी कर देंहते हैं। यहाँ में पछताते हैं। इसका कारण यह दिखता है कि अनादिकाल से क्रोध उनका साथी बना हुआ है और क्रोध के परमाणु उनके शरीर के काम में भरे हुए हैं। जिस प्रकार भालू से पकड़े जाने पर भालू से मनुष्य का छुटकारा होना कठिन होता है उसी प्रकार क्रोध हारा पकड़ गये हिन्दी मनुष्य का क्रोध से छुटकारा पाना असम्भव तो नहीं, कठिन असम्भव ही गया है। इस साधना में साधकों को अपनी योग्यता के अनुसार नहीं तो अनुशासन लग सकते हैं।

साधना का तरीका

क्रोध छोड़ने के लिए नीचे लिखे प्रश्नों को सामझ कर उनका उत्तर पर विचार कीजिये और उन्हें एक कॉपी में लिखाये-1 ब्रांगन द्वारा १५

2 क्रोध कितने प्रकार का होता है ? 3 यह कब आता है ? 4 क्रोधी अपने मन मे शत्रु के प्रति क्या विचार करता रहता है ? 5 क्रोधी क्या उत्पात मचाता है ? 6 क्रोधी मनुष्य के उदाहरण, 7 क्रोध से होने वाली हानियों, 8 क्रोध जीतने वालों के उदाहरण, 9 क्रोध जीतने के लाभ, 10 क्रोध पर विजय पाने के साधारण नियम, 11 क्रोध जीतने के विशेष नियम । शुरू के दस प्रश्नों के उत्तर कुछ महीनों तक प्रतिदिन पॉच-दस बार दोहराइये और अतिम ग्यारहवे प्रश्न का उत्तर कुछ वर्षों तक प्रतिदिन कम-से-कम पन्द्रह-बीस बार दोहराइये । क्रोध के जो स्तंकार अनत अनादिकाल से मनुष्य के साथी बनकर उसके अचेतन मन मे गहराई तक बैठे हुए है उनको हटाने मे महीनो और वर्षों लग जाना कोई बड़ी बात नहीं है ।

मनुष्य का चेतन मन अर्थात् उसका वर्तमान ज्ञान, क्रोध को बुझ समझकर छोड़ना चाहता है किन्तु उसका अचेतन मन अर्थात् पूर्व जन्मों का गलत अनुभव क्रोध को अपना हितकारी मित्र मानता है और उसे छोड़ना नहीं चाहता। अत अचेतन मन को समझाने के लिए चेतन मन को महीनों और वर्षों साधना करनी पड़ती है। अचेतन मन को हमेशा के लिए निकालने के लिए क्रोध पर विजय पाने के उपाय बताने वाली पुस्तके पढ़िए। इस सबध में अन्य लेख भी पढ़िये। सतो के प्रवचन सुनिये, उनसे उपाय पूछिए। पूर्ण समताधारी मुनि गजसुकुमाल जैसे मुनिजनों की पूर्ण समता को बताने वाले साहित्य पढ़िए। इस अध्ययन के साथ-साथ अपनी कॉपी में मुख्य-मुख्य बाते भी लिखिये। एकात मे बैठकर इस सबध में चितन-मनन कीजिए। अपनी आत्मा मे अनतज्ञान और अनुभव भरा हुआ है। उससे कुछ उपाय पूछिए। फिर कुछ वाक्य या सूत्र प्रतिदिन स्वाध्याय के लिए बनाइये। उनका जप करिये। अधिक से अधिक समय उसके चितन मनन मे दीजिए। इससे सफलता अवश्य मिलेगी।

क्रोध मुक्ति के उपाय

क्रोध के सबध मे कषाय मुक्ति प्रथम भाग, कषाय मुक्ति द्वितीय भाग मे काफी सामग्री दी गई है। क्रोध छोड़ने के साधारण उपाय है—क्रोध आये तब ठड़ा जल पीना, वहाँ से उठकर दूर चले जाना, मन को अच्छे लगाने वाले काम करना, कहानी, लेख या पुस्तकों को पढ़ने मे लग जाना चाहिए। क्रोध को जीतने के विशेष उपाय निम्न हैं—दड़ या दुख अपने अशुभ कर्मों से मिलता है, परिवार या दूसरे लोग या रोग या दुर्घटनाएँ तो केवल निमित्त ही बनते हैं। मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदार्द्दी की पूर्ण समता की

घटनाओं का चितन करना चाहिए। शत्रु के अन्दर जो अच्छे दृढ़ दान, शील, तप, समता भाव, मातृभक्ति, पितृभक्ति, सत्यमत्ता, ज्ञान, कार्यकुशलता आदि उन्हे देखने और उनकी प्रशस्ता करने से और क्रोध नष्ट हो जाते हैं। मित्रता और समताभाव बढ़ते हैं। दूसरे से देखने वाले मनुष्य में अहमाव पैदा नहीं होता और उसमें विनय दर्शन जाता है।

यह सूत्र बार-बार दोहराइये—मेरे दुख मिलने में निमित्त रहने परुष मेरा कर्म रोग काटने वाला परम उपकारी डॉक्टर है।

दुःखानुभव से मुक्ति

इस ससार मे दुख और भौतिक सुख की अनुभूति है । 1 ससार मे बौधकर सिद्ध पद पाने से रोकती है । इनमे दुख की अनुभूति मानव मे आर्तध्यान उत्पन्न करती है । चक्रवर्ती नरेश की पटरानी की मृत्यु पर छ मास तक विलाप और आर्तध्यान करके छठी नरम जाती है । दुख की अनुभूति साधारण मनुष्यो मे क्रोध पेता करती है । अनर्थ करवा देती है । दड मिलने पर या रोग या दुख आने पर यह दुर्घटना के होने पर मनुष्य को—1 रोना नहीं चाहिए । 2 किरणी पर नहीं करना चाहिए । 3 हो सके तो उससे बचने का कोई अहिंसक नहीं करना चाहिए । 4 अपने पूर्व जन्मो या इस जन्म मे किये हुए शारीर अज्ञात अठारह पापो को याद करके उनका प्रायशिचत करना चाहिए । पश्चात्ताप करने से पहले किए हुए पाप हल्के हो जाते हैं या नहीं हैं । 5 सिद्धो का ध्यान करना चाहिए जिससे ताप ओर दुर्दण्ड हो और सिद्ध पद प्राप्त होता है । 6 दान देने वालों, शील पालने वालों करने वालों और पूर्ण समता रखने वाले सतों की पूर्ण समता की धृति को याद करके उनकी प्रशसा व अनुमोदना करनी चाहिए जिरारा तारा दुख नहीं होते हैं या 7 यह दुख नहीं है, यह मेरे कर्मों की निर्जरा है, निर्जरा हो रही है, निर्जरा हो रही है । इस सूत्र को धार-धार चाहिए व इसका जप करना चाहिए । इस सूत्र को रटन रो दुर्दण्ड अनुभूति भुलाई जा सकती है ।

या हर वे इरानी के अनुभूति भुलाई जा सकती है।
दुखानुभूति पर विजय पाने के लिए आत्म-भावना जाग्रता की है जिसमें देह और आत्मा के भेद-ज्ञान में दृढ़ श्रद्धा पदा हो जाती है। इसका मूल सूत्र है—यह शरीर न मैं हूँ न मेरा है। इस ध्यान में चार वाला अपनी देह के मोह से मुक्त हो जाता है। वह अपने गिर रख

रखे जाने पर भी पूर्ण समता बनाये रख सकता है। इस विषय में “ध्यान एक अनुशीलन” पुस्तक से जानकारी मिल सकेगी।

अहकार से मुक्ति

अहकार एक ऐसा अवगुण है जिससे अहकारी का आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पतन होता रहा है। चापलूस लोग उसे ठगते और चूसते रहते हैं। समाज के अच्छे-अच्छे आदमी उससे घृणा करने लगते हैं और उस अहकारी व्यक्ति को दान, शील, तप आदि धार्मिक क्रियाओं का फल मिलना रुक जाता है। मुनि बाहुबलीजी को अहकार के कारण ही घोर तप करने के बाद भी केवलज्ञान मिलना रुका रहा।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को तार नहीं सकता, मार नहीं सकता, बना नहीं सकता, बिगाड़ नहीं सकता। दूसरों के कर्मों को बदल नहीं सकता, अपने स्वयं के निकाचित कर्मों से बच नहीं सकता। वह अपने धन से अपने दुखों को दूर कर नहीं सकता। उसके पापोदय के समय उसका परिवार उसकी सहायता कर नहीं सकता और जब वह बीमार या वृद्ध हो जाता है तब वह स्वयं को भी सँभाल नहीं सकता। ऐसी स्थिति में किसी भी प्राणी के लिए किसी भी बात का अहकार करना भयकर भूल और निरर्थक है। बलवान् मनुष्य नहीं होता है, बलवान् होता है समय।

रहिमन नर को कहा बड़ो, समय बड़ो बलवान् ।

काबा लूटी गोपिका, वही अर्जुन वही बाण । ।

अर्थात्—गोपिकाएँ लूट ली गई और महाभारत का सबसे बड़ा विजेता अर्जुन खड़ा-खड़ा देखता रह गया। योग के अनुसार द्वारिका जलने लगी, यादव मरने लगे, श्रीकृष्ण के माता-पिता देवकी महारानी और श्री वासुदेवजी चिल्लाकर कहने लगे—“अरे कृष्ण ! अरे बलराम ! हमे बचाओ। उस समय के सबसे बड़े शक्तिशाली और सबसे अधिक बुद्धिमान श्रीकृष्ण और बलराम ने अपने माता-पिता को बचाने का प्रयास भी किया किन्तु वे उन्हे बचा नहीं सके। वे खड़े-खड़े देखते ही रह गये।

तीर्थकर महावीर के दो शिष्य मुनि सुनक्षत्र और मुनि सर्वानुभूति उनकी आँखों के सामने ही गोशालक द्वारा तेजोलेश्या छोड़कर जला दिए गए। तीर्थकर महावीर के पास शीतोलेश्या थी जो तेजोलेश्या को शात कर देती है, फिर भी दोनों सत बच नहीं पाए। शक्ति मनुष्य में नहीं होती, शक्ति होती है समय में, शुभ कर्मों में। मनुष्य को किसी भी बात का अहकार करना भयकर भूल है। अहकार से बचने के लिए इस सूत्र का बार-बार

जाप करना चाहिए—“कोई भी मनुष्य दूसरों को तार नहीं सकता, मार नहीं सकता, कठिन समय पर स्वयं को भी सँभाल नहीं सकता, उसका अहकः करना भूल है।”

दुर्भावना से मुक्ति

हमारे विचार या भाव जिनसे चाहे दूसरों का अहित नहीं भी होते हो किन्तु केवल हमारा ही अशुभ कर्म बध होता हो तो भी वे विचार हमारे लिए दुर्भावना है। हमारी दुर्भावनाओं से हमें नरक और सद्भावनाओं से मः मिलता है।

दुर्भावना और सद्भावना की अज्ञात महान शक्ति का परिचय ज़ेन आगमों मे दिए गए मुनि प्रसन्नचन्द्र के वर्णन से मिलता है। एक बार वन मे तप करते हुए मुनि प्रसन्नचन्द्र शुभध्यान मे लीन होकर बैठे थे। राजा श्रेणिक के दो अनुचरों के वार्तालाप से कि उनके राज्य को और पुत्र जो शत्रुओं से खतरा हो गया है। उन्हें शत्रुओं ने घेर रखा है, मुनि प्रसन्नचन्द्र को मोह आ गया और वे वन मे बैठे हुए ही ध्यान मे सिर्फ भावना द्वारा ही शत्रुओं से युद्ध करके उनका सहार करने लगे। किसी एक मनुष्य को भी थोड़ी-सी चोट नहीं पहुँचाते हुए भी केवल मन के अशुभ परिणामों अर्थात् भाव हिसा से उन्होंने सातवे नरक मे पहुँचाने वाले अशुभ कर्मों का सगह कर लिया किन्तु उन कर्मों का बध हो जाने के पहले ही किसी पूर्वकृत सुकृत से उनकी मोह-निद्रा भग हो गयी और उन्होंने पश्चात्ताप की अग्नि से सब कर्मों को नष्ट करके उसी क्षण केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इससे सिद्ध होता है कि प्राणी क्षणभर के महान अशुभ कर्मों से नरक का ओर सच्चा पश्चात्ताप करने से मोक्ष का पथिक बन जाता है।

मोटे रूप मे दुर्भावना तीन प्रकार की होती है। प्रथम प्रत्यक्ष दुर्भावना जिसमे कोई मनुष्य अपने शत्रु को गाली देता है, मारता-पीटता है। जुआ-चोरी, डकैती, शिकार हत्या आदि दुर्भावना के ही परिणाम हे।

दूसरी दुर्भावना गुप्त दुर्भावना है। इसमे एक प्राणी दूसरे प्राणीयों को दुख मे फसा देखकर खुशी मनाता है। हजारों मनुष्यों को मृत्यु के मुख मे जाते हुए देखकर खुशी मनाने वाला तदुल मत्स्य की भौति सातवे नरक मे जाने का कर्मबध कर लेता है। हजारों मनुष्यों को युद्ध मे मारे जाने की कामना करना भयकर भाव हिसा है।

तीसरे प्रकार की दुर्भावना अनुमोदना की दुर्भावना है। राम-रावण, कौरव-पाण्डव, चेड़ा-कोणिक एव विश्व के महायुद्धों का वर्णन सुनते या पढ़ते

हुए या समाचार पत्रों में दो समाचार पढ़कर प्राणी एक का समर्थन व अनुमोदन करता है और दूसरे का विरोध और उसकी निदा करता है। इस प्रकार हजारों लाखों मनुष्यों की हत्या का अनुमोदन करना घोर दुर्भावना है।

इन वर्णनों को पढ़ते हुए समझदार प्राणी मारकाट का अनुमोदन नहीं करते हुए मरने वालों के लिए अपने मन से अनुकम्पा भाव लाकर और मारने वालों को सद्बुद्धि देने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हुआ दुर्भावना की जगह सद्भावना भरता हुआ कर्मों की महान निर्जरा भी कर सकता है। दुर्भावना से बचने के लिए “सबका भला हो, सबका भलो हो” इस मत्र का जाप करना चाहिए।

सुखानुभूति से मुक्ति

मनुष्य प्राय अपने सभी काम या अधिकाश काम भौतिक या शारीरिक सुख प्राप्ति की भावना से करते हैं। वे महाआरम्भ, महापरिग्रह और महाभयकर युद्ध आदि के कर्मों में लगे रहते हैं। वे विशालकाय हिस्क कारखानों, बड़े-बड़े पशुवध घरों (कल्लघरों) के निर्माण की कल्पना और योजना बनाने में डूबे रहते हैं। अवसर मिलने पर उन्हें कार्य रूप में परिणित करते हैं। इस प्रकार वे महाभयकर कर्म करते हैं जिससे कुछ लोग सातवे नरक में भी पहुँच जाते हैं। कुछ लोग इस तथ्य को जानते हुए भी इन कार्यों से बचने का विचार नहीं करते क्योंकि अनत अनादिकाल से हिस्क काम करते रहते हैं और आज समाज में बड़े माने जाने व पूजे जाने वाले ऐसे ही लोगों का देखकर उनका अनुकरण करते हुए साधारण लोग भी इस ओर झुक जाते हैं। बहुत से साधारण लोग भी जो इन योजनाओं को कार्य रूप में परिणित नहीं कर सकते वे बाहर से किंचित मात्र हिस्सा न करते हुए भी केवल कल्पना के द्वारा अपने मन के परिणामों को हिस्क बनाकर भयकर कर्मों का बध करके नरक में पहुँच जाते हैं।

लोग कहते हैं कि हम धन इसलिए कमाते हैं कि धन से सुख मिलता है किन्तु उनका यह भ्रम है। कम धन होने के कारण मनुष्य को जितना दुख मिलता है उससे कई गुण अधिक दुख धनवानों को धन के कारण उत्पन्न होने वाली अपनी घरेलु समस्याओं से मिलता है। उसकी तुलना में धन से अनेक दुख भी मिलते हैं। धनवान के अनेक शत्रु होते हैं, उनका जीवन भी सुरक्षित नहीं है। उनका शरीर चिंता की आग में जलता रहता है। सेठ धनाजी को उनके भाई धन के कारण मारने का प्रयत्न करते थे। अपने नगर का सबसे धनाढ़य व्यक्ति मम्मण सेठ क्या कभी रात में भी सुख

से सो सका था ? क्या वह धन के लिए अर्द्धरात्रि में नीद को छोड़कर नहीं मे बहती हुई चंदन की लकड़ियों को इकट्ठा करने के लिए अपने घर से ज़हर के किनारे नहीं गया था जिससे कि वह धन इकट्ठा कर सके हैं। सोने-हीरों का दूसरा बैल बनाने की निर्णयक योजना को सफल बना ज़हर सुख तो वास्तव में सतोष, त्याग और साक्षी मे है।

सुख मिलता है अपने किए हुए पुण्य कर्मादय से, अन्यथा परिवार भी नहीं मिलता। क्या पाड़वों को कौरवों से कभी सुख मिला ? क्या उग्रस्तों को कस से कभी सुख मिला ? क्या कोणिक ने अपने पिता राजा श्रेष्ठ को कैद नहीं किया ? कुछ लोगों का कहना है कि जुआ, चौरी, डंकें ठगी, मास, मदिरा आदि मे कुछ सुख की अनुभूति होती है किन्तु यह उन्हें भ्रम है। इससे समाज मे वे अपना सम्मान खो देते हैं और जब वे पकड़े जाते हैं और उनको राज्य सरकार से दंड मिलता है तब उन्हे पता चलता है कि ये काम अच्छे हैं या बुरे। कुछ लोगों का कहना है कि शरीर ही सुख का साधन है। अतः शारीरिक सुख प्राप्ति के लिए गरिष्ठ भोजन (पकवान) पूर्व कचौड़ी, अधिक खटाई और गरमागरम चाय आदि लेते हैं और भूख़ ; अधिक भोजन करते हैं किन्तु अनियमित और अपच्य भोजन से स्वास्थ बिगड़ जाता है और शरीर मे रोगों की उत्पत्ति होने लगती है, कमज़ों आने लगती है, गैस बनने लगती है और नीद भी उड़ जाती है और ये शरीर सुख का साधन नहीं रहता किन्तु दुख-दर्द का भण्डार बन जाता है।

प्रथम तो यह सुख, सुख है ही नहीं, यह दुख ही है। इन शारीरिक, आर्थिक, मानसिक और आध्यात्मिक पतन होता है और यदि इन कोई सुख मान भी ले तो भगवान महावीर का कथन है कि 'क्षण भर सुख बहुत काल के दुख का कारण बनता है।' जब तक मनुष्य दुखानुभूति और सुखानुभूति दोनों से मुक्त होकर धर्म-ध्यान या सिद्धों के ध्यान मे लौ नहीं हो जाता तब तक सिद्ध पद की प्राप्ति नहीं हो सकती। सुखानुभूति को छोड़ने के लिए बार-बार इस सूत्र को दोहराइये-'क्षण भर का सुअशुभ कर्म के बध और बहुत काल के दुखों का कारण बनता है।'

धन लोभ का त्याग

यह सत्य है कि आज इस अर्थयुग मे अधिकाश लोग धन को अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा और कीमती समझते हैं। धनवान बनने की काम और कोशिश करते रहते हैं किन्तु यह भी सत्य है कि धन होते हुए भी अधिकाश लोग धन के कारण ही दुख भी पाते हैं। धन लोभ के कारण

मनुष्य को कई कष्ट उठाने पड़ते हैं और उनका परिणाम भी भोगना पड़ता है। 1 धन कमाने के लिए वे अपने जीवन को खतरे में डालते हैं। 2 अपने स्वास्थ्य को खोते हैं। 3 भारी अशुभ कर्मों का बध करके बाद में उनका बुरा फल भोगते हैं। 4 धन वालों की सतान अक्सर लड़ती रहती है। 5 कभी-कभी आलसी और चरित्रहीन भी बन जाता है। 6 धनवान् धन की रक्षा के लिए चितित रहते हैं। उन्हे डकैती आदि का भय रहता है। 7 धनवानों के सगे-सबधी उससे धन मँगते हैं और नहीं देने पर नाराज होकर उनके शत्रु बन जाते हैं। 8 धन से किसी के कर्मों को बदला नहीं जा सकता। 9 किसी की चिता दूर नहीं की जा सकती। 10 असाध्य रोग को मिटाया नहीं जा सकता। 11 सत्य को टाला नहीं जा सकता। 12 धन से धर्म खरीदा नहीं जा सकता। 13 धन होने पर भी अशुभ कर्मों का उदय हो तो सुख की प्राप्ति नहीं होती, राजा-महाराजा और धनी आदमी प्राय दुखी होते देखे गये हैं। 14 धन पास मे न होने पर भी सत, महात्मा, ईमानदार आदमी और सतोषी पुरुष सुखी देखे गये हैं और उनके लिये आवश्यकता पड़ने पर धनवान् लोग लाखों रुपया खर्च करने के लिए तैयार रहते हैं। अत सुख धन से नहीं पुण्योदय से मिलता है।

परिवार-मोह

परिवार के सबध मे तीन बाते ध्यान देने योग्य है—परिवार मे आज जिस-जिस प्राणी ने जिस-जिस प्राणी के साथ, जिस-जिस रूप मे पति-पत्नी, भाई-बहिन, पिता-पुत्र आदि के रूप मे जो जैसा सबध जोड़ा है, वह वैसा सबध पहले हमेशा नही रहता है और भविष्य मे ही हमेशा नही रहेगा। इतना ही नही बल्कि यह भी निश्चित नही है कि अन्य किसी रूप मे दूसरा कोई सबध भी रहेगा या नही। ऐसी स्थिति मे व्यावहारिक भाषा मे हम किसी प्राणी को अपने परिवार मे कह सकते है, किन्तु निश्चय दृष्टि से सभी प्राणी अलग-अलग है, स्वतत्र है और अकेले है। यहाँ कोई किसी का नही है।

द्वितीय—किसी भी प्राणी को उसके शुभ या अशुभ कर्मों के अनुसार जो सुख या दुःख मिलता है उसमें निमित्त बनने के अलावा उसे बदलना या घटाना-बढ़ाना परिवार के किसी भी सदस्य अथवा तीर्थकर के हाथ में नहीं है। अत 'कर्म-फल भोग' दृष्टि से भी सब प्राणी अलग हैं, स्वतंत्र हैं, अकेले हैं।

तृतीय-प्राणी अपने पारस्परिक ऋण को चुकाने या वसूल करने वे लिए परिवार में जन्म लेकर या विवाह-शादी करके उस परिवार के सदस्य बनते हैं और अपने कर्ज को चुकाकर या वसूल करके उस परिवार से ढूँढ़ हो जाते हैं। लेनदारों और देनदारों के इस अस्थायी जमाव को अपने परिवार समझना, उससे मोह रखना और अपने स्वार्थ की पूर्ति की आहु करना भूल है। ससार में कोई किसी का नहीं है।

सच्चा सुख या दुख परिवार से या धन से या इस भौतिक शरीर से नहीं मिलता, वह तो अपने शुभ या अशुभ कर्मों से मिलता है।

इच्छाओं का निरोध

ससार में सुख की इच्छा ही सब दुखों का कारण है। यदि सुख की इच्छा ही न हो तो दुखानुभूति भी नहीं होगी। मनुष्य दुख से भागने की इच्छा करता है किन्तु कर्मों के फल से कोई बच नहीं सकता है। दुख से भागने की इच्छा निरर्थक है। पुण्योदय से सुख की प्राप्ति या सुख की वस्तु होने लगती है। दुखों का अत करने का सर्वोत्तम उपाय है—इच्छाओं का रोकना। इच्छा निरोध ही तप है। इच्छा से मुक्ति ही ससार से मुक्ति है।

माया मिथ्या की दृष्टि

कषाय के चार भेद हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। इन चारों से मुक्त होने पर ही प्राणी कषाय मुक्त होता है। माया का अर्थ है—छल, कपट धोखा। माया तीन प्रकार से होती है—मन से, वचन से और काया से।

दूसरे को धोखा देने, ठगने और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए जें कपट भरे विचार मन में किये जाते हैं वह मन की माया है। जब कोई प्रार्थ अपना काम बनाने के लिए जान-बूझकर ऐसे शब्दों और वाक्यों का प्रयोग करता है जिससे वे सुनने वाला, बोलने वाले के मन के कपट को नहीं समझ सके और सही काम छोड़कर गलत काम करदे जिससे कि कपट भाष बोलने वाले का काम सिद्ध हो जाये तब यह माया भरी भाषा या वचन की माया कहलाती है।

जब कोई मनुष्य अपने शरीर से जान-बूझकर इस प्रकार की चेष्ट करता है जिससे कि देखने वाला उसके कपट को समझ न सके और ऐसे कार्य कर दे जिससे कि कपट करने वालों को लाभ हो, तब यह काया की माया कहलाती है। इस प्रकार मन से, वचन से, काया से माया अर्थात् कपट करने वाला सम्यक् दृष्टि नहीं रहता, वह मिथ्या दृष्टि वन जाता है।

मोक्ष पाने की इच्छा रखने वाले को माया छोड़कर मन, वचन और काया से सत्य को जीवन में अपनाना चाहिए। सत्य में महान शक्ति है। साधारण मनुष्य से देवताओं में, देवताओं से तपस्वी में और तपस्वी से सत्यवादी में अधिक शक्ति होती है। इसी कारण सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र ने तपस्वी मुनि विश्वामित्र द्वारा तप-बल से बाधी गई अप्सराओं (देवताओं) के बधन काटे थे। सत्य ही भगवान है। सत्य ही सबसे बड़ा तप है। सत्यवादी को स्वर्ग के देवता भी प्रेम से देखते हैं और उसकी सहायता करते हैं।

सत्य भाषा के पाँच गुण है—हित-हितकारी, मित (कम बोलना), प्रिय, सत्य, निरवद्य (जो हिसात्मक नहीं है)।

विकथा

बहुत से मनुष्य अपना अधिकाश समय इधर-उधर की व्यर्थ की बातों में या विकथा में लगा देते हैं जिससे अनावश्यक बातों की आलोचना होती है। इसमें अनेक बार हमारे अन्दर ज्ञान की कमी के कारण अशुभ बातों की अनुमोदना और शुभ की निन्दा हो जाती है। हम व्यर्थ ही अशुभ कर्मों का बध कर लेते हैं। कई लोग दूसरे स्त्री-पुरुषों की विकथा, देश की विकथा, या राज्य की विकथा करते हैं जिससे उनका कोई सबध नहीं होता, जिसमें उनका ज्ञान भी नहीं होता। इससे वे अपने वार्तालाप से गलत लोकमत भी तैयार कर लेते हैं, जिससे हजारों मनुष्यों का अहित भी हो सकता है। वे अशुभ कर्मों का बध करते हैं। अत लोगों को विकथा से बचकर, दान, शील, तप और समता भाव (क्षमा) की घटनाओं और कथाओं का स्वाध्याय, आत्मध्यान और सिद्धों के ध्यान में अपना समय लगाना चाहिए जिससे पाप नष्ट हो, पुण्य की प्राप्ति हो और सिद्ध पद भी प्राप्त हो।

मोह पर चोट

आठो कर्मों में मोहनीय कर्म सबसे प्रबल और प्रधान है। इस कर्म ने गौतम गणधर के मन में तीर्थकर महावीर के प्रति प्रशस्त राग पैदा करके कुछ समय तक उनके केवलज्ञान प्राप्ति के काम को रोक दिया। राग चाहे प्रशस्त हो या अप्रशस्त, वह आखिर है तो राग ही। मरुदेवी माता ने कोई त्याग पच्छाण नहीं किया था। कोई भी व्रत धारण नहीं किया था। फिर भी उनको हाथी के ऊपर बैठे हए ही और गहस्थ वेश में ही केवल मोह के

टूटते ही उन्हे वही केवलज्ञान और सिद्ध पद प्राप्त हो गया। सिद्ध द्वारा प्राप्ति के लिए मोह का टूटना आवश्यक है।

हमारे मन में परिवार के प्रति और परिवार वालों के मन में हमारे द्वारा मोह उत्पन्न होने का प्रथम कारण यह है कि अनंत अनादिकाल से हमें अचेतन मन ने मोह को अपना उपकारी और सहायक मित्र मानकर इसे अपने अन्दर स्थान दे दिया है। मोह अब इतना मजबूत बन चुका है कि चेतन मन के द्वारा अचेतन मन को यह समझना कठिन हो रहा है कि अनेक दुख प्राप्त होते हैं। यह मोह अपना शत्रु है, इसे छोड़कर मोझ पाने से वहाँ आनंद ही आनंद मिलेगा। मोह का दूसरा कारण यह है कि हमारा ज्ञान अल्प है और हम दूसरों के मन की बात भी नहीं जानते। किंतु हमारे अज्ञान, हमारी आदत और राग-द्वेष के कारण उनको दो भागों में बँट देते हैं—भले और बुरे।

मोह को मिटाने के लिए हमें भले और बुरे बैटवारे को बद करके, दोनों और छोटे बैटवारे को बद करके केवल एक विचार रखना चाहिए कि तभी लोग आत्माएँ हैं और केवल आत्माएँ ही, इससे राग-द्वेष और मोह की दृष्टि मिट जावेगी।

परिवार के लोगों को हम कहते हैं कि ये मेरा भाई हैं, यह मेरी भतीजा है ऐसा, कहना और समझना भी मोह बढ़ाना है। यहाँ पर भी हमें केवल यही विचार रखना चाहिए कि कोई किसी का न हुआ है न होगा। सब आत्माएँ अलग-अलग आत्माएँ हैं। एक दूसरे से स्वतंत्र है, कोई किसी का नहीं है।

चौथा कारण हम मोह भाव के कारण अपने परिवार के दुख को मिटाने के लिए चिंता करते हैं और अनेक प्रकार के अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित सभी प्रकार के काम करते हैं किन्तु हमें ध्यान रखना चाहिए कि किसी का दुख दूर करने और उसे सुख पहुँचाने की शक्ति केवल शुभकर्मों में ही है। इसलिए हमें चिंता करने और अनुचित काम करने से बचना चाहिए। पॉचवा कारण यह है कि पूर्व जन्मों का कर्ज चुकाने के लिए हम लोग परिवार में आते हैं। कर्जों को अनुकर्मा भाव से सम्यक् सेवा द्वारा चुकाते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हम सब लोग आत्माएँ हैं और सभी मनुष्य आत्माएँ हैं और अलग-अलग आत्माएँ। यह अलग-अलग होने की दृष्टि मोह को दूर करेगी।

सम्यक् सेवा का अर्थ यह है कि हमारे किसी काम से दूसरों के निर्वाह, ज्ञान प्राप्ति और आत्मोन्नति में बाधा नहीं पहुँचे किन्तु सहायता मिले। अनुकम्पा भाव या करुणाभाव या दयाभाव या शुद्धभाव का अर्थ है कि हमारे शरीर के हलन-चलन से, खाने-पीने से, उठने-बैठने से, आने-जाने से या हमारे वचनों से, वार्तालाप से या हमारे मन के विचारों से या भावनाओं से दूसरों को 1 दुख नहीं पहुँचे, 2 उनका पतन नहीं हो, 3 उनको सुख मिले और 4 सुख के साथ-साथ उनकी आत्म-उन्नति हो। इन चार बातों का ध्यान रखकर सावधानीपूर्वक शरीर से, वचन से या मन से जो काम किया जाता है वह सेवा कार्य कहलाता है। वह सेवा अनुकम्पा भाव से की जाने वाली सेवा कहलाती है। यह सेवा महान् तप है और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। इससे मोह टूट जाता है। मोह को तोड़ने के लिए नीचे लिखे पाँच सूत्रों को बार-बार दिन में कई बार दोहराइये, इनके अर्थ का चितन कीजिये, सतों से इस सबध में चर्चा कीजिए और स्लेट या कॉपी में इन्हें बार-बार लिखिये। 1 मोह छोड़ो मोक्ष मिलेगा। 2 सभी जीव आत्मा हैं, केवल आत्मा है। 3 कोई किसी का हमेशा न हुआ न होगा। 4 दुख दूर करने और सुख देने की शक्ति केवल शुभ कर्म में ही है, परिवार के हाथ में नहीं है, अनुकम्पा भाव से की जाने वाली सम्यक् सेवा ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है।

कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता ।
चिता भोह व्यर्थ मे ही करता ॥
कोई किसी का हुआ न होगा ।
कर्म साथ नही रहने देगा ॥

भावना की शक्ति

1 भावना मे अनत शक्ति है। हम अपने शरीर से जितनी हिसा और पाप करते है उससे हजारो लाखो गुण अधिक हिसा और पाप किसी जीव को दुख दिए बिना भी केवल अपने विचारो और गलत मानसिक परिणामो से कर लेते हैं।

2 एक मनुष्य पाँच प्राणियों को मारने का विचार दिन में 10 बार करता है, 20 दिन तक इस विचार को करता रहता है तो चाहे वह एक भी प्राणी को नहीं मारे किन्तु इस भावना से ही वह $5 \times 10 \times 20 = 1000$ (एक हजार) प्राणियों की हत्या के पाप का भागी बन जाता है।

3. कालसौरिक कसाई को अकेले को कमरे मे बद कर दिया रह वहाँ एक भी भैसा नहीं था। उसने अपने शरीर के मैल से 500 भैसे दर्ता और उन भैसों को मार दिया इससे उसे 500 भैसे मारने की हिसा का लगा। पश्चात्ताप मे भारी अशुभ कर्मों को काटने की महान शक्ति है।

4 मुनि प्रसन्नचन्द्र ने सातवे नरक मे पहुँचाने वाले भारी अशुभ कर्मों को क्षण भर मे काटकर केवलज्ञान प्राप्त किया। मुनि चडख्राघार्ध ने रात मे अपने नवदीक्षित शिष्य के कधे पर बैठे हुए, विहार करते हुए उन्हें केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद भी लातो और मुक्को से पीटा। किन्तु उन्हें शिष्य को केवलज्ञान प्राप्त होने की बात ज्ञात हुई तो वे शिष्य के दर्ता से नीचे उतर कर उससे क्षमा माँगकर पश्चात्ताप करने लगे। इस पश्चात्ताप से उनके भारी अशुभ कर्म कट गये और उन्हें क्षण भर मे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। मुनि करगडूक ने जो संवत्सरी के दिन भी उपवास नहीं दर्ता सकते थे भोजन लाने के कारण दूसरे सतों की भर्त्सना सुनी और पश्चात्ताप किया। इस पश्चात्ताप से उन्हें भी क्षण भर मे केवलज्ञान प्राप्त हो गया अपने पापों को काटने के लिए प्राणी को अपने इस अज्ञात पापों के पश्चात्ताप करना चाहिए।

अनुमोदना

पश्चात्ताप की भौति अनुमोदना मे भी महान शक्ति है। सुमुगाथापति द्वारा मुनि सुदत्त को उनके मासखमण के पारणे पर दिए गए सुपात्र दान की अनुमोदना करने वाले भी केवल अनुमोदना करने से नहीं गए। इसी प्रकार विजय सेठ, विजया सेठानी की और शील व्रतधारी से सुदर्शन के शील पालन की घटनाओं की अनुमोदना करने वाले शीलव्रतधारी बनने मे समर्थ होकर ससार सागर से तिर जाते हैं। इस प्रकार काली, सुकाली, महाकाली, महारानियों की तपस्या की अनुमोदना करने वाले मुफ्त मे ही कष्ट उठाए बिना ही तपस्या का फल पाने के भाव बन जाते हैं।

किसी गुण की अनुमोदना करने वाले केवल अनुमोदन के कारण अपने भारी अशुभ कर्मों की निर्जरा भी करते हैं।

मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदाई, मुनि अर्जुनमाली, मुनि दृढ़ प्रहारी आदि की समता भावना की अनुमोदना करने वाले लोग अपने भारी अशुभ कर्मों की निर्जरा किसी कष्ट के बिना कर डालते हैं।

शुभ की अनुमोदना आत्मा के उत्थान का कारण बनती है, किन्तु अशुभ की अनुमोदना महापरिग्रह, महाआरभ, महाहिसा, महायुद्ध, कसाई खानों का खोलना, महाहिसक कारखानों आदि अशुभ कार्यों का अशुभ अनुमोदन प्राणियों के पतन का कारण बनता है। प्राणियों को दुख देने और उनकी हिसा कराने वाले कार्यों की अनुमोदना से हमेशा बचना चाहिए। कुछ आदमी दूसरों को खुश करने के लिए बड़े-बड़े मकानों और हिसात्मक कारखानों की योजनाओं का अनुमोदन करते हैं वे अपने अज्ञान के कारण अशुभ कर्मों का बध करते हैं।

हत्या के पाप से अलग

पदम प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उधारण हारो।

गौ, ब्राह्मण, प्रमदा, बालक की मोटी हत्या चारो।

तेहनो करन हार प्रभु भजने, होत हत्या से न्यारो

पदम प्रभु पावन नाम तिहारो।

पाप पराल को पुज बन्यो अति, मानो मेरु आकारो।

सो तुम नाम हुतासन सेती सहजे प्रज्ज्वलत सारो।

पदम प्रभु पावन नाम तिहारो।

प्रभु के भजन से, सिद्धों के ध्यान से मुनि दृढ़ प्रहारी गाय, ब्राह्मण, स्त्री और बालक इन चारों की हत्या के पाप से न्यारा हो गया। सिद्धों के ध्यान में ऐसी महान शक्ति है। मुनि दृढ़ प्रहारी अनुकूल के राग से और प्रतिकूल के द्वेष से अलग होकर सिद्धों के ध्यान में लग गये और उन्होंने पॉच महीने के अन्दर ही भूख-प्यास, शीत-ताप और लोगों से मिलने वाला दड़-त्रास समतापूर्वक सहकर और सिद्धों के ध्यान में लीन रहकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

सिद्धों का ध्यान

णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण

णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण

ऊपर लिखे हुए नवकार मन्त्र के पद को मन-मन में या धीमी-धीमी आवाज में बोलकर बार-बार दोहराते हुए भक्ति और विनयपूर्वक हाथ जोड़ते हुए सिर झुकाते हुए और नमस्कार करते हुए सिद्धों का ध्यान किया जाता है।

मनुष्यलोक से ऊपर, देवलोक से ऊपर, सिद्धशिला से ऊपर लोक ३
 अग्रभाग मे जहाँ लोक और अलोक की सीमाएँ मिलती है वहाँ बहुत द्व
 लम्बा-चौड़ा खुला स्थान है। वहाँ पर अटल अवगाहना प्राप्त करके दिन
 किसी आधार से सिद्ध भगवान आनन्दघन अवस्था मे स्थिर हैं। उन्हें
 भक्तिभाव पूर्वक हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर, नमस्कार करते हुए और नहीं
 लिखे अनुसार उनके गुणो का बार-बार स्मरण करते हुए उनका ध्यान
 किया जा सकता है।

सिद्ध भगवान, सिद्ध भगवान
 आत्मद्रव्य है, अतिसूक्ष्म है।
 अगम अगोचर, अजर अमर है।
 वे सर्वज्ञ है, शक्तिमान है।
 आनन्दघन है, निर्विकार है।
 सब सिद्धो को नमस्कार है।
 नमस्कार है, नमस्कार है।
 अनतज्ञान है, अरु दर्शन है।
 अनन्त सुख है, अनन्त वीर्य है।
 क्षार्यिक समकित अमूर्तभाव है।
 अटल अवगाहना अगुरु लघु है।
 सब सिद्धो को नमस्कार है।

सिद्ध भगवान अशरीरी है। उनके शरीर नहीं है। वे केवल आत्मद्रव्य
 है। वे दिखाई नहीं देते। वहाँ हमारी पहुँच नहीं है। वे हमारी इन्द्रियों से
 नहीं जा सकते है। शास्त्र उन्हे काट नहीं सकते। पावक उन्हे जला
 नहीं सकती। वे भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल की घटनाओं को
 जानते है, मनुष्यो के मन की बात जानते है। उन्हे ससार का सम्पूर्ण ज्ञान
 प्राप्त है। वे सर्वज्ञ है और साथ ही पूर्ण शक्तिमान है। उन्हे कोई इच्छा, चिता
 या भय नहीं है। इसीलिए वे आनन्दघन है। वे क्रोध, मान, माया, मोह,
 इच्छा, दुःखभावना या दुर्भावना से मुक्त है। वे निर्विकार हैं। उन सब सिद्धों
 को मैं नमस्कार करता हूँ।

कुछ लोग सिद्धो का ध्यान इस प्रकार भी करते हैं—भगवान आदिनाथ
 के परिवार के प्राय सभी सदस्य सिद्ध हो गये। वे लोक के अग्रभाग मे
 विराजमान है। किन्तु हमे दिखाई नहीं देते क्योंकि वे अरूपी हैं। मैं उन सब
 सिद्धो को नमस्कार करता हूँ।

ससार मे जितने भी तीर्थकर हुए हैं उन सबने सिद्ध पद पाया है। किन्तु वे अमूर्त होने के कारण देखे नहीं जा सकते। मैं उन सब सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

भेद-सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते हैं। तीर्थ सिद्धा, अतीर्थ सिद्धा, तीर्थकर सिद्धा, अतीर्थकर सिद्धा, स्वयं बुद्ध सिद्धा, प्रत्येक बुद्ध सिद्धा, बुद्ध वोधि सिद्धा, स्त्रीलिंग सिद्धा, पुरुष लिंग सिद्धा, नपुसकलिंग सिद्धा, स्वलिंग सिद्धा, अन्य सिद्धा, गृहस्थलिंग सिद्धा, एक सिद्धा अनेक सिद्धा।

अन्यलिंग सिद्धा बताता है कि जैन धर्म मे पक्षपात नहीं है और यह द्रव्य क्रिया की अपेक्षा भाव क्रिया को प्रधानता देता है। अच्छी भावना भाने वाले अन्य धर्म के लोग भी सिद्ध भगवान बन सकते हैं। गृहस्थ सिद्धा सकेत करता है कि सिर्फ साधु ही सिद्ध नहीं बनते, किन्तु गृहस्थ भी भाव साधु बनकर सिद्ध भगवान बनते हैं। जैसे कूर्मा पुत्र केवली को भी गृहस्थ दशा मे केवलज्ञान प्राप्त हुआ था और वह छ महीने तक गृहस्थ पोशाक मे ही रहा इसलिए कि उनकी माता को दुख न हो। स्वयं बुद्ध बतलाता है कि विशुद्ध आत्म चित्तन करने वाला और चौबीसों घटे आनन्दघन रहने वाला क्रोध, काम, मद, मोह छोड करके दूसरे उपदेशक से उपदेश पाए बिना भी केवल अपने-आप ज्ञाप प्राप्त करके सिद्ध बन सकता है।

आप ये चितन भी करिए कि इन सिद्धों ने अपने मनुष्य भव के जीवन में अलग-अलग प्रमुखता दी। किसी ने दान को प्रमुखता दी, किसी ने शील को प्रमुखता दी—जैसे सेठ सुदर्शन, विजय सेठ, विजया सेठानी। किसी ने तप को प्रमुखता दी—जैसे मल्लिनाथ भगवान, काली रानी आदि। किसी ने समता भाव (क्षमा) को प्रमुखता दी—जैसे मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य। किसी ने अपने किए हुए पापों का पश्चात्ताप करके मुक्ति प्राप्त की। ऐसे सिद्धों का ध्यान करने से, उनके गुणों का अनुमोदन करने से आप उन्हें अपने जीवन में उतारने की प्रेरणा पाएंगे।

समस्या—कुछ लोग कहते हैं कि किसी पदार्थ या प्राणी का ध्यान करने के लिए उस पदार्थ या प्राणी को या उसके मूर्त रूप को, रग और अग आदि को या उसकी तस्वीर को देखना आवश्यक है। इसके बिना उन पर दृष्टि जमाना और ध्यान को केन्द्रित करना कठिन है। सिद्ध भगवान अशरीरी है। उनका आत्म द्रव्य दिखाई नहीं देता। इसलिए सिद्धों का ध्यान करते समय हमारा मन इधर-उधर जाता रहता है और ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता।

समाधान—वे लोग इस समस्या का समाधान इस प्रकार करते हैं—
कहते हैं कि जैन आगमों में सिद्धों का जो वर्णन दिया गया है उन्हें पढ़कर और कल्पना का सहारा लेकर सिद्ध भगवान की कल्पित मूर्ति की आकृति मन में बनाई जा सकती है और वह आकृति बहुत कुछ मन की आकृति जैसी होनी चाहिए क्योंकि सिद्ध बनने के ठीक पहले दृष्टि अन्तिम मानव भव के शरीर के आत्म-प्रदेशों का संकोच और विस्तार दें हो जाता है। वे आत्म-प्रदेश ज्यों के त्यों वैसे ही रह जाते हैं जैसे कि दृष्टि अन्तिम समय में मानव के शरीर में थे। इसलिए उनकी आकृति में कोई विशेष अन्तर नहीं आता।

दूसरी बात यह है कि सिद्ध भगवान अटल अवगाहना प्राप्त करते हैं और अवगाहना भी उनके अन्तिम मानव भव वाले शरीर की अवगाहन के (दो तिहाई) भाग के बराबर रह जाती है। क्योंकि (एक तिहाई) भाग उपोलार (आकाश-प्रदेश) का था वह निकल जाता है। इस प्रकार इन दृष्टियों के सहारे उनके कल्पित मूर्ति रूप की कल्पना करके उस पर दृष्टि जमाना और ध्यान केन्द्रित हो जाना सम्भव हो जाता है। कुछ लोग सिद्धों का ध्यान करते समय सफेद रग की कल्पना करके उस पर ध्यान केन्द्रित करने की सलाह देते हैं।

इस प्रकार कल्पित मूर्ति रूप बनाना या सफेद रग देखना कहाँ तब उचित या लाभप्रद है? इसका निर्णय या तो शास्त्रों के मर्म के ज्ञाता, पण्डित या बहुत अनुभव वाले ध्यान योगी ही कर सकते हैं किन्तु यह वाता निर्विवाद है कि गुणों की प्राप्ति के लिए तो गुणों का ध्यान ही लाभप्रद और आवश्यक है। शरीर को देखकर उसका ध्यान करने में राग उत्पन्न होने की भी सम्भावना बनी रहती है। भगवान महावीर के अति निकट रहने वाले उनके परमभक्त गौतम स्वामी को भी भगवान महावीर के प्रति प्रशरत राग था, जो उनके केवलज्ञान प्राप्ति में जब तक भगवान महावीर मोक्ष नहीं पधारे, बाधक बना रहा।

ऑखों से देखना, एक क्रिया है, महत्त्व ऑखों से देखने का नहीं होता किन्तु उस देखने के साथ-साथ जो भाव जुड़े रहते हैं उन्हीं का महत्त्व बन रहता है। सगमदेव भगवान महावीर के साथ छ महीने तक रहा औं उसको भगवान महावीर के साक्षात् दर्शत होते रहे किन्तु सगमदेव की दृष्टि में द्वेष और भावना में विकार था इसलिए उसके कर्मों की निर्जरा होने वें स्थान पर नवीन भयकर कर्मों का बंध हुआ। गोशालक भी भगवान महावीर

के साथ बहुत समय तक रहा। उसे भी उनके दर्शन होते रहे किन्तु इन दर्शनों से उसके कर्मों का नाश नहीं हुआ। राजा श्रेणिक के साथ उसके सारथी ने भी भगवान् महावीर और बहुत से सतों के दर्शन सिर्फ सम्यता की मर्यादा निभाने के लिए भक्ति के बिना किए। जहाँ महाराज श्रेणिक के छ नारकीय कर्म नष्ट हुए वहाँ उनके सारथी के कुछ भी कर्म नष्ट नहीं हुए। उसे केवल काया कष्ट ही हुआ। केवल दर्शनों से ही भक्ति के बिना दर्शन करने वाले के कर्मों का नाश नहीं होता किन्तु उसके साथ जुड़ी हुई भावना, विनय भक्ति गुणानुराग आदि के कारण ही कर्मों की निर्जरा होती है। अत ध्यान मे महत्त्व इस बात का नहीं है कि हमे सिद्ध भगवान् के कल्पित रूप के दर्शन होते हैं या नहीं। किन्तु महत्त्व इस बात का है कि हम सिद्ध भगवान् के या जिन सतों या महापुरुषों के दर्शन करते हैं या नहीं या हमारे ऊँचे अचेतन मन मे उनके गुणों के प्रति गुणानुराग है या नहीं।

यह भी सत्य है कि सिद्ध भगवान के आत्मद्रव्य को कल्पना के द्वारा देखने के प्रयास के बिना केवल उनके गुणों के चितन का अभ्यास कुछ दिनों तक किया जावे तो अरुपी सिद्धों के गुणों का चितन और ध्यान सम्भव हो सकेगा।

सिद्धों के ध्यान से हमारे अन्दर जो विकार है वे दूर होते हैं और हमें गुणों की प्राप्ति होती है। हमारे अशुभ कर्म, पाप रोग और दुख नष्ट होते हैं और हमें सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

सेवा के नौ भेद

किसी भी कार्य को अच्छे या बुरे परिणामों से अच्छा या बुरा नहीं कहा जा सकता। उसको अच्छा या बुरा बताने की कसौटी है—उस कार्यकर्ता के मन में परिणाम यानी भावना। इस दृष्टि से सेवा के नौ प्रकार हो सकते हैं। उसमें प्रथम तीन सेवाभावी उत्तम दूसरे तीन मध्यम और अन्तिम तीन अधम प्रकृति वाले कहे जा सकते हैं।

1 उत्तम (क) कर्तव्य भावना

कर्तव्य भावना से प्राणी मात्र की सेवा करने वाले सर्वोत्तम सेवाभावी कहे जा सकते हैं। उन्हे किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती, कामना नहीं होती। वे ससार को सही मोक्ष का मार्ग दिखाते हैं। इस श्रेणी में तीर्थकर और पूर्ण त्यागी महापुरुष आते हैं। यह कर्तव्य भावना ही सर्वोत्तम सेवा भावना है।

(ख) ऋण मुक्ति भावना

इसमें वे व्यक्ति आते हैं जो वर्तमान और भूतकाल के बहुत से इन और अज्ञात व्यक्तियों के और समाज के उपकारों से अपने-आप को उपलब्ध मानते हैं और स्वयं को उनका ऋणी मानते हैं। इसीलिए वे प्राणी मात्र हीं सेवा निष्काम भाव से मान और अपमान, जीवन-मरण का ख्याल किए हीं अपना तन, मन, धन तीनों लगाकर दूसरों की सच्ची सेवा और उन्हें आत्महित करते हैं। इसमें त्यागी सत और निर्लोभी सेवा करने वाले द्वारा आते हैं। श्री जवाहराचार्य द्वारा लिखी गई मध्य की कथा में यह कहा गया है कि वह निष्काम भाव से समाज की सेवा करता था। जब दृष्टि राजकर्मचारियों ने राजा से उसकी शिकायत की और राजा ने उस नामक व्यक्ति और उसके साथियों को कुचलने के लिए तीन बार मतदान हाथी छोड़े तो तीनों ही बार वे हाथी उनको सूँघ-सूँघ कर ही वापस ले ले गये। उन्हें कुचला नहीं। ऐसे समाज सेवियों को मनुष्य तो क्या पशु हानि नहीं पहुँचाते।

(ग) पुण्य करनाने की भावना

इस श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं जो अपने धन को औषधालय अनाथालय, विधवाश्रम, वृद्धाश्रम, पाठशाला, ज्ञानशाला, पुस्तकालय, कुछ दाने आश्रम आदि खुलवाने में लगाते हैं या इनमें चदा देते हैं और उनमें सेवा कार्य करते हैं।

2. मध्यम (क) दबाव या भय

सेवा करने वाले इस श्रेणी में आते हैं। उनके मन में सेवा करने की इतनी भावना नहीं है जितनी की उस व्यक्ति को खुश रखने की भावना है जिसके दबाव से या भय से वे सेवाकार्य में लगे हैं।

(ख) कीर्ति प्राप्ति की भावना

दान देने वाले या सेवाकार्य करने वाला या पाठशाला, औषधालय खुलवाने वाले इत्यादि इस श्रेणी में आते हैं। वे सम्मानों पर अपना नाम लिखवाते हैं और दूसरों की नजरों में अपने आपको बड़ा आदमी दिखाने की कोशिश करते हैं। यह एक प्रकार का अहंकार प्रदर्शन है। इससे अहंकार को पोषण मिलता है। अहंकार इतना भयंकर विकार और अवगुण है जो बाहुबलीजी जैसे महातपस्वी को भी केवलज्ञान प्राप्त करने से रोक देता है।

अहकार से अच्छी क्रियाओं का फल भी तुच्छ-सा बन जाता है। क्रोध के समान यह भी मनुष्य को ऊँचा नहीं उठने देता। यदि समाज के लिए दाना, देने वालों में यश प्राप्ति की भावना मिट जाय और नि स्वार्थ भाव से, निष्काम भाव से मान-अपमान और लाभ-हानि का ख्याल न रखकर, वे सेवाकार्य में लगे रहे तो वे मध्यम से निकल कर उत्तम श्रेणी में आ जाते हैं।

(ग) लोभ अर्थात् धन लाभ

सम्पत्ति कमाने की भावना से सेवाकार्य करने वाले इस श्रेणी में आते हैं। वे चाहते हैं कि हम समाज सेवा के लिए कुछ धन लगावे और बड़े-बड़े राजकर्मचारियों और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की नजरों में ऊँचे हो जावे तो इससे हमें व्यापार का लाइसेस मिल जावेगा या कारखाने के लिए सस्ते दामों में जमीन मिल जावेगी या सम्पदाओं में कुछ चीजें विक्रय करने का ठेका मिल जावेगा और हम जितना सेवाकार्य में खर्च करेंगे उससे अधिक कमा लेंगे। उनकी भावना दान देने की नहीं किन्तु धन कमाने की रहती है। यह व्यापार है। सच्ची सेवा नहीं है। इसे सेवा नहीं माना जा सकता। क्रिया का फल उससे जुड़ी भावना के अनुसार मिलता है। क्रिया के परिणाम से नहीं। यदि ऐसे व्यक्ति दान देते समय धन कमाने की भावना नहीं रखे तो वे मध्यम से उत्तम सेवाभावियों की श्रेणी में आ जाते हैं।

3 अधम (क) दुष्ट प्रकृति

जो व्यक्ति संस्था या समाज में फूट डलवाने की भावना से काम करते हैं और फूट डलवा देते हैं, वे अधम श्रेणी की सेवा करने वाले सेवाभावियों में आते हैं।

(ख) बदला लेने की भावना

जो व्यक्ति दूसरो से बदला लेने की भावना से किसी व्यक्ति या समाज की सेवा करता है तो वह भी अधम प्रकृति का व्यक्ति है।

(ग) स्वभाव

जो व्यक्ति समाज को लूटने या डुबाने की भावना से काम करते हैं वे भी इसी अधम श्रेणी में आते हैं।

निष्कर्ष—हमारा ज्ञान बहुत सीमित है। हम दूसरों के अन्त करण को देख नहीं सकते। इसीलिए किसी व्यक्ति को किसी श्रेणी में रखना भयकर भूल है और यह अशुभ कर्म बध का कारण बन जाता है। अत आप विचारिये कि आप स्वयं किसी श्रेणी में हैं और किन दुर्भावनाओं को छोड़कर

उच्च श्रेणी मे आ सकते हैं। कोई भी व्यक्ति अपनी दुर्भावना को छोड़ सच्ची भावना से दूसरों की सेवा मे लगे तो वह सिद्ध पद तक पहुँच जाएगा है क्योंकि सेवा एक महान तप है।

क्या परिवार सेवा मोह है ?

कुछ लोग कहते हैं कि परिवार के साथ रहना, परिवार वालों वा पालन-पोषण करना, उनकी सहायता करना, उनकी सेवा करना ये सभी मोह प्रेरित कार्य हैं। इन कामों मे न सेवा है न अनुकम्पा है। ये सब प्राणी पाप के काम हैं।

इस सबध मे धारिणी महारानी के गर्भपालन के कार्य को जैन शास्त्र ने अनुकम्पा बताया है जिसका उल्लेख आचार्यश्री जवाहरलालजी ने जैन 'अनुकम्पा विचार' नामक पुस्तक मे किया है कि धारिणी रानी ने अपने गर्भ का पालन मोह से नहीं वरन् अनुकम्पा से किया था। माताएँ अपने गर्भ का या सतानो का पालन-पोषण केवल मोह से या भविष्य मे सुख पाने के आशा से ही नहीं करती किन्तु अपनी समझदारी से इन कार्यों को अनुकम्पा के कार्य और कर्म निर्जरा के कार्य भी बना सकती हैं।

भगवान महावीर ने अपनी गर्भावस्था मे ही जबकि उन्होंने थोड़ी देर के लिए अपनी हलन-चलन की क्रिया को रोक दिया था, जिससे उनके माता को चिंता हो गई कि उनके गर्भ का हलन-चलन वद क्यों हो गया। उस समय गर्भावस्था मे ही उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि जब तब मेरी माता जीवित रहेगी तब तक मैं दीक्षा नहीं लूँगा। क्या भगवान महावीर का यह कार्य मोहजनित था ? क्या पुत्र का यह कार्य कि माता को घिन्टने हो मोह प्रेरित है ? क्या यह कर्तव्य नहीं है ?

कूर्मा पुत्र केवली ने केवलज्ञान प्राप्ति के बाद भी छ महीने तक घर नहीं छोड़ा केवल इसी भावना से कि उनके घर छोड़ने से उनकी माता का दुःख न हो। क्या केवली की माता को सुख पहुँचाने की भावना मोह से भर हुई थी ? क्या यह उनका कर्तव्य नहीं था ?

हम लोग भूतकाल के और वर्तमान के, दूर के और नजदीक के ज्ञान और अज्ञात बहुत से प्राणियों के, किसानों के, जुलाहों के, गुरुजनों के ओं पशु-पक्षियों के भी हमारी उपलब्धियों के लिए और जो कुछ या जैसे कुछ हम आज हैं और जो कुछ हमने उन्नति की है क्या उसके लिए हम उन्हें ऋणी नहीं हैं ? क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम उनके कर्ज का चुकाये ?

इसमें से कुछ लोग अपने पुराने जन्मों के कर्जों को चुकाने के लिए या वसूल करने के लिए जन्म लेकर या विवाह सबध जोड़कर एक परिवार में आते हैं। अत परिवार वालों का कर्ज चुकाना अपना कर्तव्य है। इसे यह कहना कि मैं परिवार की सेवा कर रहा हूँ भूल है। यह सेवा नहीं है। इसे हम सेवा कहते हैं लेकिन यह तो सिर्फ ऋणमुक्ति है। कर्मों के विधान के अनुसार हम इससे बच नहीं सकते। इसमें कोई रियायत भी नहीं हो सकती। पिछले जन्मों का कर्ज शत-प्रतिशत माप, तोल और गिनकर पूरा का पूरा चुकाना पड़ता है। यह कर्ज कर्म अवधि पक जाने पर, कर्मादय होने पर, कर्ज की देय तिथि आने पर चुकाना पड़ता है। इसे जो व्यक्ति हस-हस कर चुकाता है वह इस कर्ज से मुक्त हो जाता है और जो हस-हस कर नहीं चुकाता उसे यह कर्ज रो-रो कर चुकाना पड़ता है। इस हालत में जो व्यक्ति इसे सेवा कहता है वह उसकी भूल है क्योंकि सेवा इच्छा से की जाती है रो-रो कर नहीं।

जो व्यक्ति यह समझते हैं कि ये मेरे भाई हैं, ये मेरी बहिने हैं, ये मेरे माता-पिता हैं या ये मेरे पुत्र-पुत्री हैं, वह झूठे परिवार के मोह में फँसता है। इसे कोई परिवार भले ही समझे किन्तु यह परिवार जैसी बात नहीं है। यह तो पिछले जन्मों के कर्जों को चुकाने व वसूल करने वाले हैं।

कुछ लोग सोचते हैं कि मैं परिवार की या समजा की या गरीबों की बहुत सेवा करता हूँ। ऐसे समय में उसे अहकार न करते हुए यह सोचना चाहिए कि यदि मैं नि स्वार्थ भाव से सेवाकृति में लगा रहा तो मेरे विशेष कर्मों की निर्जरा होगी, जिससे पूर्वकृत अशुभ कर्म टूटेंगे। नये शुभ कर्मों का बध होगा।

समझदार लोग इस ऋण मुक्ति कार्य को इस भावना से इसे अनुकम्भा के कार्य में बदल देते हैं कि ये परिवार वाले, समजा वाले और दूसरे लोग आत्माएँ हैं। मेरा कर्तव्य है कि मैं सावधानी रखूँ कि इन आत्माओं को दुख न हो, कष्ट न हो, इनको असाता न पहुँचे, इनका पतन नहीं हो किन्तु इनका भला हो, इनको सुख पहुँचे और इसके साथ-साथ इनकी आत्मोन्नति हो। उत्कृष्ट सेवाभावना से तीर्थकर नाम गोत्र कर्म का बध होता है, ऐसा भगवान महावीर ने फरमाया है।

नोट-दूसरों से सेवा कराना कर्जदार बनना है। अत जहाँ तक सम्भव हो अपना कार्य स्वयं करना चाहिए।

समता राखोजी

क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी ॥
दुख अपने कर्मों से आता
दुख आकर कर्मों को धोता
समता रखने से सुख होता
तिर गये गजसुकुमाल, समता धारो जी ॥
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी ॥
क्रोधी मर कर साप बनेगा
पाप कर्म वो अधिक करेगा
ऊपर से फिर दंड मिलेगा
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी ॥
गुरु नाना की सीख यही है
समता राखे बड़ा वही है
बदला ले वो बड़ा नहीं है
क्रोध करे वो बड़ा नहीं है
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी ॥

संकल्प की कविता

सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूगा ॥
समता रखकर कर्म काटकर।
सिद्धों का पद प्राप्त करूगा ॥
सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूगा ॥
सिद्धों का ही ध्यान धरूगा।
सिद्धों का गुणगान करूगा ॥
सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूगा ॥
काम क्रोध, मद, मोह छोड़कर।
आनन्दघन और अभय बनूगा ॥
सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूगा ॥

शीलव्रत का पालन

जैनागमो में शील पालन को बड़ा महत्त्व दिया है। शील पालन से विजय सेठ, विजया सेठानी ने और सेठ सुदर्शन ने सिद्ध पद प्राप्त किया। जैन साधु-साध्वी, के लिए तो बड़े कठोर नियम बनाये गये हैं। जैन साधु किसी साध्वी, स्त्री या एक माह की लड़की से वस्त्रो द्वारा स्पर्श होने से भी बचता है। इसी प्रकार जैन साध्वी किसी साधु, पुरुष या एक माह के बालक के वस्त्रो द्वारा स्पर्श होने से भी बचती है। यदि भूल से या असावधानी से वस्त्रो द्वारा भी स्पर्श हो जाता है तो उन्हे दड़ प्रायश्चित लेना पड़ता है।

यह शरीर से द्रव्य शील पालन हुआ। मन से भाव शील पालन में पुरुष वृद्ध पर-स्त्री को माता, छोटी बालिका को पुत्री अपने समान उम्र वाली स्त्री को बहन के समान समझे। इसी प्रकार स्त्रियाँ वृद्ध पर-पुरुष को पिता, छोटे बालकों को पुत्र और अपने समान उम्र वाले पुरुषों को भाई के समान समझे। यह पिता-पुत्र, भाई की भावना और माता-पुत्री, और बहिन की भावना पुरुष और स्त्रियों को शील पालने में बहुत सहायक होती है। अत ये मेरे पिता-पुत्र भाई हैं या मेरी माता-पुत्री बहिन है इस भावना को बार-बार दोहराने से, इसका बार-बार चित्तन-मनन करने से और इसका जप करने से ये भावनाएँ अचेतन मन में बैठ कर साधकों को दृढ़ शीलव्रतधारी बना सकती हैं। शील पालन के लिए कोई भी स्त्री किसी पर-पुरुष के और कोई भी पुरुष किसी पर-स्त्री के शरीर, चेहरे और विशेष कर उसकी आँखों की ओर और उनके 1 चित्रों को नहीं देखें, नहीं देखें, नहीं देखें। 2 उनके पास नहीं बैठें। 3 नहीं ठहरें। 4 जरूरी कार्य के बिना उनके पास नहीं रहें। 5 उनसे अनावश्यक बातें या हँसी-मजाक नहीं करें। 6 एकात में उसके साथ नहीं ठहरें। 7 जब कभी उनसे मिलने का मौका पड़े तो माता-पुत्री बहिन की भावना या पिता-पुत्र भाई की भावना को रटते रहे या, 8 विजय सेठ, विजया सेठानी की शीलपालन की घटना को याद करते रहे। 9 उत्तेजक पदार्थों के सेवन और शृगार से बचकर सादा जीवन शील पालन में बड़ा सहायक है।

पश्चात्ताप की विधि

अपने पूर्वकृत पापों का पश्चात्ताप तीन चरणों में किया जा सकता है। प्रथम चरण में—1 घटना की स्मृति एव मन में खेद, 2 अपना दोष देखना, 3 भगवान् से सबुद्धि की प्रार्थना।

द्वितीय चरण मे—क्षमायाचना, 2 दोनो साक्षात् मिलने पर दून क्षमायाचना, 3 दड प्रायश्चित लेना। तीसरे चरण मे—1 सावधानी रखन 2 उसी पाप के दुबारा होने पर दुगुना प्रायश्चित करना, 3 इस अवगुण दे दूर करने के लिए किसी महापुरुष की घटना का हमेशा दस-बीज मिन्ह तक स्वाध्याय करना।

प्रथम चरण—स्मृति खेद और प्रार्थना

1 व्यक्ति श्री ... को उस दिन मुझसे जरा-सा धक्का लग गया जिससे वह बहुत नाराज हुए और मुझसे लड़ने लगे। मैंने भी समताभाव से दिया और मैं उनसे लड़ने लगा। इतने मे ही दो-चार भले व्यक्ति आ गये। उन्होने मीठे शब्दो से हम दोनो को समझाकर झगड़ा शांत किया अन्यथा झगड़ा बढ़ जाता।

2 यह मेरी भूल थी। मैंने सावधानी नही रखी इसीलिए उन्हे धक्का लगा। उनका कोई दोष नही था। अत. मुझे चुप रहना चाहिए था। मैंने अपना सतुलन खो दिया। मुझे क्रोध आ गया। मैं लड़ने लगा था। मैंने बहुत बुरा किया। मैं आज इसके लिए पश्चात्ताप कर रहा हूँ। मुझे अपने दोष के देखना चाहिए था। मुझे पूर्ण समता रखनी चाहिए थी। मुझे अपनी गलती पर पश्चात्ताप करना चाहिए था। मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिए थी। मैंने ऐसा कुछ नही करके उल्टा उनसे झगड़ा किया। यह मेरी भयकर भूल थी।

3 मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे सुबुद्धि दे, सुमति दे, सम्यक् ज्ञान दे, समता रखने की शक्ति दे और सामने वाले व्यक्ति से क्षमा माँगने की ताकत दे।

द्वितीय चरण क्षमायाचना और प्रायश्चित

1. मैं आज उस व्यक्ति श्री ... से अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता हूँ। वे क्या उनकी आत्मा जहाँ कही भी हो मुझे मेरे अपराधो के लिए क्षमा करे।

2 यदि उनसे मेरा साक्षात् मिलना होगा तो मैं इस अपराध के लिए उनसे क्षमा माँगूगा।

3 इस पाप के प्रायश्चित के रूप मे एक या दो या तीन दिन के लिए नमक, धी, या मीठा या फल का त्याग करता हूँ एक, दो या तीन आयनित

या एक उपवास तप करूँगा। यदि सम्भव हो तो धर्मगुरु या श्री आचार्य भगवन् को घटना बताकर दड प्रायश्चित लूँगा।

तृतीय चरण भविष्य में सावधानी रखना—

1 भविष्य मे मै परी सावधानी रखूँगा कि मुझसे ऐसा काम न हो।

2 यदि मुझसे कभी ऐसा अपराध होगा तो मैं इस पाप को नष्ट करने या हल्का करने के लिए दुगुना प्रायशिचत लूगा।

3 इस अवगुण को दूर करने के लिए मैं मुनिश्री गजसुकुमाल, मुनिश्री मैतार्य, मुनिश्री अर्जुनमाली आदि की समताओं की घटनाओं का प्रतिदिन स्वाध्याय करूँगा।

ऊपर नमूने का एक उदाहरण दिया गया है। पश्चात्ताप करने वाला व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार इसे घटा-बढ़ा या बदल सकता है।

स्वाध्याय के सूत्र

इन सूत्रों को आप प्रतिदिन बार-बार दोहराइये और इनके अर्थ पर चित्तन करिये जिससे ये अवचेतन मन में बैठ सके और स्थिर भावनाएँ बन सकें।

1 सेवा—परिवार के लोगों को मेरा भाई है, ऐसा नहीं समझकर यह केवल आत्मा है, ऐसा मानकर अनुकम्पा भाव से उनकी सम्यक् सेवा करनी चाहिए।

2 दड़—किसी को इसके अपराध के लिए दड़ देने का अधिकार मुझे नहीं अपितृ कर्मा को है।

3 क्रोध-दुख अपने अशुभ कर्मों से मिलता है, उसमें निमित्त बनने वाले को दोष क्यों दूँ? उस पर क्रोध क्यों करूँ, उससे लड़ाई क्यों करूँ? वह तो मेरे कर्मरोग काटने की अचूक दवा देने वाला मित्र है। उपकारी डॉक्टर है। परमात्मा उसका भला करे।

4 दुख—(क) दुख मुझे अशुभ कर्मों से मिलता है। समता रखने से यह मेरे कर्मरोग काटने की दवा बन जाएगा। इस दवा को दुख मानना और रोना भूल है, पाप है। (ख) दुख कर्मों की निर्जरा कराता है, अज्ञान को हटाता है। मोह को हटाता है और धर्म में श्रद्धा पैदा कराता है। यह उपकारी शिक्षक है।

5 अहकार—(क) दूसरो को दुख देने या सुख देने की शक्ति के लिए कर्म में ही है, मनुष्य में नहीं। किसी को किसी का बुरा करके या भल करके अहकार करना भूल है। (ख) मनुष्य अपने बचपन में, रोग अपस्थिति व बुढ़ापे में और अशुभ कर्मों के उदय के समय में स्वयं अपने-आप को रोगात्मक नहीं सकता, उसका अहकार करना भूल है। (ग) अहंकार से शुभ कर्मों पर फल मिलना भी रुक जाता है। अहकार के कारण बाहुबलीजी के केवलज्ञान की प्राप्ति रुकी रही। (घ) मनुष्यों के अशुभ कर्मों के उदय के समय कृष्ण या महावीर जैसे महापुरुषों का बल भी काम नहीं करता किंतु मनुष्य का अहकार करना भूल है।

6 दुर्भावना (क) दुर्भावना से नरक व सद्भावना से मोक्ष या स्तर्ग मिलता है। (ख) भगवान् सबको सुबुद्धि दे, सुमति दे, सम्यक्ज्ञान दे, सदज्ञ भला हो। इस सूत्र को जपने से दुर्भावना मिट जाती है।

7 भौतिक या शारीरिक सुख—(क) सच्चा सुख तो मोक्ष में है। (ख) शरीर की इन्द्रियों से मिलने वाले भौतिक सुख से शरीर कमजोर होता है। रोग आ घेरते हैं और कभी-कभी अकाल मृत्यु भी हो जाती है। (ग) जैनागम कहते हैं कि थोड़े समय का भौतिक सुख भी बहुत समय तक दुख का कारण बनता है।

8. धन का लोभ (क) धन से भौतिक सुख कम मिलता है ओर दुरा अधिक मिलता है। (ख) लोभ सब पापों और दुखों की जड़ है।

9. परिवार मोह—(क) मोह छोड़ मोक्ष मिलेगा। सब दुख दूर होगे। (ख) सब प्राणी केवल आत्माएँ हैं। (ग) कोई किसी का अपना न हुआ, न होगा। सब प्राणी अलग-अलग आत्माएँ हैं, मोह छोड़ो। (घ) दुख दूर करने के सुख देने की शक्ति केवल शुभ कर्मों में ही है। तुम्हारे या परिवार के हाथ में नहीं है। मोह और चिता छोड़ो। (ड) कर्ज चुकाने के लिए परिवार या दूसरों की अनुकम्पा भाव से सम्यक् सेवा करते समय यह सोचना चाहिए कि ये सब प्राणी केवल आत्माएँ हैं। अलग-अलग आत्माएँ हैं। ये न अपने हैं न पराये हैं।

10 इच्छा—इच्छाओं को रोको। इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं होती हैं। इच्छा निरोध महातप है। यह मोक्ष का मार्ग है।

11 विकथा—विकथा को छोड़कर ताप, शरीर, शील, तप, समताभाव, आदि की कथाओं को पढ़ो, सुनो, सुनाओ और लिखो।

12 माया—सत्य ग्रतधारी अर्थात् मन, वचन, काया की सरलता वाला देवताओं से सहायता पाता है और वह मोक्ष या स्वर्ग पा सकता है।

13 शील—परस्त्री (मेरी) माता या पुत्री या बहनों के समान है।
(ख) उसके अवगुण नष्ट होते हैं और गुण प्रकट होते हैं।

14 गुण दर्शन—दूसरों में गुणों को देखने वाले का अहकार दूर होता है और उसमें विनय भाव पैदा होता है।

15 देह—आत्मभेद ज्ञान या आत्मा भावना यह शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। शरीर का सुख-दुख मेरा (आत्मा) का सुख-दुख नहीं है। इस सूत्र को बार-बार जपने से इस भावना के अचेतन मन में बैठ जाने से दुखानुभूति मिट सकती है।

16 सिद्धों का ध्यान—“णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण।

देहासक्ति से मुक्ति

सिद्ध पद प्राप्त करने के लिए सब कर्मों की निर्जरा आवश्यक है और सब कर्मों की निर्जरा तभी सम्भव है जब देह की आसक्ति छूट जाये और काया-कष्ट, समताभाव से सहन किया जा सके। ऐसी सहन-शक्ति दो प्रकार से प्राप्त होती है—1 अभ्यास से और 2 भावना से।

1 सहन-शक्ति प्राप्त करने के लिए नवकार मत्र से पोरसी, एकत, उपवास, आयविल आदि तप किया जा सकता है। 2 अपने सभी काम अपने हाथ से करके स्वावलम्बी बना जा सकता है। 3 जो काम अपने शरीर से हो सके, उसके लिए मशीनों का प्रयोग कम से कम किया जाये। 4 शीत ताप, भूख-प्यास, मक्खी-मच्छर आदि के उपद्रव समताभाव से सहन किया जाये। 5 घर के सभी कार्यों में परिवार की सहायता श्रम पूर्वक कष्ट अनुभव किए बिना की जाए। रोग आदि में कष्ट को समताभाव से सहा जाए। और 6 उपसर्गों व कष्टों को समतापूर्वक सहन किया जाए।

सहनशक्ति बढ़ाने का दूसरा और प्रभावशाली उपाय है—भावना द्वारा देह की आसक्ति को तोड़ना और सहनशक्ति बढ़ाना। इसके लिए स्वाध्याय किया जा सकता है। इसके लिए सूत्र इस प्रकार है—

1 शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ।

2 शरीर मेरा नहीं है। यह नाशवान है।

3 उपसर्ग और काया कष्ट समताभाव से सहन करने से देहासक्ति टूट जाती है।

4 मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य आदि की समता भावना और कष्ट सहने की घटनाओं का अध्ययन, चितन मनन और स्वाध्याय हो जाये।

5 उपसर्ग या कष्ट के समय केवल यही भावना दोहराता है— मेरा पाप कट रहा है, कटने दो। या

6 मेरे कर्मों की निर्जरा हो रही है, होने दो।

इन अन्तिम दो सूत्रों का चितन करने से कष्ट भुलाया जा सकता है।

इस प्रकार अभ्यास और भावना से, सहनशक्ति बढ़ने से काया दृष्ट समता भाव से सहन किया जा सकेगा, जिससे कर्मों की निर्जरा होती है; आत्मा की शुद्धि व सिद्ध-पद की प्राप्ति होगी।

सच है कि “यह शरीर किसी प्राणी का अपना न हुआ है न होगा। भाव तरंगों की शक्ति

दवा शरीर का रोग दूर करती है और केवल शुद्ध भाव तरंग रुक्ष का रोग और चरित्र के दोष दोनों को दूर करती है। प्राणी के शुभ कर्मों द्वारा उदय होने से ही दवा काम करती है। भाव तरंगे उस समय असफल होते हैं, जब भाव तरंगे भेजने वाले व्यक्ति की—1 भाव तरंगों के सबध में पूर्ण जानकारी नहीं हो। 2 भाव तरंगे भेजते समय एकाग्रता की कमी हो। 3 भाव तरंगों की शक्ति में पूर्ण श्रद्धा नहीं हो। 4 वह धैर्य न रखकर सफलता होने से पूर्व ही उसे छोड़ दे।

एकाग्रता श्रद्धा और धैर्य से भाव तरंगों की शक्ति बढ़ जाती है। अब से परमाणु में, स्थूल से सूक्ष्म में और दवा से भाव तरंगों में अधिक राहि होती है। क्रोधी मित्र को लगभग अर्द्धरात्रि के समय जबकि उस क्रोधी मित्र के नीद में होने की सम्भावा हो, ये भाव तरंगे भेज सकते हैं—“मित्र (उसका नाम लीजिए) क्रोध छोड़ो समता धारो।” या “भाई ! (उसका नाम लीजिए, तुम स्वस्थ हो, निरोग हो, तुम्हारा रोग दूर हो रहा है।” भाव तरंगे भेजने समय इस बात का ध्यान रखें कि मानो आप उसके कान में ही कर रहे हों जिससे कि एकाग्रता बनी रहे।

कषाय - मुक्ति चौथा भाग

आदर्श सेठ

प्राचीन काल मे दिल्ली नगर मे धर्मदास नाम का सेठ रहता था। उसके चार पुत्र थे। जब वह बूढ़ा हुआ तो उसने कुछ धन अपने पुत्रो मे बॉट दिया और कुछ धन अपने पास रख लिया। जब वह किसी व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से कमजोर देखता तो वह गुप्त रूप से पॉच हजार रूपये दे देता और उसे ईमानदारी से व्यापार करने को कहता। इस प्रकार उसने बहुत से लोगो के जीवन निर्वाह और आत्म उत्थान मे सहयोग दिया।

जब वह बीमार हुआ तो जिन लोगो की धर्मदास ने मदद की, उनमे से कुछ लोग रूपये लौटाने के विचार से आए तो सेठ धर्मदास ने उनकी बाते सुनकर उनसे कहा—“भाई साहब यदि आप अपने ऊपर मेरा एहसान मानते हैं तो मेरी एक बात मानिये। यह रूपये आप मुझे न देकर धरोहर के रूप मे अपने पास रखिए और गुप्त रूप से जितने व्यक्तियो की सहायता कर सके, करे। यही मेरी सच्ची सेवा है और सच्चा धर्म है।”

आये हुए सभी लोगो ने यह प्रण किया कि आपके बताए हुए आदर्श मार्ग पर चलकर हम दूसरो के जीवन निर्वाह, ज्ञान प्राप्ति और आत्मोन्नति मे निमित्त बनने की पूर कोशिश करेगे।

यह सुनकर सेठ धर्मदास ने एक गहरी सास ली और बोले—मैने देखा है जिस घर मे गरीबी और भूखमरी आ जाती है वह घर लडाई-झगड़े का घर बन जाता है, उसमे मारपीट होने लगती है। यहाँ तक कि आत्महत्या या दूसरो की हत्या तक क्रोध मे कर दी जाती है। वह घर हिसाका घर बन जाता है और सबके भारी कर्म बधते है। ऐसे घर को गुप्त रूप से मदद देने वाला, उस घर को स्वर्ग और धर्मस्थानक-सा बनाने मे निमित्त बन कर स्वयं भी महापुण्य का भागी बनता है। गुप्तदान ससार मे एक महान सेवा तप है।

मुनि गजसुकुमाल

बहुत पुरानी बात है। एक पुरुष के दो पत्नियाँ थीं। वे दोनों समझदार थीं और मिल-जुलकर प्रेम से रहती थीं। कुछ वर्षों के बाद छोटी बहू के पुनः हुआ जिससे घर में उसका मान-सम्मान बढ़ गया। यह बात बड़ी बहू के बुरी लगी और उसने उस पुत्र को मारने का विचार किया।

एक बार उस लड़के के सिर में बड़े-बड़े फोड़े हो गए। छोटी बहू भोली-भाली और सीधी-सादी थीं। उसने पुत्र की दवा का काम बड़ी बहू पर छोड़ दिया। बड़ी बहू ने उस पुत्र को मारने के विचार से जान-बूझकर आठे की एक बहुत गर्म रोटी उस लड़के के सिर पर बौध दी जिससे वह लड़का मर गया। आगे जाकर उस बड़ी बहू का जीव निन्यानवे लाख जन्मों के बाद द्वारिका नगरी में महारानी देवकी के गर्भ से पुत्र रूप में जन्मा और उसका नाम रखा गया गजसुकुमाल। छोटी बहू का वह लड़का मर दर सासार में भटकता हुआ द्वारिका नगरी में एक ब्राह्मण के घर में पेदा हुआ और उसका नाम रखा गया सोमिल। इसी सोमिल ने अपने पुराने देर दा बदला लेने के लिए मुनि गजसुकुमाल के सिर पर शमशान भूमि में अगारा को रखकर अपना बदला लिया।

कहा जाता है कि गजसुकुमालजी जब सोलह वर्ष के हुए तब एक दिन वे हाथी पर बैठकर श्रीकृष्णजी के साथ भगवान तीर्थकर श्री नेमिनाथर्जी के दर्शन करने गए। रास्ते में सोमिल की पुत्री सोमा खेल रही थी। यह बहुत सुन्दर थी अत श्रीकृष्णजी ने सोमिल ब्राह्मण से सोमा का विवाह बहुत सुन्दर थी अत श्रीकृष्णजी ने सोमिल ब्राह्मण से सोमा का विवाह गजसुकुमाल के साथ करने की बात कर उसे विवाह से पहले ही राजगड़ल में भिजवा दिया। उधर तीर्थकर नेमिनाथर्जी की वाणी सुनने से गजसुकुमाल को वैराग्य हो गया। उन्होंने तुरन्त ही दीक्षा ली और भगवान नेमिनाथर्जी से शीघ्र मोक्ष पाने का मार्ग पूछकर उनसे आज्ञा लेकर शमशान भूमि में चढ़ गए। उसी समय सोमिल भी वहाँ आया। अपनी लड़की को इस प्रकार छोड़ने के कारण मुनि गजसुकुमाल के ऊपर सोमिल को बहुत क्रोध आया और उसने गजसुकुमाल के सिर के ऊपर भीगी मिट्टी की पाल वृंधी और पानी ही जलते हुए मुर्दे की एक चिता से जलते हुए अगारे उठाए। उन गजसुकुमालजी के सिर पर रखा और चला गया। मुनि गजसुकुमाल ध्यान का मुख्य भाव यह था—स्वयं के किए हुए कर्मों से ही सुख-दुःख की प्राप्ति होती रहती है, जरूर किसी जन्म का वैर सोमिल के साथ रहा होगा तो

उसने ऐसा बर्ताव किया है, इस वक्त मैं यदि समझाव रखूँगा तो मेरे कर्मों का नाश होगा, ऐसा ही हुआ। उन्होंने समस्त कर्मों का नाश कर मुक्ति पा ली।

किया स्वयं का स्वयं ही पाता ।
क्रोध दुख मन मे क्यो आता ॥

दृढ़ प्रहारी

कभी-कभी महाहिसा करने वाले प्राणी भी अपने पूर्वजन्म में किए हुए अच्छे कर्म के प्रभाव से अचानक उसी जन्म से मोक्ष पहुँचने वाले मुनि बन जाते हैं। यही बात दृढ़ प्रहारी के साथ घटी। वह अचानक ही चोर और हत्यारे दृढ़ प्रहारी से समीक्षण ध्यानी मुनि दृढ़ प्रहारी बन गए। दृढ़ प्रहारी एक अच्छे घर से उत्पन्न हुए थे। वे अपने माता-पिता के साथ कभी-कभी साधु-साधियों के दर्शन करने और उनके प्रवचन सुनने भी जाते थे। किन्तु कुसगति के कारण वे शराब पीने, चोरी करने लगे और विरोध करने वाले की हत्या कर देते थे। इस कारण घर से निकाल दिए गए। उसके बाद वे चोर-डाकू बन गए। एक दिन वे डाका डालने के लिए एक ब्राह्मण के घर गए। घर में एक गाय खुली थी। वह रम्भाने (रिकने) लगी। दृढ़ प्रहारी ने सोचा कि लोग जग जायेगे, तो उसने एक ही चोट में उसके सिर को धड़ से जुदा कर दिया। इसी समय बाहर से ब्राह्मण आया। पकड़े जाने के भय से दृढ़ प्रहारी ने उसे भी मार दिया। उसके बाद दृढ़ प्रहारी अन्दर गया, तब ब्राह्मणी ने कहा—“तूने मेरी गाय को मार दिया, तूने मेरे पति को मार दिया, अब तू मुझे क्यों जिन्दा छोड़ता है। मैं क्या खाऊंगी, मैं किसके सहारे रहूंगी?” तब दृढ़ प्रहारी ने सोचा कि कहीं यह शोर न मचा दे। इसलिए उसने उसे भी मार दिया। सगर्भा ब्राह्मणी तो मर गई परन्तु तलवार के साथ गर्भस्थ बालक टुकड़े-टुकड़े होकर बाहर निकलकर गिर गया। इस हत्या को देखकर दृढ़ प्रहारी का हृदय काप उठा। तलवार उसके हाथ से छूट गयी। वह विचारने लगा—“हाय-हाय! मैंने चार हत्याएँ कर डाली। मैंने पहले भी बहुत हत्याएँ की हैं, अनेक बच्चों को अनाथ किया है, महिलाओं को वैधव्य का दुख दिया है, लोगों का धन लूट कर उन्हें दाने-दाने के लिए मोहताज बनाया है। मेरा इन पापों से छुटकारा कब और कैसे होगा?”

दृढ़ प्रहारी ने पहले बहुत अच्छे कर्म किए होंगे। उन कर्मों के उदय से उसके विचार एकदम बदल गए और उसने हत्यारे दृढ़ प्रहारी से मनि

दृढ़ प्रहारी बनने का सकल्प कर लिया। दृढ़ प्रहारी ने तत्काल्प दिए—

1 मैं सिद्ध पद प्राप्त करूँगा। 2. मैं मेरे किए हुए पाप कर्मों का प्रायश्चित्त करूँगा और उसका फल भोगूँगा। 3. नगर के दरवाजे के पार खड़ा रहकर भूख, प्यास, शीत, तप सहन करूँगा। 4. इस रात्ते से इन्हें वाले लोगों का मैंने अपराध किया है। उनके और दूसरे लोगों के भी दृवचनों, गालियों, थपड़ों और मुक्कों को सहन करता हुआ समता रखूँगा। 5. मैं दिन भर प्रभु के भजन में, सिद्धों के ध्यान में और ज्ञान के स्वाध्याय में लीन रहूँगा जिससे मुझको लाभ होगा। प्रथम तो इससे शरीर के कष्ट भूलने में सहायता मिलेगी, दूसरे प्रभु के ध्यान से सभी पाप नष्ट होंगे। मेरी इस वर्तमान स्थिति में यही समीक्षण दृष्टि है और सक्षेप में मेरे लिए यही समीक्षण ध्यान है, जिससे मैं सिद्ध पद प्राप्त करूँगा।

बाहुबलीजी ने तो अह भाव से 12 महीने तक तप किया था फिरन्तु दृढ़ प्रहारीजी ने अहकार छोड़कर 5 महीने तक समीक्षण ध्यान किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। अन्त में समीक्षण ध्यानी मुनि दृढ़ प्रहारी ने देह त्याग कर सिद्ध पद प्राप्त किया।

सिद्ध बनूँगा, सिद्ध बनूँगा।
आनन्दघन और अभय बनूँगा ॥
आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ।
दुःखी नहीं हूँ, आनन्दघन हूँ ॥
नमो सिद्धाण, नमो सिद्धाण।
नमो सिद्धाण, नमो सिद्धाण ॥

मुनि अर्जुनमाली

जिस अर्जुनमाली ने एक हजार एक सौ इकायालीस मनुष्यों की हत्या की, वह अर्जुनमाली भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर मुनि अर्जुनमाली बन गया और समीक्षण ध्यान से मोक्ष प्राप्त कर लिया। प्रथम उसने निरदग किया कि मुझे सिद्ध पद प्राप्त करना है। दूसरी बात वह अपने पायों का याद करके उनके लिए पश्चात्ताप करता है। तीसरी बात, वह सोचता है—“मैंने बहुत लोगों को दुख दिया, अनाथ बनाया, वरवाद किया, बहुतों की हत्या की, अनेक घर उजाड़े। फिर भी ये लोग घड़े दयालु दिखते हैं। मुझे हत्या की, अनेक घर उजाड़े।

रहा हूँ। ये मुझे हल्का-सा दड़ देने वाले, तो केवल निमित्त बने हैं। इन पर क्रोध क्यों करूँ? मुझे यह जो हल्का काया-कष्ट मिल रहा है, वह भी तो मैंने स्वयं ने ही मोल लिया है। इससे तो मेरे कर्म कट रहे हैं फिर इसे दुख क्यों माना जाए, सम्भाव से सारे कर्म कटते हैं—

किया स्वयं का, स्वयं ही पाता।

क्रोध दुख मन मे क्यो आता ॥

मुनि अर्जुनमाली ने उपर्युक्त भावना का स्वाध्याय करीब छ महीने तक किया जिससे उनका क्रोध समूल नष्ट हो गया, दुखानुभूति बिलकुल मिट गई और वे आनन्दघन बनकर सिद्ध बन गये। आनन्दघन का अर्थ है—जिसको आनन्द ही आनन्द हो, कोई दुख न हो।

आत्मा है मैं, देह भिन्न है।

दूखी नहीं मैं, आनन्दघन हूँ।।

मृगा पुत्र (मृगा लोढा)

एक राजा था। उसका नाम विजयवर्द्धन था। वह बहुत बुद्धिमान और धर्मात्मा था। उसकी रानी मृगादेवी बहुत समझदार और धर्मात्मा थी। उनके एक पुत्र था। उसका नाम था मृगा पुत्र। उसके हाथ, पैर और कान नहीं थे। वह एक गुप्त स्थान में पड़ा रहता था। वही पर वह खाता-पिता था। वही पर मल-मूत्र त्याग करता था। रानी उस कमरे की सफाई का पूरा ध्यान रखती थी। किन्तु फिर भी वहाँ इतनी बदबू आती थी कि उस कमरे में आने वाले को नाक पर कपड़ा रखना पड़ता था। राजा और रानी दोनों ही मृगापुत्र की इस दशा पर दुखी थे। मृगापुत्र ने अपने पूर्व जन्मों में बड़े-बड़े पापों का सचय किया था, जिससे उसको ऐसा शरीर मिला जिसकी चिकित्सा होना सभव ही नहीं था।

भगवान महावीर के मुँह से मृगापुत्र का वृत्तान्त सुनकर गणधर गौतम स्वामी, महावीर भगवान की आज्ञा लेकर उसे देखने के लिए राजमहल मे पधारे। राजा और रानी ने गौतम स्वामी को देखकर हाथ जोड़कर सिर झुका कर नमस्कार किया और उनसे निवेदन किया—“आज हमारे महाभाग्य है कि आपने पधार कर हमारा घर पवित्र किया। गौतम स्वामी ने मृगादेवी के पुत्रों को देखने की इच्छा प्रकट की तब मृगादेवी ने अपने स्वस्थ ओर सुन्दर पुत्रों को लाकर दिखाया, तब गौतम स्वामी ने कहा—“देवानुप्रिय ! मैं तुम्हारे उस पुत्र को देखना चाहता हूँ जिसका शरीर विकृत है। तब रानी उन्हे आदरपूर्वक उस ग्रास स्थान मे ले गई जहाँ मुगापुत्र बैठा था। गौतम

स्वामी ने मृगापुत्र को देखा और वे कर्मों की विचित्र गति पर मन ही कुछ विचारने लगे। गौतम स्वामी के चले जाने पर रानी महलों से छह सप्त उस समय उसे बहुत उदास देखकर राजा ने रानी से कहा—“मैं हुम कोई भी प्राणी अपने कुटुम्ब वालों के या अन्य किसी भी प्राणी के द्विंशु अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में और दुख को सुख में बदलने की शक्ति रखता है। मृगापुत्र ने पूर्व जन्मों में महाअशुभ कर्म किए होगे इसीलिए उसने ऐसा शरीर पाया है। इसका फल उसे ही भोगना पड़ेगा।”

यदि एक प्राणी दूसरे प्राणी के अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में दबासके और दुखी को सुखी बना सके तो आज ससार में कोई दुर्लभ रहता।

कर्म कुटुम्ब के, बदल न सकता।
चिन्ता मोह मै, व्यर्थ ही करता॥

इस प्रकार का स्वाध्याय करने से प्राणी सिद्ध पद पाने की ओर दर्ता है।

नोट 1—मृगापुत्र अपने पूर्व जन्मों में अधर्मभाषी, अधर्मानुरागी, परिवार को मारने वाला, अधिक ब्याज लेने वाला हत्यादि के अपराध लगा देने वाला रिश्वत-घूसखोरी आदि कार्य करने वाला था। जैसा कि पुस्तक ‘पिता सूत्र’ के पृष्ठ स 17,18।

नोट 2—एक परिवार में एक सोलह वर्ष की लड़की है जिसके दाव व पैर काम नहीं करते हैं। उसके माता-पिता ने बहुत कोशिश की, उन्होंने से इलाज करवाया। मगर वे अपनी लड़की को इस काविल नहीं बना सके कि वह चल फिर सके।

नोट 3—एक परिवार में एक 25 वर्ष का लड़का जिसका दिमाग दाव नहीं करता। वह लड़का आधा पागल-सा है।

अनाथी मुनि

जिन महापुरुष की यह कहानी है उनका नाम था अनाथी मुनि। उनके पिता बहुत धनवान थे। वह धर्म के भी पूरे जानकार थे। श्री अनन्त मुनि की माता भी बहुत समझदार व दयालु थी। उनके पिता ने अनाथी को बहुत पढ़ाया और वे धर्म के महापडित हो गये।

एक बार अनाथी मुनि के ऊँचों से बड़े-बड़े प्रसिद्ध वैद्य बुलाये और कीमती दर्दी। इस पर बहुत धन खर्च हुआ। उनके पिता ने मत्र जानने वालों का

बुलाया लेकिन वे भी कुछ न कर सके। उनके माता-पिता, भाई-बहिन भी दिन-रात उनके दर्द को दूर करने का उपाय करते रहे लेकिन वे भी कुछ न कर सके। उनकी पल्ली भी ऑंखों से ऑसू बहाते हुए उनकी सेवा में लगी, लेकिन कोई भी ऑंखों का दर्द नहीं मिटा सका।

यह तो उनके पूर्वजन्म में किये हुए पाप का फल था जो अब उदय में आकर उनको दुख दे रहा था। कोई भी प्राणी किसी दूसरे प्राणी के कर्म रोग को मिटाने की शक्ति नहीं रखता।

शक्ति है केवल निज कर्मों में।

दुख देने की पाप कर्म में।

अशुभ कर्म जब उदय में आता।

अन्य कोई सुख दे नहीं पाता॥

कर्मों के रोग धन से या किसी भी अन्य पुरुष से मिटाये नहीं जा सकते। यदि कोई एक पुरुष दूसरे पुरुष का रोग या दुख दूर कर सकता तो आज ससार में एक भी प्राणी रोगी या दुखी नहीं रहता। कर्मों का रोग, दान, शील, तप आदि बड़ी-बड़ी उत्कृष्ट भावनाओं और वैसी ही क्रियाओं से मिट सकता है। एक रात्रि के समय अनाथी मुनि ने गृहस्थ अवस्था में सकल्प किया—यदि मैं इस दुख से छुटकारा पा लूगा तो मैं दीक्षा लेकर पूर्ण समता रखकर परमात्मा पद पाने की कोशिश करूगा।

सबेरे उनके नीद से जागने पर उनके परिवार वालों को बहुत आश्चर्य हुआ कि जो रोग दवाओं से नहीं गया, वह अचानक दूर कैसे हो गया तो उन्होंने जवाब दिया कि दुख और रोग उत्कृष्ट भावना, धर्म की भावना और धर्म करने से दूर होता है, अब मैं दीक्षा लेकर अपनी आत्म-शुद्धि करूगा।

उनके घर वालों ने उनको बहुत समझाया कि घर में रहकर कुछ दिन तक माता-पिता की सेवा करो लेकिन उन्होंने अपने माता-पिता से कहा कि कोई किसी का नाथ नहीं बन सकता और किसी का दुख दूर नहीं कर सकता। प्राणी स्वयं ही अच्छे कर्म करके अपना नाथ बन सकता है। ससार में सब अलग-अलग है। कोई किसी का अपना हमेशा के लिए नहीं बन सकता क्योंकि अलग-अलग मनुष्यों के अलग-अलग कर्म होते हैं। वे कर्म उनको हमेशा साथ नहीं रहने देते। पुराने जन्मों का परस्पर लेन-देन समाप्त हो जाने पर उनके कर्म उनकी मृत्यु से पहले ही उन्हे अलग-अलग कर देते हैं और मृत्यु तो उनको अपना बनने ही नहीं देती।

कोई किसी का हुआ न होगा।

कर्म साथ नहीं रहने देगा॥

अनाथी मुनि ने दीक्षा लेकर अपना और अनेक मनुष्यों की आत्म-
उद्धार किया।

शक्ति है केवल निज कर्मों में
सुख देने की शुभ कर्मों में
दुःख देने की पाप कर्म में
अशुभ कर्म उदय जब आता
अन्य कोई सुख दे नहीं पाता
कर्म पुत्र को दूर हटाता
कर्म पिता को शत्रु बनाता
शक्ति है केवल निज कर्मों में।

चण्डकौशिक

भगवान् महावीर के जीवन काल की घटना है। एक साधुजी थे। वे तपस्या तो बहुत करते थे लेकिन स्वभाव के चिडचिडे ओर क्रोधी उनके एक शिष्य था जो बहुत वाचाल था और गुरुजी की छोटी-गलती पर उन्हे प्रायश्चित कराता रहता था। इससे गुरुजी का क्रोध अधिक तेज हो जाता। एक दिन गुरुजी अपने शिष्य के साथ आहार के लिए गोचरी पधारे। रास्ते में गुरुजी का पैर एक मेढ़क पर पड़ गिरा। शिष्य ने कहा—“गुरुजी आपके पैर से दबकर यह मेढ़क मर गया, पर लिए प्रायश्चित कीजिए।” गुरुजी ने कहा—“मेढ़क मेरे पैर से नहीं है।” गृहस्थों से भोजन लेकर जब दोनों अपने स्थान में पहुँचे तो वे को प्रायश्चित लेने के लिए चेले ने फिर कहा कि मेढ़क आपके पैर नहीं था, आप प्रायश्चित ले लो लेकिन गुरु ने कहा मेढ़क मेरे पैर से नहीं है, प्रायश्चित लेने की कोई जरूरत नहीं है। शाम को प्रतिक्रिमण के जब चेले ने प्रायश्चित लेने की बात फिर दोहराई तो गुरुजी को दहुआ आया और गुरुजी ओघे का डडा लेकर चेले को मारने उठे। खिड़की छज्जा बहुत नीचे था और गुरुजी के तेजी से उठने के कारण उनकी पत्थर से टक्करा गया और उसी समय उनका देहान्त हो गया। गृह देव बने। वहाँ की आयु पूर्ण कर मनुष्य अवस्था प्राप्त की और तापरा में तापस बन गया। उसका नाम कौशिक था। परन्तु वह वडा ही ब्राह्मण उसकी चण्ड प्रकृति के कारण सब उसे चण्डकौशिक कहते थे। उस-

क्रोधी स्वभाव के कारण आश्रमवासी उसे अकेला छोड़कर अन्यत्र चले गये। वह अकेला रहता था। एक बार एक राजकुमार ने उसे चिढ़ाया, जिससे वह चिढ़ कर उसे मारने के लिए दौड़ा। वह क्रोध में बेभान था और गड्ढे में गिरकर मर गया।

क्रोध से मरण के कारण वह सर्प बन गया और जगत में मार्ग के पास ही एक बिल में रहने लगा, जो कोई मनुष्य उस रास्ते से जाता उसे वह सर्प विष दृष्टि से देखता और उसके देखते ही व्यक्ति मर जाता। अत उसका नाम भी चण्डकौशिक पड़ गया।

एक दिन भगवान महावीर उस चण्डकौशिक को समझाने के लिए जा रहे थे। लोगों ने उन्हे रोकना चाहा लेकिन वे रुके नहीं और जहाँ सर्प था वहाँ चले गये। चण्डकौशिक ने उन्हे विष दृष्टि से मारना चाहा, लेकिन इससे कुछ नहीं हुआ। तब सर्प ने उन्हे काटा। जब इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ तब सर्प ने महावीर स्वामी को आश्चर्य से देखा।

भगवान महावीर ने कहा—“अरे चण्डकौशिक ! समझ कि तू पहले कौन था और अब तू कौन हो गया है और क्या करता है।” भगवान के इन वचनों को सुनकर चण्डकौशिक को ज्ञान हो गया और उसने सोचा कि इससे पूर्व जन्म में मैं एक साधु था किन्तु क्रोध के कारण मैं सर्प बन गया। मैंने अनेक मेढ़क, चूहों, पशुओं और मनुष्यों की हत्या की है। मैंने सर्प बन कर नरक ले जाने वाले पाप किये हैं। ये सच है कि क्रोध नरक ले जाने वाली सीढ़ी है। क्रोधी मनुष्य मरकर सर्प बन जाता है। क्रोध मनुष्य को भले बुरे काम की पहचान नहीं सीखाता। मेरे किसी पूर्व जन्म में किये हुए पुण्य से मुझे भगवान महावीर के दर्शन हुए और यह अपूर्व ज्ञान मिला। अब मैं पूर्ण समता रखकर अपने कर्मों को काटूगा और अपना जीवन सुधारूगा।

चण्डकौशिक ने अपना सिर बिल में रख लिया और शरीर बाहर रख लिया। लोगों ने उसे बिलकुल शात देखकर यह समझा कि यह चण्डकौशिक देवता हो गया है। उन्होंने उस पर दूध और बताशे चढ़ाए जिससे चीटियों आकर उसके शरीर को काटने लगी। इस भयकर दर्द में भी चण्डकौशिक ने क्रोध न करके पूर्ण समता रखकर सहन किया जिससे उसके अनेक पाप कट गये।

सच है क्रोध से प्राणी के अच्छे-अच्छे गुण नष्ट हो जाते हैं और वह मुक्ति पाने का अधिकार खोने लगता है।

क्रोधी मुनि नम्र शिष्य

एक संत बहुत क्रोधी थे। उनको क्रोध बहुत जल्दी आता था। एक दिन एक शातिचद्र नामका आदमी जिसकी शादी 10 दिन पहले हुई थी अपने साले लहरचन्द के साथ शाम के समय इन्हीं सत के दर्शन कर आया। लहरचन्द बहुत मजाक करने वाला था। उसने मजाक-मजाक ; तीन-चार बार महाराज को कहा कि मेरे बहनोई शातिचन्द्रजी को साधु कर दीजिए। इससे साधुजी को बहुत क्रोध आया और शातिचन्द्र को पकड़ उनके बाल नोच दिये और साधु बना दिया। यह देखकर लहरचन्द को छोड़कर घर भाग गया। मुनि शातिचन्द्रजी ने गुरुजी से कहा कि— ससुराल वाले आदमी अभी आयेंगे और झगड़ा करेंगे। इसलिए रात में हम लोग किसी दूसरी जगह चले जाये तो अच्छा रहेगा। रात में आप कम दीखता है और आप तपस्या के कारण दुबले-पतले हैं। आप मेरे पर बैठ जाइये। मैं आपको ले चलूगा।

गुरुजी मुनि शान्तिचन्द्रजी के कधे पर बैठ गये। रात थी और उन्हें कही ऊँचा-नीचा था। इसलिए मुनि शान्तिचन्द्रजी के पैर कभी ऊपर नीचे पड़ते थे इससे गुरुजी को धक्के लगते थे। धक्का लगने पर गुरुजी अपने चेले को लातो और मुक्को से पीठ पर मार भी देते थे। किन्तु शान्तिचन्द्रजी ने समता, शाति और विनय रखा, जिससे उनको केवल हो गया। अब ऊँची-नीची जमीन उनको अधेरे में भी साफ दियार्द लगी। अतः गुरुजी को धक्के लगने बद हो गये। तब गुरुजी ने कहा—“खाने से क्या सब कुछ दीखने लगा है।” चेले ने कहा—“यह सब आपकी कृपा का फल है।” यह बात सुनकर गुरुजी के मन मे कुछ विचार आये और उन्होने दुबारा पूछा—“क्या तुम्हे केवल ज्ञान प्राप्त हो गया है।” शान्तिचन्द्रजी ने फिर वही उत्तर दिया—“यह आपकी कृपा का ही है।” यह सुनकर गुरुजी चेले के कधे से नीचे उतर गये और उनसे माँगी। उन्हे बड़ा दुख हुआ कि मैंने केवल ज्ञानी का अपमान किया है। उन्हे दुख दिया। गहरा और हार्दिक पश्चात्ताप होने से उन्हे भी केवल हो गया।

विनय से और सच्चे पश्चात्ताप से पाप कर्म नष्ट होकर केवल प्राप्त हो जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

कालसौकरीक कसाई

एक बार राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से कहा—“मेरे पापों के नष्ट होने का कोई उपाय बताने की कृपा करे। भगवान महावीर ने कहा—“तुम कालसौकरीक कसाई से जो एक दिन मे 500 भैसे मारता है, भैसों को एक दिन के लिए मारना बद करवा दो तो तुम्हारे पाप कर्म नष्ट हो सकते हैं।” राजा श्रेणिक ने उस कसाई को बुलाया और कहा—“मेरे कहने से तुम एक दिन के लिए भैसों की हिसा बद कर दो तो मैं तुम्हे बहुत धन दूगा।” कसाई ने कहा—“धन लेकर मैं अपने नियम को नहीं तोड़ सकता।” राजा श्रेणिक बहुत नाराज हआ और उसने उसे एक जेल मे बद करवा दिया।

दूसरे दिन राजा श्रेणिक भगवान महावीर के पास गये और कहा—“भगवन् मैंने उस कसाई को भैसे मारने से रोक दिया।” यह सुनकर भगवान महावीर ने कहा—“महाराजा श्रेणिक, उस कसाई ने वैसे तो एक भी भैसा नहीं मारा किन्तु भावना से उसने 500 भैसे मार दिये और उसने 500 भैसे मारने का पाप कर लिया।” राजा वापस महलो में आया और कसाई से पूछा—“तुमने भैसे कैसे मारे? कसाई ने उत्तर दिया—मैंने अपने शरीर का मैल उतार कर उसकी भैसे की आकृति बनाकर नाखून को छूरी समझकर उसे काट दिया। इस तरह 500 बार करके 500 भैसे मारने का कार्य कर लिया।

हम चाहे एक भी जीव के शरीर को नहीं छुएँ, वह चाहे हमसे हजारों किलोमीटर दूर सुरक्षित और सुखपूर्वक बैठा रहे किन्तु हम अपने घर पर बैठे हुए ही विचारों द्वारा, कल्पना द्वारा या भावना द्वारा किसी मिट्टी के ढेले को या गोबर के टुकडे को या गूदे हुए आटे के टुकडे को या किसी कपडे को या कागज को या लकड़ी की गुड़िया बनाकर या किसी भी प्राणी को या वस्तु को जीवित प्राणी मानकर काट दे, मार दे, या जला दे तो यह भाव हिसा कहलाती है। भाव हिसा से सचमुच मे जीव तो एक भी नहीं मरता किन्तु मारने का पाप लग जाता है। “मैं दस आदमियों को मारूँगा” ऐसा विचार भाव हिसा है और इससे 10 आदमियों को मारने का पाप लग जाता है। ऐसे ही बड़े कामों की इच्छा करने वाले या बड़ी-बड़ी हिस्क योजनाएँ बनाने वाले भी चाहे कुछ न करे वे पाप के भागी तो बन ही जाते हैं। जो मनुष्य विचार करता है कि यदि मेरे पास एटम बम या अणु बम हो तो मैं शत्रु के नगरों को और शत्रु की सेना को मार दूगा, ऐसा विचार करने वाला किसी को नहीं मारता किन्तु भावना के कारण वह भी दुर्गति मे चला जाता है।

बाहुबलीजी और अहम् भाव

बाहुबलीजी ने दीक्षा ले ली किन्तु वे भगवान् आदिनाथ के पास गये क्योंकि उनके छोटे भाइयो ने उनसे पहले दीक्षा ली थी और दहोन से बाहुबलीजी को अपने छोटे भाइयो को जो दीक्षा में उनसे दूर नमस्कार करना पड़ता। बाहुबलीजी इस प्रकार एक वर्ष तक वन में रहे। वे तपस्या करते रहे किन्तु अहकार के कारण उनको केवलज्ञान नहीं हुआ। एक दिन उनके कानों से एक गीत सुनाई दिया-

वीरा मोरा गजथकी उतरो

गज चढ़्याँ केवल ना होसी रे।

बाधव गज थकी उतरो।

उन्होने आवाज पहचान ली। यह आवाज उनकी साध्यी वहिनों तथा सुन्दरी की थी। उन्होने विचार किया—“मैं तो जमीन पर खड़ा हूँ हूँ पर नहीं चढ़ा हुआ हूँ फिर मैं किस हाथी से नीचे उतरूँ।” फिर उन समझ में आया कि मैं अहकार रूपी हाथी पर चढ़ा हुआ हूँ। इसी अहकार के कारण इतनी लम्बी और कठोर एक वर्ष की तपस्या होने पर केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। उन्होने विचार किया कि अब मैं अहकार छोड़ूँगा और भगवान् ऋषभदेव के पास जाकर सभी सतों को दूर करूँगा। ज्योही उन्होने वदना करने को जाने के लिए पैर उठाया तो उन्हे केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। अहंकार से केवलज्ञान नहीं हो सकता केवलज्ञान विनय से प्राप्त होता है।

बच्चों की शिक्षा

प्राचीन काल में मदालसा नाम की एक महासती थी। उसने इस पर विवाह किया था कि मैं पुत्रों को जैसा चाहूँगी वैसा ही बनाऊँगी।

जब बच्चा सती मदालसा के गर्भ में रहता था तब वह सभी प्रवचन सुनती, धार्मिक बातों का चिन्तन-मनन करती। धार्मिक भजन गान् इसका सीधा प्रभाव गर्भ के बच्चे पर पड़ता। जब लड़का हो जाता तो दासी को नहीं सौपती किन्तु स्वयं ही उनकी पूरी देख-भाल करती। उन्होने झूला झुलाते हुए वैराग्य भरी लोरियों सुनाती। वह कहती—

सिद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरजनोऽसि।

संसार माया परिवर्जितोऽसि॥

इन गीतों का छोटे बच्चे के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ता कि वह

होकर साधु बन जाता। इस प्रकार उसके लड़के साधु बन गए। जब सातवा लड़का गर्भ में आया तो राजा ने कहा—“महारानी छह बच्चे तो साधु हो गए इसे तो राजा बनाओ नहीं तो राज्य कौन सँभालेगा।” तब उसने इस बच्चे को गर्भ से ही राजनीति और वीरता की बातें सिखाई। अत यह सातवा पुत्र पिता की तरह ही बड़ा प्रतापी, सुखी और प्रसिद्ध राजा हुआ।

अभिमन्यु भी जब वह माता के गर्भ में था तभी चक्रव्यूह भेदना सीख गया।

बच्चों की शिक्षा उनके बचपन से पहले ही शैशव काल के पहले ही और जन्म के पहले ही उनके माता-पिता की शिक्षा और सुस्कृति से दी जाती है।

पापी कौन धर्मी कौन

एक दिन धर्म की सभा में बहुत से आदमी बैठे थे। उस समय एक आदमी ने धर्म गुरु से पूछा—“गुरुदेव विलायत में रोबिन हुड नाम का एक डाकू हुआ था जो अमीरों को लूटता था तथा गरीबों को धन देता था। मैं भी ऊपर से साहूकार दिखाई देता हुआ व्यापार में अन्याय से, मिलावट से चोरी करके धनियों को लूटकर गरीबों की मदद करता हूँ और आपकी धर्म सभा में भी दान देता हूँ। मुझे बताने की कृपा करे कि मुझे धर्म अधिक हुआ या पाप ?

गुरुदेव ने उत्तर दिया—“धर्म और पाप कम या अधिक होना तो भगवान ही बता सकते हैं क्योंकि यह बात कुछ तो मनुष्य की भावनाओं पर और कुछ सारी परिस्थितियों पर निर्भर करती है किन्तु आप यह बताये कि एक मनुष्य मल-मूत्र के नाले मे बार-बार हाथ डालता है और बार-बार उन्हे धोता है तो उसे आप अच्छा कहेंगे या बुरा। यदि धन कमाकर और उसे दान देने मे अधिक धर्म होता तो लोग धन देने वाले से साधु को ज्यादा श्रेष्ठ क्यों समझते। दान देने वाले को प्रथम तो यह पता नहीं चलता कि दान लेने वाला सच्चा गरीब है या दिखावटी गरीब है। दूसरा यह भी पता नहीं चलता कि वह धन का उपयोग किस रूप मे करेगा। यह तो साफ है कि लूटना तो पाप है और महापाप है। भावना शुद्ध है और क्रिया गलत है तो कायिक पाप तो होगा ही। मन, वचन और काया तीनों शुद्ध हैं तो धर्म होगा और अगर इन तीनों मे से कुछ भी गलत है तो पाप तो लगेगा ही। अत वकील, डॉक्टर, अध्यापक आदि कोई भी अगर हो सके तो बिना फीस लिए मदद करेगा तो उसे बहुत धर्म होगा।

तब एक दूसरा आदमी खड़ा हुआ और उसने कहा—‘गुरुदेवः ३२
 चिल्ली या जीर्ण सेठ की तरह हमेशा नवीन-नवीन योजनाएं दिन में द
 बार बनाता हूँ लेकिन मैं सादगी से ही रहता हूँ। क्या मुझे भी पाप लगेगा?
 गुरुदेव ने उत्तर दिया—‘तुम सादगी से रहो या न रहो किन्तु योजना जन
 के कारण तुम कालसौरिक कसाई की तरह या तन्दुल मत्त्य दी, तः
 सातवीं नरक में पहुँचाने वाले भारी पाप कर्मों का धन कर लेते हो। दि.
 जीर्ण सेठ की तरह शुभ भावनाओं का सचय करने से मोक्ष मार्ग के पार
 भी बन सकते हो क्योंकि शुभ भावना से मोक्ष और अशुभ भावना से नर
 मिलता है। पाप और पुण्य भावना पर निर्भर है।’

तब एक तीसरे आदमी ने कहा—‘गुरुदेव भैने सुना है कि पाप व
 केवल भावनाओं से ही लगता है। मैं छत पर खड़ा था। ऊपर से ईट नीं
 फेक रहा था। एक ईट किसी रास्ते में चलते हुए बच्चे के ऊपर गिरी औं
 वह मर गया। बताइये क्या मुझे भी पाप लगेगा ?

गुरुदेव ने उत्तर दिया—‘यह बताओ कि तुम रास्ते रा जाओगे जो
 एक आदमी बंदूक चलाना सीख रहा हो, यदि उसकी गोली से तुम्हारा
 लग गयी तो तुम उसे पापी मानोगे या नहीं। सावधानी न रखने से, प्रभा
 से, अयतना से पाप लगता है।

तब एक चौथे आदमी ने पूछा—“गुरुदेव मे किसी का मुरा तो न
 करता लेकिन जब किसी का बुरा होता है तो मुझे खुशी होती है।

गुरुदेव ने जवाब दिया यह दुर्भावना है, यह बहुत बड़ा पाप है। ऐसे
 आदमी नरकों में जाता है और सातवीं नरक तक जाता है। अच्छे काम व
 अच्छा समझना और उससे खुश होने वाला धर्मात्मा होता है और युरे छो
 को अच्छा समझने वाला या उससे खुश होने वाला पापी होता है।

सारे धर्म का सार यही है कि मुनि गजसुकुमाल की तरह व
 अर्जुनमाली की तरह या मुनि दृढ़ प्रहारी की तरह किसी पर क्रोध मत व
 और अपने शरीर के ऊपर आये हुए कप्टों को दुख मत मानो आर गगड़ा
 मत्र या सिद्धों का ध्यान और सिद्धांत का चितन यानी ज्ञान का चितन दर
 से शुद्ध भावना आने से कर्म कटते हैं।

संसार की चार घाटियाँ

क्रोध

(1) (2)

परिवार मोह

(3) (4) (5) (6)

अहकार

(7)

इच्छा

(8)

1 मुझे दुख देने की मूल भौतिक शक्ति केवल मेरे ही अशुभ कर्मों में है। निमित्त शत्रु पर क्रोध क्यों किया जाय।

2 परिवार के किसी सदस्य के साथ मेरे पूर्व जन्म के वैर के कारण यदि मेरे अशुभ कर्म उससे मुझे दुख दिलावे या जहर पिलावे तो भी उस निमित्त पर मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए। जैसे कि मुनि उदाई ने, भक्त मीराबाई ने, कृष्णाकुमारी ने जहर पिलाने वालों पर भी क्रोध नहीं किया।

3 परिवार का कोई भी सदस्य मेरे अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में और दुख को सुख में नहीं बदल सकता। परिवार की शक्ति सीमित है।

4 मुझे मेरे शुभ कर्मों से परिवार के द्वारा जो सुख मिलता है उसको अधिक बढ़ाने की शक्ति परिवार में नहीं है।

5 अन्तराय कर्म के उदय के समय मेरे अन्तराय कर्म को तोड़कर मुझे सुख देने की शक्ति परिवार में नहीं है।

6 मैं परिवार के अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में नहीं बदल सकता अत मेरा परिवार के लिए चिता, मोह करना व्यर्थ है। भौतिक सुख दुख देने की भौतिक शक्ति केवल प्राणी के स्वय के कर्मों में ही है। परिवार तो केवल निमित्त ही बनता है।

7 मनुष्य के शुभ कर्मोदय के समय कम बुद्धि वाले को भी सफलता मिल जाती है किन्तु अशुभ कर्मोदय के समय, विनाश काल के समय बड़े-बड़े बुद्धिमान मनुष्यों को स्वय की बुद्धि भी उनका साथ नहीं देती है। बुद्धि का अहकार करना भूल है। अपनी बुद्धि अहकार छोड़कर विनयपूर्वक बड़ों से राय लेना ही बुद्धिमानी है।

8 प्रथम इच्छा शोधन और अन्त में इच्छा निरोध यही मोक्ष का मार्ग है।

अशुभ कर्म से है दुख आया।
क्रोध न कर, कर कर्म सफाया ॥
कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता ॥
चिता मोह मैं व्यर्थ ही करता ॥
भौतिक शक्ति है, निज कर्मों में ॥
सुख देने की शुभ कर्मों में ॥
दुख देने की पाप कर्म में ॥
बुद्धि वैसी ही बन जाती ॥
जैसी कर्मों की गति चाहती ॥

धारिणी रानी की परिवार सेवा

महारानी धारिणी ने अपने गर्भ की सेवा मोह भाव से न दूरः अनुकम्पा भाव से की थी। इसके कारण मोह से होने वाले पाप से यह दूरः रही और उसे अनुकम्पा भाव से धर्म लाभ हुआ।

1. उसने अपने गर्भस्थ बालक के बारे में कभी यह ख्याल नहीं किया कि यह मेरी सतान है किन्तु वह मोह भाव से दूर रहकर यही सोचती है कि मेरे गर्भ में जो संतान है वह एक आत्मा है, स्वतत्र आत्मा है, मुझे अलग है। मुझे उसे 'मेरा' नहीं समझ कर केवल आत्मा समझ कर उत्तरः पोषण करना चाहिए। इस प्रकार वह ममत्व से दूर रही।

2. उसमे स्वार्थभाव नहीं था, उसने कभी यह विचार नहीं किया है कि यह बड़ा होकर मेरी सेवा करेगा, मुझे सुख देगा। वह सिर्फ यही सोचती है कि पूर्व जन्म के कर्मों के संबंध से आत्मा मेरे निकट आयी है, उत्तरः सेवा नहीं करना महापाप और उसकी सम्यक् सेवा करना मेरा धर्म है।

3 उसके मन मे हमेशा अनुकम्पा भाव रहता था कि मेरे सोने-जागने उठने-बैठने, चलने-फिरने और खाने-पीने से या किसी भी शारीरिक क्रिया से इस आत्मा को दुख न पहुँचे। यह अनुकम्पा का प्रथम चरण है।

4 वह यह ध्यान रखती थी कि इस आत्मा के शारीरिक पोषण मे कभी नहीं आवे। इसका स्वस्थ जीवन-निर्माण होता रहे, यह अनुकम्पा का दूसरा चरण है। वह अपने चितन-मनन मे, प्रवचन सुनने मे, वार्तालाप मे वा ध्यान रखती थी कि इस आत्मा को ध्यान की प्राप्ति हो, आत्म ज्ञान का हो हो और आत्मोन्नति हो। यह अनुकम्पा का तीसरा चरण है। अपने गर्भ दृष्टि आत्मा के हित मे निमित्त बनने के लिए उसने अपनी सुख-सुविधा का त्वरः कर दिया। जिस प्रकार कि राजा मेघरथ कवूतर की रक्षा के लिए आदेह को त्यागने के लिए तैयार हो गये थे, सेठ सुदर्शन ने रानी अभया दृष्टि अनुकम्पा करके मौन रखा और सूली पर चढ़ने को तैयार हो गए, और मैतार्य ने सोने के यव (जौ) चुनने वाले पक्षी की अनुकम्पा के लिए रखकर अपने प्राण त्याग दिए यही अनुकम्पा का चौथा और उत्कृष्ट चरण है।

प्राणी जब तक परिवार मे रहता है तब तक उसे मोह से याता अनुकम्पा भाव से परिवार की सम्यक् सेवा करना उसका परम धर्म है।

सत्यवादी हरिशचन्द्र

एक बार स्वर्ग लोक की अप्सराएँ पृथ्वी पर आकर मुनि विश्वामित्र के आश्रम में खेलने लगी, जिससे उनके आश्रम की वाटिका में फूलों के पेड़ और लताएँ क्षत-विक्षित हो गयी। जब मुनि विश्वामित्र वहाँ आए तो उन्हे बहुत क्रोध आया और उन्होने अप्सराओं को तप बल से लताओं से बौध दिया। इस पर अप्सराएँ चिल्लाने लगी—“हमे बचाओ, हमे बचाओ।” उसी समय सयोग से महाराज हरिशचन्द्र का उधर आना हो गया। जब उन्होने यह पुकार सुनी तो उन्होने वहाँ आकर अपने सत्यबल की शक्ति से अप्सराओं को बधन मुक्त कर दिया। तपस्वी में देवताओं से अधिक शक्ति होती है और तपस्वी से भी अधिक शक्ति सत्यवादी में होती है। सत्य महातप है, महाव्रत है, इससे मनुष्य को महाशक्ति प्राप्त होती है। सत्यवादी को देवता भी नमस्कार और प्यार करते हैं और उस प्राणी के प्रार्थना किए बिना भी उसकी सहायता करते हैं।

सच बोलूगा, सच बोलूगा ।
निश्चय ही मैं सत्य बोलूगा ॥
सुख आवे या दुख आवे मैं ।
झूठ कभी नहीं बोलूगा ॥

दुर्भावना से बचिए

बड़े लोगों की बात अलग है किन्तु साधारण लोगों में अशुभ कर्म बधन का एक बड़ा कारण है दुर्भावना का होना। दुर्भावना में भी दो मुख्य बातें हैं। प्रथम दूसरों के पतन पर या दूसरों के दुखी होने पर हमारे मन में हल्की-सी खुशी का होना। दूसरी बात है दूसरों को दुख पहुँचाने की भावना। इन दो बातों को मिटाने का एक ही उपाय है कि “सबका भला हो, सबका भला हो” हम इस भावना का प्रतिदिन काफी समय तक चार छ महीनों तक स्वाध्याय करे अर्थात् इसका जप चितन-मनन करे।

इस उपाय से प्राणी बहुत से अशुभ कर्म बधन से बच सकेगा। सबका भला हो, ‘सबका भला हो’ इसके स्वाध्याय से दुर्भावना आनी बद हो जाएगी।

स्वाध्याय-संग्रह मोक्ष मार्ग

कषाय मुक्ति : पॉचवा भाग
स्वाध्याय के सूत्र

दुर्भावना

हमारे विचारो से सहमत नही होने वाले, हमारी इच्छा के अनुसार नही चलने वाले, हमारा विरोध और भारी अहित करने वाले, वे चाहे शत्रु हो या हमारे परिवार के सदस्य ही क्यो न हो, उनके प्रति कभी-कभी हमारे मन मे दुर्भावना पैदा होती है। दुर्भावना मे इतनी बड़ी शक्ति है कि उससे सातवी नरक तक जाना सभव हो सकता है। इस दुर्भावना को हमेशा के लिए अपने मन से दूर करने के लिये सद्भावना भाने का अभ्यास (साधना) करना आवश्यक है।

(मान लीजिए मूलशकर के प्रति हमारे मन मे दुर्भावना पैदा होती है। अत हमे इस प्रकार की भावना भानी चाहिए—1 मूलशकर का भला हो, भला हो, भला हो, 2 मूलशकर स्वस्थ हो, सुखी हो, 3 उसे आत्मबोध हो, उसके दिल मे मेरे प्रति व दूसरो के प्रति प्रेमभाव हो। उसका जीवन समतामय हो)।

इसमे से जो भावना भानी आवश्यक हो, उसका अभ्यास या स्वाध्याय आठ-दस महीने प्रतिदिन कई बार दोहराया जाए।

(यह स्वाध्याय एक तरह से इच्छा निरोध तप का साधन है और इससे मोक्ष की प्राप्ति होना भी सभव है। सभव है आपके इस स्वाध्याय से उसमे भी सद्भावना पैदा हो जाए और वह आपका मित्र बन जाए।)

शत्रु नहीं उपकारी मानो

जो प्राणी आपके दुख मे निमित्त बने, उसे अपना शत्रु मानना भूल है क्योकि आपने इस जन्म मे या किसी पूर्वजन्म मे जान-वृङ्गकर या अनजान मे उसको या किसी अन्य प्राणी को अवश्य ही दुख दिया होगा, तभी तो आपको दुख मिला है और शायद जिस प्राणी को आप शत्रु मान रहे हैं, उस प्राणी को उसकी इच्छा न रहते हुए भी दूसरे के बदले मे निमित्त

बनना पड़ा हो। जैसे—भगवान् महावीर को सगमदेव ने उपसर्ग (कष्ट) दिए थे। तीर्थकर महावीर ने इसका बदला नहीं लिया तो सगमदेव को दड़ देने के लिए इन्द्रदेव को निमित्त बनना पड़ा। इसी प्रकार जिससे आपको दुख मिल रहा हो, उस व्यक्ति को शायद दूसरे के बदले में निमित्त बनना पड़ा हो। इसलिए दड़ में निमित्त बनने वाले को शत्रु मानना भूल है।

निमित्त को उपकारी मानने से प्रथम तो निमित्त पर क्रोध नहीं आता, रौद्रध्यान नहीं बनता, बदला लेने की दुर्भाविना नहीं बनती, वैर नहीं बधता और अशुभ कर्म नहीं बधते। दूसरे, उपकारी मानने से दुख नहीं होता, आर्तध्यान नहीं बनता, नये अशुभ कर्म नहीं बधते। तीसरे, समताभावी बनने में बहुत सहायता मिलती है, जिससे बहुत से अशुभ कर्म कट जाते हैं।

निमित्त द्वारा दुख मिलने से बहुत से लोगों को अप्रत्यक्ष रूप से कभी-कभी लाभ भी होता है। जैसे—1 भीम को कौरवों द्वारा जहर पिलाकर बेहोशी की दशा में नदी में बहा दिया गया। भीम को खिलाया गया जहर उसको सर्पों के काटने से दूर हो गया और उसे वहाँ वल्लरी का रस पीने को मिला जिससे उसमे हजार हाथियों का बल आ गया। 2 प्रद्युम्नकुमार का उसके जन्म होते ही एक शत्रुदेव द्वारा हरण कर लिया गया। उसे पहाड़ों में एक पत्थर के नीचे दबाकर छोड़ दिया गया। किन्तु पुण्यशाली प्रद्युम्नकुमार पर एक विद्याधर की दृष्टि पड़ी। वह उन्हे अपने साथ ले गया और वहाँ पर प्रद्युम्नकुमार को अनेक विद्याओं की प्राप्ति हुई। राजा नल को जुए में राज्य हारने के बाद वन में भटकते हुए एक तक्षक द्वारा काट लिया गया जिससे उसके भाई कुबेर द्वारा उसके पकड़े जाने और मारे जाने का खतरा दूर हो गया। कुछ वर्षों के बाद शुभ कर्मों के उदय से उसे राज्य की प्राप्ति हो गई।

साराश या स्वाध्याय सूत्र-कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। कभी-कभी शत्रु द्वारा दिया गया दुख भी मनुष्य की आत्मा का बहुत हित कर देता है। अत निमित्त को शत्रु नहीं मानकर अपना मित्र समझना चाहिए।

क्रोध (शत्रु भावना)

1 बुरा अपने अशुभ कर्मों से होता है। निमित्त को शत्रु मानकर उस पर क्रोध करना भविष्य के लिए शत्रुता की परम्परा को चालू रखने के सिवाय और कुछ नहीं है। 2 यदि हमारे अशुभ कर्मों का उदय हो तो शत्रु या किसी प्राणी के निमित्त बने बिना भी हमारा बुरा हो सकता है।

जैसे—सड़क पर पैर फिसल कर हम गिर सकते हैं और हमारा सिर सकता है। 3 हमारा बुरा होने पर हमें उस दुखानुभूति को दूर करने प्रयास करना चाहिए, जो दुखानुभूति शीर्षक में दिया गया है। 4 दुर्निमित बनने वाले को भी अपना उपकारी, अपने कर्म-रोग की दवा व वाला डॉक्टर मानकर 'उसका भला हो, उसका भला हो' ऐसी सद्मा भानी चाहिए। इससे दुख और क्रोध दोनों ही से बचा जा सके 5 प्रतिदिन नियत समय पर कुछ समय के लिए क्रोध छोड़ने का नियम बनाये। यदि किसी दिन यह नियम भग हो जाए तो प्रायश्चित्त कर चाहिए।

अहं भावना

1 अहकार से मनुष्य में हठ, दूसरों के प्रति धृणा, द्वेष दुर्भाग्य शत्रुता और क्रोध पैदा होता है। 2 अहकारी मनुष्य अपनी प्रशसा सुन दूसरों से ठगा जाता है। जैसे—कौआ लोमड़ी से ठगा गया था। 3 अंकों बड़ा दिखाने के लिए व्यर्थ के दिखावे में वह अपना धन व अपनी शांति और समय को व्यर्थ खर्च करता है और उसका पतन होता रहता। 4 अपने गुणों को देखने से, अपनी बड़ाई सुनने से, आदर-सत्कार पाने और दूसरों के अवगुण देखने से मनुष्य में अहकार पैदा होता है। 5 अकाम करने वाले को अपनी प्रशसा या अहभाव की भूख नहीं रखनी चाहिए। 6 अपनी सफलता का श्रेय दूसरों को, अपने से बड़े आदमियों को अपने मित्रों को या अपने अधीन काम करने वालों को देने से अहकार नहीं होता। 7. अहकार से अशुभ कर्मों का बध और आत्मा का पतन होता है, दुख की प्राप्ति होती है और विनय से सुख, स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है। 8 अच्छा काम या धर्म करते समय असावधानी से यदि अहकार जाए तो उस अहभाव के लिए तुरन्त ही पश्चात्ताप कर लेना चाहिए। 9 तब तक पश्चात्ताप नहीं किया जाएगा, तब तक उस धर्म कार्य का अच्छा प्रभाव नहीं मिलेगा। जैसे—बाहुबलीजी को जब तक उनका अहकार नहीं होता है तब तक घोर तपस्या का फल मिलना भी रुका रहा। 10 कोई मनुष्य किंदूसरे प्राणी का उसके अशुभ कर्मों के बिना बुरा नहीं कर सकता। 11 किसी कार्य का अहंकार करना भूल है। 12 मनुष्य अपने ही निकाचित अबहुत से कर्मों को काट नहीं सकता है, उन्हें भोगना ही पड़ता है।

अहकार करना भूल है। 11 मनुष्य जब बहुत वृद्ध हो जाता है और उसके हाथ पैर काम नहीं देते तब उसे अनुभव होता है कि अहकार करना भूल है। 12 सारी शक्ति कर्मों के हाथ में है। अतः अपने शरीर का, धन का, परिवार का या बुद्धि का अहकार करना भूल है। 13 अशुभ कर्मोदय के समय बुद्धि काम ही नहीं देती, किन्तु वह कर्मों के अनुसार उल्टा काम करा देती है। इसलिए अपनी बुद्धि का अहकार करना बड़ी भूल है।

कपट (माया)

1 किसी भी काम में सफलता शुभ कर्मों से मिलती है। कपट करने वाले बहुत से आदमी अपने कामों में असफल रहते हैं। 2 यदि कपट से सुख मिलता तो प्राय सभी लोग दुख से बच जाते। 3 कपट अशुभ कर्म है। कपट के साथ किया हुआ अच्छा काम भी बुरा बन जाता है। 4 वह कपट का भेद खुल जाने के डर से हमेशा भयभीत और दुखी रहता है। 5 कपट करने वाले का कोई भी विश्वास नहीं करता है। सभी लोगों से उसका सम्बन्ध टूट जाता है और उसका आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पतन हो जाता है। 6 सत्य आचरण करने वाले की देवता भी सहायता करते हैं।

धन लोभ से बचिए

गृहस्थ को अपने और अपने परिवार के जीवन-निर्वाह के लिए धन तो कमाना ही पड़ता है। किन्तु यदि वह धन कमाते हुए भी अपनी विचारधारा को सही मार्ग पर चलाए और अपने विचारों में हर्ष-विषाद न होने दे तो वह धन के लोभ से होने वाले अशुभ कर्मों के बध से और अशुभ कर्मों के बध से मिलने वाले दुख से बच सकता है। जैसे—एक सेठजी को उनके मुनीमजी ने कहा कि जो एक लाख रुपये का माल गोदाम में रखा गया था उसका भाव घट गया है और बहुत हानि हो गई है। यह सुनने पर भी सेठजी के चेहरे पर उदासी नहीं आई और उन्होंने कहा—“जैसा योग था, वैसा हो गया। चिता करने की क्या जरूरत है?” दूसरे दिन ही बाहर भेजे हुए माल के बाबत मुनीमजी ने कहा कि इसमें दो लाख का लाभ हुआ है। यह सुनकर सेठजी के मन में कुछ भी हर्ष नहीं हुआ और उन्होंने मुनीमजी से कहा कि लाभ और हानि तो कर्मों का खेल है। इसमें हर्ष और विषाद करने की क्या जरूरत है? इस प्रकार की भावना वाले लोग ही अशुभ कर्मों के बध और अशुभ कर्मों से मिलने वाले दुख से बच सकते हैं।

धन के लोभ को या किसी भी पदार्थ के लोभ को दूर करने का सदसे बढ़िया उपाय यही है कि उन बातों का या उन उदाहरणों का बार-बार चिंतन-मनन किया जाए, जिससे धन की या उस पदार्थ की शक्ति में श्रद्धा दूर हो जाए और उसके विपरीत भाव में श्रद्धा बढ़ जाए।

धन से मनुष्यों के सब दुख दूर नहीं होते। धन की शक्ति बहुत ही सीमित है। कोई नेत्रहीन है, कोई गूँगा है, जन्म से ही बोलता नहीं, कोई बहरा है, किसी के मृगालोढ़ा की तरह हाथ-पैर नहीं है, कोई बीस वर्ष का है किन्तु वह पगु है और अभी तक चल नहीं सकता। क्या ये कमियों धन से पूरी की जा सकती है? कोई गलित-कुछ से दुख पा रहा है, किसी का आधा अग पक्षाघात (लकवा) से पीड़ित है, किसी को कैसर हो गया है, - किसी का दिमाग विक्षिप्त (आधा पागल) है। क्या ये असाध्य रोग धन से दूर हो सकते हैं?

धन में दूसरा अवगुण यह है कि धन से मिलने वाले सुख के बदले में नये दुख आते हैं। धन से भौतिक सुख ही मिल सकता है और भौतिक सुख के विषय में 'दशवैकालिक सूत्र' में बताया गया है कि 'खण्मेत् सोकखा, बहुकाल दुकखा' अर्थात् क्षण भर के थोड़े से भौतिक सुख के बदले में बहुत काल तक भारी दुख सहना पड़ता है।

मनुष्य धन के लिए महाआरम्भ, महापरिग्रह, महाहिसा और कभी-कभी महाघृणित कार्य करने से नहीं चूकता। किन्तु धन का आना या जाना मनुष्य के हाथ की बात नहीं है। यदि शुभ कर्मों का उदय हो और अन्तराय कर्म की बाधा न हो तो लोभ व अन्याय के बिना भी धन की वर्षा होने लगती है और यदि अशुभ कर्मों का उदय हो तो पुरुषार्थ करते हुए भी धन चला जाता है। रोकने से रुक नहीं सकता। धन का आना या जाना और सुख-दुख का आना या जाना तो मनुष्य के शुभ व अशुभ कर्मों का खेल है। इसलिए धनवान् बनने की इच्छा या धन का लोभ और मोह छोड़कर नीति और धर्मपूर्वक जो धन आवे, उसी से अपना और अपने परिवार का जीवन-निर्वाह करना ही मानव का धर्म है।

धन के लोभ में महाआरम्भ महापरिग्रह और महाहिसा के कार्यों का जब-जब और जितनी-जितनी बार चिंतन किया जाएगा, तब-तब और उतनी-उतनी बार ही कार्य किए बिना भी केवल चिंतन से ही नवीन अशुभ कर्मों का बध होगा।

भगवान् महावीर ने मोक्ष मार्ग में सहायक अपने पच महाव्रतों में अपरिग्रह को प्रमुख स्थान दिया है। इसलिए पच महाव्रतधारी साधु तो धन को छूते भी नहीं, किन्तु गृहस्थ का काम धन के बिना नहीं चलता। इसलिए उसके लिए परिग्रह-परिमाण-व्रत का उपदेश दिया गया है जिसका अर्थ है कि श्रावक अपने धन की, जमीन की, वस्त्रों की और खाने-पीने की चीजों की सीमा निर्धारित कर ले, जिससे कि उसका लोभ बढ़ने न पाए।

श्रावक को धन-सग्रह का लोभ छोड़कर जो कुछ उसके पास है, उसमे से दूसरों के जीवन-निर्वाह के लिए, ज्ञान-प्राप्ति के लिए और आत्म-सिद्धि के लिए दान देकर दूसरों को सहयोग देना चाहिए। यही है सच्चे सुख की प्राप्ति का मार्ग।

स्वाध्याय सूत्र-1 धन से मनुष्य के सब दुख दूर नहीं होते। 2 धन से मिलने वाले थोड़े सुख के बदले में बहुत समय तक दुख भोगना पड़ता है। 3 धन का लोभ छोड़ना और सतोष रखना ही मोक्ष का मार्ग है।

धन का लोभ

1 अनेक धनवान व्यक्ति घर मे अपार धन होते हुए भी बहुत दुखी देखे जाते हैं। सुख धन से नहीं मिलता किन्तु सुख मिलता है शुभ कर्म से। 2 घर मे बहुत धन होते हुए भी यदि परिवार मे कोई रोगी हो, विकलाग हो, किसी का दिमाग खराब हो गया हो, कोई झगड़ालू हो, दुर्व्यसनी हो, कुछ आलसी हो तो सुख कहाँ से मिलेगा। 3 धन का आना या जाना मनुष्य के हाथ मे नहीं है, यह तो कर्माधीन है। जो भी न्यायपूर्वक मिले, उसी मे सतोष करके धन का सदुपयोग दान मे और दूसरों की सम्यक् सेवा मे करना चाहिए। 4 यदि पुण्य का उदय हो तो गरीब मजदूर धन के बिना भी सुखी रहता है। साधुओं का काम तो बिना धन के ही चलता है। सुख धन या धन के लोभ से नहीं मिलता, सुख मिलता है—सतोष और त्याग से।

थोड़ा सुख बहुत दुख

आज हम लोग इस शरीर को ही आत्मा मानकर इस शरीर को सुख देने मे लगे हुए हैं, किन्तु यह हमारी भूल है। एक तो, हमारा शरीर अलग है और हमारी आत्मा अलग है और दूसरे, यह भौतिक शारीरिक सुख सच्चा सुख नहीं है। यह सुखाभास है। और तीसरे, इस थोड़े से भौतिक सुख के बदले मे उसी समय या कुछ समय बाद बहुत दुख भोगना पड़ता है। अगर

हम दूसरों के जीवन या सुख या धन का हक छीन ले तो उस अशुभ कर्म और पाप के बदले में हमारे अशुभ कर्मों का बध होता है और उससे हमें बहुत समय तक दुख भोगना पड़ता है।

जैन आगम “दशवैकालिक” कहते हैं ‘खण्मेत् सोक्खा, बहुकाल दुक्खा’ अर्थात् थोड़े समय के थोड़े से सुख के बदले में बहुत समय तक बड़ा दुख भोगना पड़ता है। इससे हम छूट नहीं सकते।

भौतिक शारीरिक सुख के पाने से, उसके लिए धन पाने से, पुराने सुखों को याद करने से, उनकी कल्पना करने से, उनकी बाबत विचार करने से, उनकी इच्छा करने से और शेष चिल्ली की तरह मैं ऐसा करूँगा, वैसा करूँगा इस प्रकार के मन के मोदक (लड्डू) खाने से चाहे काम कुछ भी न करे किन्तु केवल विचार करने से ही मन में खुशी होती है। यह सुखानुभूति है। कभी-कभी दूसरों का पतन होने से, दूसरों के सकट में फसने से या दूसरों को दुखों में डालने के विचार से सुखानुभूति होती है। इसमें अशुभ कर्मों का बध होता है और प्रत्येक सुखानुभूति के लिए हमें दुख उठाना पड़ता है।

सारांश—प्रत्येक थोड़े से भौतिक सुख के लिए भी बहुत काल तक दुख उठाना पड़ता है। सुख में रस नहीं लेने से नये कर्मों के बध से घर सकते हैं।

शरीर-निर्वाह की दृष्टि से आवश्यक साधनों का सहारा लेना पड़ता है। परन्तु उसमें जितना अधिक विवेक-सावधानी रहेगी, उतने ही कम कर्मों का बधन होगा।

सुखानुभूति

1 अपने शरीर से, धन से और अपने मन के विचारों से मिलने वाले भौतिक-शारीरिक-इन्द्रिय सुख को सुखानुभूति कहते हैं। 2 प्रत्येक थोड़े से भौतिक सुख के बदले में बहुत काल तक दुख भोगना पड़ता है। 3 सुख भोगों में छूबा रहने वाला मनुष्य ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की तरह सातवी नरक में जाता है। 4 सुख-भोगों में नीरसता रखने वाले (रस नहीं लेने वाले) जग्म स्वामी की तरह मोक्ष में जाते हैं। 5. ये सुख-भोग उन गोलियों के समान हैं जो ऊपर से चीनी की चाशनी लगने के कारण भीठी और स्वादिष्ट लगती है किन्तु जिनके अन्दर हलाहल (जहर) भरा है और वे खाने वाले का प्राणात कर देती हैं। 6 ये सुन्दर और सुखद सवारियाँ हैं जो सवार को

नहीं सभलने से उसे नरक में ले जाती है। 7 सुख-भोगों के समय यह विचारना चाहिए कि “खेद है कि मेरे कर्म बध रहे हैं, मेरे कर्म बध रहे हैं।” इस विचार से सुख की आसक्ति कम हो जाएगी।

दुःखानुभूति

1 सुख-भोगो मे बाधा पड़ने से या उनके लिए धन नही मिलने से या रोगो से घिर जाने पर या अप्रिय घटना घट जाने पर या उपसर्गो के आने पर मनुष्य को दुखानुभूति होती है। इससे अशुभ कर्मों का बध होता है जो दुख का कारण बनता है। 2 अपने पति के मर जाने पर और इससे अपने सुख-भोगो मे बाधा पड़ने पर चक्रवर्ती की पठरानी छ मास तक दुख और विलाप करके छठे नरक मे जाती है। 3 दुखानुभूति से बचने वाले और दुख को कर्मों की निर्जरा मे सहायक समझकर समता रखने वाले समता से अपने कर्म काटकर मुनि गजसुकुमाल, मुनि उदाई की भाति मोक्ष मे जाते हैं। 4 दुख मे दुखी होने और रोने से जो नवीन अशुभ कर्म बधते हैं, उनके बदले मे उसे पुन दुख मिलता है। 5 दुख के समय यह विचारधारा दुख को कम करने मे सहायक होगी—“यह दुख, दुख नही है। यह मेरे कर्मों का फल है। यह मेरे कर्मों की निर्जरा है। मुझे हिम्मत रखनी चाहिए, मुझे समता रखनी चाहिए। इससे मेरे कर्म कटेगे। आज मेरा अहोभाग्य है कि मेरे कर्म कट रहे हैं और मै मोक्ष के नजदीक पहुँच रहा हूँ।

३८४

जिन कामों के नहीं करने से अपना और दूसरों का आत्म-उत्थान रुक जाए, उसे कर्तव्य या आत्म-धर्म समझना चाहिए। जैसे—दान, तप या स्वाध्याय। इनका करना कर्तव्य है।

जिन कामों के नहीं करने से अपना और दूसरों का जीवन-निर्वाह रुक जाए, उसे आवश्यकता या अनिवार्य कार्य समझना चाहिए। जैसे—भूख में सादे भोजन के लिए मन का चलना, शीत-ताप और वर्षा से बचने के लिए आश्रय की डुच्छा।

जिस वस्तु या काम के किए बिना जीवन-निर्वाह या आत्म-उत्थान में बाधा नहीं पहुँचे किन्तु जिससे भौतिक सुखानुभूति मिलती हो, उस वस्तु या काम के लिए मन का चलना इच्छा है। जैसे सादे भोजन के स्थान पर बढ़िया स्वादिष्ट पकवानों की इच्छा करना, साधारण आश्रय की जगह

बड़े-बड़े महलों या वातानुकूलित कमरों की इच्छा करना, थोड़ी दूर जाने के लिए भी पैदल न चलकर सवारियों की इच्छा करना।

इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं। उनका अत नहीं आता। यह याद रखने की बात है कि 1 शुभ कर्मादय के समय सुख की इच्छा के दिना भी सुख की वर्षा होती है। 2 अशुभ कर्मादय के समय सुख की इच्छा करने से भी सुख नहीं मिलता। 3 महाआरम्भ, महापरिग्रह और महाहिसा के केवल विचारों से, केवल इच्छाओं से और केवल योजनाओं के बनाने से ही कुछ कार्य किए बिना भी अशुभ कर्मों का बध होता है और प्राणी सातवे नरक तक पहुँच सकता है। 4 अशुभ इच्छाओं से और कामों से बचना इच्छा निरोध, तप और मोक्ष का मार्ग है। 5 यदि किसी अशुभ बात की इच्छा दस बार की जावेगी तो दस बार ही कुछ काम किए बिना भी अशुभ कर्मों का बध होगा और प्रत्येक के बदले में दुख भोगना पड़ेगा। 6 समता, सादगी सत्याचरण, निर्लोभ और सतोष ये इच्छा शोधन और इच्छा निरोध के कार्य हैं और आत्मा को ऊपर उठाते हैं। 7 सुख भोगों की इच्छा दुख और नरक का मार्ग है और इनसे बचना सुख और स्वर्ग का मार्ग है।

परिवार नाथ नहीं है साथ नहीं है

गृहस्थ भी यदि कषाय छोड़े और सही मार्ग पर चलें तो उन्हें भी परिवार में रहते हुए और परिवार की सम्यक् सेवा करते हुए कूर्मा पुत्र केवली की तरह गृहस्थ दशा में भी केवलज्ञान प्राप्त हो सकता है। जेन आगम में 'गृहस्थ सिद्धा' शब्द आया है। उसका अर्थ है कि गृहस्थ दशा में रहते हुए भी मनुष्य सिद्ध बन सकता है और यह तभी समव है जबकि उसका मोह पूर्णतया दूर हो जावे और वह परिवार की सम्यक् सेवा करता रहे। परिवार में मोह का होना या परिवार-मोह का टूटना मनुष्य के विचारों पर निर्भर करता है। मनुष्य अपने विचारों को सुधारकर परिवार में रहता हुआ भी अपने विचारों के कारण परिवार-मोह से बच सकता है। किन्तु यदि विचार न सुधारे तो परिवार को छोड़ने के बाद भी परिवार के मोह में फसा रह सकता है। अत इस सबध में उसे अपना दृष्टिकोण सुधारना पड़ेगा और इसके लिए कर्मों की शक्ति को और कर्मों की व्यवस्था को अच्छी तरह समझना जरूरी है। जिन-जिन प्राणियों ने अपने पूर्व जन्मों में अच्छे या दुरं जो-जो जैसे-जैसे काम किए हैं उनको वैसे-वैसे अच्छे या दुरं कर्मों के

अनुसार अच्छे या बुरे फल देने की व्यवस्था उनके कर्मानुसार होती है। क्योंकि ये फल केवल भौतिक शरीर के माध्यम से ही भोगे जा सकते हैं, इसलिए उन-उन प्राणियों को फल भोगने के लिए देव या मनुष्य या नारकी पशु या पक्षी की, जैसी शरीर की आवश्यकता होती है, वैसा ही शरीर उन्हे कर्मानुसार मिलता है और किस-किस प्राणी को उस-उस शरीर में कितने-कितने समय तक कब से कब तक रहना है, यह भी उनके कर्मों पर निर्भर है। इसके साथ-साथ किस-किस प्राणी को यानी उपादान को, किस-किस प्राणी से अर्थात् निमित्त से कैसे-कैसे और कितना-कितना सुख-दुख मिलना है, इस व्यवस्था में भी उनके कर्मों की प्रधानता होती है। और उस फल पाने वाले (उपादान) को फल देने वाले (निमित्त) का उतने समय तक एक परिवार में जन्म द्वारा, विवाह द्वारा रहना या स्वामी-सेवक के रूप में रहना या एक-दूसरे के शत्रु के रूप में एक ही परिवार में रहना या एक परिवार के रूप में रहना भी उनके कर्मों पर आधारित है अर्थात् परिवारों की रचना प्राणियों के कर्मानुसार होती है। दो प्राणियों का सयोग तथा वियोग भी कर्मानुसार होता है। इस प्रकार परिवार की रचना का आधार भी उपादानों या निमित्तों का सयोग ही है।

सारांश—जब तक सब कर्मों का क्षय नहीं होता है तब तक सभी मनुष्यों, पशुओं और पक्षियों को अपनी आयु समाप्त होने पर उनके कर्मों का फल भोगने के लिए कर्मों के आदेशों के अनुसार पुराने शरीर और परिवार को छोड़कर नये शरीर और दूसरे परिवार में जन्म लेना पड़ता है। किसी भी मनुष्य को उसके शुभ कर्मों के बिना उसके परिवार वाले उसके नाथ (रक्षक) नहीं बन सकते और हमेशा उसके साथ नहीं रह सकते। इसलिए परिवार के बाबत कहा जाता है—“नाथ नहीं है, साथ नहीं है।”

परिवार मोह

- 1 कोई भी प्राणी दूसरे प्राणी को उसके अशुभ कर्मों के फल से, दुख से, कष्ट से, हानि से और भौत से प्रयास करने पर भी बचा नहीं सकता।
- 2 पिता-पुत्र या पति-पत्नी एक-दूसरे का भला उनके शुभ कर्मोदय के बिना प्रयास करके भी नहीं कर सकते। 3 शुभ कर्मोदय के 4 किसी का दूसरे शत्रु के द्वारा बुरा किए जाने पर भी न ही होता है। 4 किसी को सुख देना या ७. न ८ना।

शक्ति मे नही है। केवल कर्माधीन है। 5 यादवों के अशुभ कर्मादय के सन्दर्भ मे श्रीकृष्ण ने उनको और अपने माता-पिता को भी जलने से बचाने का पुरुषार्थ किया, किन्तु वे अपने अशुभ कर्मों के कारण बचाये न जा सके। 6. मुनि सर्वानुभूति और मुनि सुनक्षत्र की आयु-समाप्ति का प्रसग ज्ञान के आधार जानकर तीर्थकर महावीर ने उनको बचाने का विचार या प्रयास ही नही किया। 7. जब तक हम गृहस्थी मे परिवार के साथ रहते हैं तब तक हमे 'यह मेरा भाई है, यह मेरा भतीजा है' ऐसे मोह मे नही पड़कर उनको 'यह आत्मा है, केवल आत्मा ही है' ऐसा मानकर उनकी सम्यक् सेवा करनी चाहिए। 8 परिवार-मोह छोड़ने वाली मरुदेवी माता मोक्ष गई।

आत्म-भावना

(केवलज्ञान प्राप्ति की साधना)

1. शरीर अलग है। मै (आत्मा) अलग हूँ। 2 इस हाड-मास, रक्त-चर्म के शरीर के सम्पूर्ण ढाढ़े मे मै (आत्मा) फैला हुआ हूँ। 3 इस शरीर मे जो जीवन है, शक्ति है, स्वेदनशीलता है, ज्ञान है, चेतना है, वही मै चेतन (आत्मा) हूँ। (वे सब आत्म प्रदेश है।) 4 मै अमूर्त हूँ। इसलिए मुझे देखा नही जा सकता है। किन्तु मेरे अस्तित्व की अनुभूति मेरे जीवन ओर शक्ति आदि से की जा सकती है। 5 शरीर मरता है, मै (आत्मा) नही मरता। 6. मै शरीर से निकल जाता हूँ, क्योंकि शरीर मेरा नही है। 7 मै ज्ञान का भंडार हूँ, शक्ति का भंडार हूँ, सुख का सागर हूँ और आनंदघन हूँ। मेरा लक्ष्य सिद्ध पद पाने का है। 8 मै ही मेरा हूँ। मेरे सिवाय और कुछ भी मेरा नही है। यह शरीर, यह परिवार, यह धन कुछ भी मेरा नही है। ये तो कर्मों के शुभाशुभ के फल मिलते-बिछुड़ते हैं।

शरीर मेरा नही है

1 शरीर अलग है, मै (आत्मा) अलग हूँ। शरीर नाशवान है, शरीर मेरा नही है। 2 मरना (विनाश) इस शरीर का स्वभाव है। यह अनिवार्य नियम है। 3 यह शरीर कर्मों की देन है। मनुष्य को उसके कर्मों का फल शरीर के माध्यम से मिलता है। 4 प्राणी को उसके कर्मों के अनुसार मनुष्य पशु या पक्षी का शरीर मिलता है। 5 यदि समझदार मनुष्य कार्य करते हुए इसे दूसरों दे जीवों की यतना रखता है और शरीर से मोह नही करते हुए इसे दूसरों दे कल्याण-कार्यों मे लगाता है तो वह मोक्ष का अधिकारी बनता है।

प्रतिदिन का स्वाध्याय

1 भला हो, भला हो, सबका भला हो, बुरा किसी का कभी नहीं हो।
2 इस ससार मे मेरे अशुभ कर्मों के सिवाय कोई मेरा शत्रु नहीं है। क्रोध
का आना दिमाग मे कुछ खराबी होने की निशानी है। 3 मैंने जो अच्छा
काम किया है, उससे समाज का कर्ज चुकाया है। अभी और भी कर्ज
चुकाना बाकी है। मेरे अन्दर अहकार का आना मेरे समझ की कमी है।
4 झूठ, कपट से धन आता नहीं, आता है तो ठहरता नहीं। ठहरता है तो
बरबाद करके जाता है। और सत्याचरन वाले की देवता मदद करते हैं।
5 धन का आना और चला जाना दोनों ही कर्मों का खेल है। लोभ से अशुभ
कर्मों का बध होता है। यह भविष्य मे दुखों को निमत्रण देना है। 6 प्रत्येक
भौतिक सुख के बदले मे दुख तो भोगना ही पड़ता है। 7 दुख को दुख
मानने से और रोने से होने वाले आर्तध्यान के बदले मे नया दुख फिर
भोगना पड़ता है। 8 भौतिक सुख भोगों की केवल इच्छा से ही कुछ भी
किए बिना भी अशुभ कर्म बधते हैं और इच्छा निरोध (रोकने) से कर्म कटते
हैं। 9 परिवार मे कोई किसी का नाथ नहीं है और कोई किसी का साथी
भी नहीं है। 10 यह शरीर अलग है और मै अलग हूँ। यह शरीर मेरा नहीं
है। यह परिवार भी मेरा नहीं है और यह धन भी मेरा नहीं है। 11 तन
तजना है सिद्ध बनना है। अर्थात् यह शरीर छोड़कर सिद्ध बनना है।
12 प्रतिदिन बार-बार विचारिये कि कहीं क्रोध, अहंकार, कपट, लोभ की
भावना और अशुभ इच्छाओं का शिकार तो मै नहीं बना हूँ। यदि ऐसा हुआ
हो तो उसका पश्चात्ताप करना जरूरी है। 13 सत्य बोलने वाले की देवता
प्रार्थना किये बिना भी मदद करते हैं। दान देने से कर्मों की रेखा भी बदल
सकती है।



धर्म विचार सार

कषाय मुक्ति : छठा भाग

समता के नौ सूत्र—

क्रोध छोड़ने के लिए हमेशा इस प्रकार स्वाध्याय किया जाए—

1 क्रोध छोड़ने के लिए दिन मे आधे घटे तक नियत समय पर क्रोध नहीं करने का नियम बनाया जाय। इसका सावधानी से पालन करने से क्रोध अवश्य ही छूट जाएगा।

2 भक्षक भीतर, दुख का दाता।

क्रोध निमित्त पर व्यर्थ ही आता॥

3 मौन रहो अरु हठ ही जाओ।

हठ छोडो अरु झुक ही जाओ॥

4 पानी पीओ क्रोध बुझाओ।

गुरु गुण गाओ शीश-झुकाओ॥

2 अहकार से बचने के लिए नीचे लिखे विचारो का स्वाध्याय किय जावे—

1 सेवा की सो कर्ज चुकाया।

अहम् भाव मन मे क्यो आया॥

2 अपने गुरुजनो से और बड़ो से सलाह लेने से, अपने भोजन में वस्त्रो मे, बातचीत मे, विचारो मे और जीवन के हर एक काम मे सादर्द रखने से, दूसरो की सेवा करने से, सेवा के प्रत्येक काम को कर्ज चुकाने का काम मानने से, अपनी सफलता का और अच्छे कामो का श्रेय (बडाई) अपने गुरुजनो और साथियो को देने से, अपनी बडाई नहीं सुनने से और जहाँ अपनी प्रशस्ता हो रही हो वहाँ से उठकर थोड़ी दूर पर बेठ जाने व अह भावना से बचा जा सकता है।

3 कपट (माया)—कपट से यदि सुख मिलता तो रावण परिवार अँ

कौरव परिवार कभी दुख नहीं पाते। कपट से धन आता नहीं, यदि आता है तो ठहरता नहीं और ठहरता है तो बरबाद करके जाता है।

4 धन का लोभ—परिवार के और अपने जीवन निर्वाह के लिए धन कमाना तो गृहस्थ का धर्म है किन्तु धन कमाना ही अपना लक्ष्य बनाना मोक्ष मार्ग छोड़कर सासार के मार्ग पर चलना है। धन का आना और धन का जाना कर्मों का खेल है।

5 परिवार है साथी नहीं मेरा।

परिवार है साथी कर्मों का ॥

परिवार वाले हमारे अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में नहीं बदल सकते।

6 मनुष्य के शरीर की रक्षा उसके शुभ कर्मों से ही होती है। इसलिए मनुष्य को अपने शरीर की विशेष चिता नहीं करके अपना समय धर्म-ध्यान में लगाना चाहिए।

7 दुख के समय रोने से, आर्तध्यान करने से अशुभ कर्मों का बध होता है जिससे दुख मिलता है। समता रखने से अशुभ कर्म नष्ट होते हैं।

8 भौतिक सुख भोग—भौतिक सुखो मे और मनोरजन मे अशुभ विचार और अशुभ काम करने से, उनमे रस लेने से अशुभ कर्म बधते है और दुख मिलता है।

9 आत्म-भावना—मैं भीतर हूँ, मैं भीतर हूँ।

सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा ।

ऊपर लिखे हुए समता के नौ सूत्रों के सबध में इस प्रकार चितन-मनन करना चाहिए—

10 क्रोध के सबध मे चितन-मनन-क्रोध अहकार का उग्ररूप है। अहकार से होने वाली सभी बुराइयाँ क्रोध मे है। अहकार छोड़ने से क्रोध छूट जाता है। क्रोध के समय मनुष्य प्राय पागल-सा बन जाता है। वह चीजों की तोड़-फोड़ करता है। मनुष्यों से मारपीट करता है। दूसरों की तथा कभी-कभी अपनी भी हत्या कर लेता है। क्रोधी मनुष्य जीवन भर पछताता रहता है। क्रोधी मनुष्य अपने शत्रु के पीछे पड़ जाता है। उसके अपराध खोजता रहता है। अपराधों के लिए प्रमाण (सबूत) ढूढ़ता है और उससे प्रतिशोध (बदला) लेता है। क्रोध आने का कारण है मनुष्य की इच्छापूर्ति मे बाधा पड़ना। जैसे-प्रशसा, धन प्राप्ति, भौतिक सुख प्राप्ति, परिवार से सुख प्राप्ति और उसके दुख से भागने मे बाधा पड़ना।

क्रोध छोड़ने का अभ्यास कल्पना द्वारा भी किया जा सकता है। भविष्य के पाँच-सात दिनों में आज या कल जिन घटनाओं के घटित होने की समावना है उनकी कल्पना कीजिए और सम्भव है कि उनमें कुछ दर्शन ऐसी हो जिनसे आपको नाराजगी आवे या क्रोध आवे उनकी कल्पना कीजिए और फिर ये सोचिये कि आप उस समय क्रोध से बचने के लिए किन-किन बातों का विचार करेगे और किस प्रकार क्रोध करने से बचें। इस प्रकार का अभ्यास प्रतिदिन सबैरे करते रहने से क्रोध से बचा जा सकता है। इसी प्रकार बीते हुए समय में जब-जब क्रोध आया हो उन घटनाओं को याद कीजिए और भविष्य में ऐसी घटना होने पर आप क्रोध से कैसे बचेंगे इस पर गहरा चिंतन कीजिए।

क्रोध जीतने के उपाय है—प्रथम मौन रखना, दूसरे इन दो सूत्रों का बार-बार चिंतन-मनन करना “दृढ़ अशुभ कर्मों से मिलता है और दूर भी अशुभ कर्मों से होता है। मैं क्रोध किस पर करूँ और क्यों करूँ।”

प्रतिदिन बार-बार जाँच करनी चाहिए कि मेरा क्रोध छूटा या नहीं। अगर नहीं छूटा तो मुझे पश्चात्ताप करना चाहिए। “धिक्कार है मुझे अन्य मेरा क्रोध नहीं छूटा।”

11. अहंकार के सबैध में चिंतन—जिस मनुष्य के शरीर में वहुत दर्द है, जिसके पास विशाल राज्य शक्ति है, जिसको विपुल धन मिला है जिसको महान् शक्तिशाली और आज्ञाकारी बड़ा परिवार मिला है, जिसके बुद्धि की प्रशसा ससार करता है, ऐसा मनुष्य कभी-कभी अपनी शक्ति दर्द अहकार करता है और कहता है कि मैं जो चाहूँ सो ससार में कर सकूँ हूँ किन्तु यह उसकी भूल है क्योंकि जब जिस मनुष्य के अशुभ कर्मों दर्द और असातावेदनीय कर्मों का उदय होता है तब उसकी सभी शक्तियाँ अशुभ कर्मों की एक ही चोट में उसकी बुद्धि को विपरीत और विनाशकारी दर्द देती है और उस मनुष्य का विनाश कर देती है।

रावण के अशुभ कर्मों ने उसकी बुद्धि को विपरीत बनाकर सीता को दर्द हरण कराया। विभीषण को लात मरवाकर विद्रोही बनाया, सीता को दर्द लौटाने दिया। राम से युद्ध करवाया और रावण परिवार का विनाश करवाया। दुर्योधन के अशुभ कर्मों ने उसको पाड़वों का शत्रु बनाया, श्रीकृष्ण का सधि प्रस्ताव अस्वीकार करवाया, महाभारत का युद्ध करवा-

और कौरव वश का विनाश करवाया। पृथ्वीराज के अशुभ कर्मों ने उसको अहकारी बनवाया, उसे असावधान बनवाया, मोहम्मद गोरी को जेल मे कैद करवाया, पृथ्वीराज को अधा बनवाया और उसकी दुर्दशा करवायी। अशुभ कर्म अपनी पहली चोट मनुष्य की बुद्धि पर ही लगाते हैं और बुद्धि विपरीत बनाकर उस मनुष्य का विनाश कराते हैं। मनुष्य के शरीर को रोग और बुढ़ापा बेकार बना देते हैं। मनुष्य के धन को धूर्त लोग और मनुष्य का दुर्भाग्य खा जाता है। अशुभ कर्मदय के समय परिवार की शक्ति को परिवार की फूट खा जाती है। उसकी बुद्धि को उसके अशुभ कर्म विपरीत और विनाशकारी बना देते हैं। इस प्रकार मनुष्य की सभी शक्तियाँ बेकार बन जाती हैं। अत अहकार करना भयकर भूल है।

12 माया (कपट) के सबध मे चितन—साधारण मनुष्य से देवता मे और देवताओ से तपस्थियो मे और तपस्थियो से भी अधिक शक्ति सत्यवादी मे होती है, जैसा विश्वामित्र और हरिशचन्द्र की कथा से प्रमाणित होता है।

13 धन का लोभ—जो धन जब, जितना और जिस प्रकार से कर्मों के अनुसार आना है वे तो साधारण पुरुषार्थ से और बिना इच्छा के और लोभ की भावना के बिना भी आ ही जावेगा। समझदार मनुष्य धन का लोभ नहीं करता। वह इच्छा छोड़कर 'इच्छा निरोध तप' से अपने अशुभ कर्मों को नष्ट करता है। साधारण स्थिति मे कभी-कभी मनुष्य अशुभ काम और पाप कर बैठता है जिससे साधारणतया आता हुआ धन भी बद हो जाता है। कभी-कभी शुभ कर्मों से दान देने से और पुण्य करने से तुरन्त ही अधिक धन आ सकता है। जैसे महापुरुष को दान देने से कभी-कभी धन की वर्षा होने लगती है या धन आने लगता है। इसलिए मनुष्य को जीवन मे हमेशा शुभ व्यवहार का ही पालन करना चाहिए।

14 परिवार के सबध मे चितन—क्या आप मोक्ष पाना नहीं चाहते ? परमात्म पद पाना नहीं चाहते ? यदि चाहते हैं तो यह स्पष्ट है कि आपकी अन्तरात्मा यह मान चुकी है कि परिवार आपका नहीं है। आप इसे मोक्ष पाने के लिए छोड़ने को तैयार हैं। मरते समय परिवार को छोड़ना ही पड़ता है। जब शरीर ही छोड़ना पड़ता है तो परिवार अपना होगा ही कहों से ? आत्म-भावना भाने वाला यही स्वाध्याय करता है कि मुझ आत्मा के सिवाय और कुछ भी मेरा नहीं होता। यह शरीर मेरा नहीं है, यह परिवार मेरा नहीं

है, यह धन, घर आदि मेरे नहीं है। संसार मे सब प्राणियों मे केवल मुख्यतया एक ही सबध होता है—निमित्त और उपादान कारण। एक प्राणी दूसरे प्राणी को सुख या दुःख, अन्न या धन, ज्ञान या अज्ञान देने मे निष्ठा कारण बन सकता है और दूसरा प्राणी उन्हे पाकर उपादान। एक दाता बनता है और दूसरा पाने वाला पात्र। संसार मे सभी प्राणियों मे केवल निमित्त और उपादान बनने का ही सबध होता है। परिवार के जिन प्राणियों में परस्पर ऐसा बनने का सयोग, कर्मों की प्रेरणा से नहीं होता, तो उन प्राणियों का पारिवारिक सबध भी टूट जाता है। कुती ने अपने पुत्र कर्ण के जन्मते ही छोड़ दिया था। करकण्डु, कबीर, शकुन्तला, नूरजहा आदि के जन्मते ही माता-पिता से अलग होना पड़ा। इस दृष्टि से माता-पिता के सबध बनने का जीवन में इतना महत्त्व नहीं है जितना महत्त्व निमित्त उपादान सबध होने का होता है।

अत परिवार यदि कदाचित् अपना शत्रु या मित्र बन जाता है तो : उसे शत्रु या मित्र नहीं समझना चाहिए क्योंकि वह तो कर्मों की प्रेरणा ही शत्रु या मित्र बनता है।

परिवार है साथी नहीं मेरा।

परिवार है साथी कर्मों का ॥

15. शरीर भावना—शरीर की रक्षा हमारे कार्मण शरीर जो हमे हमारी आत्मा के साथ ही चिपका हुआ रहता है के द्वारा ही होती आदिनाथ भगवान के बारह महीने तक निराहार रहने के समय, बाहुबली के बारह महीने मे तपस्या मे रहने के समय, भगवान महावीर के 5 महीने 27 दिन तक निराहार रहने के समय और मृगालोढा के हाथ पेर नहीं हुए भी उसके शरीर की रक्षा उनके कर्मों के द्वारा ही हुई। पशुओं पक्षियों की, गर्भ के भीतर के जीवों की और अडों के भीतर जीव की भी उनके कर्मों द्वारा और आयु द्वारा होती है। अत समझदार मनुष्य ३ शरीर के लिए विशेष चिता नहीं करता और अन्याय, अनीति और ३ उपोयों और पाप कर्मों का सहारा नहीं लेता। वह साधारणतया ३ जीवन निर्वाह करता हुआ अपने शरीर से अपना अधिक समय परमात्मा भजन और धर्म ध्यान मे ही लगाता है।

16. दुःख भावना के संबंध मे चितन—जो दुःख जव, जितना,

प्रकार और जिस निमित्त से आना है वह या तो तप से नष्ट होता है या समताभाव पूर्वक भोगने से ही नष्ट होता है। समताभाव पूर्वक दुख भोगने से मोक्ष मिलता है। जो सेवा जब, जितनी, जिसकी, जिस प्रकार निकाचित कर्मों की गति के अनुसार करने का योग है वह तो चन्दनबाला की तरह करनी ही पड़ती है। दुख के समय कषाय से बचने और विचारों में और आचरण में समता रखने के लिए इस प्रकार स्वाध्याय और चितन-मनन किया जा सकता है—

दुख के समय दुख को दुख मानना, रोना और आर्तध्यान करना अशुभ क्रिया है। इससे अशुभ कर्म बध होता है फिर उन अशुभ कर्मों के उदय होने पर दुबारा दुख मिलता है। इस दुबारा दुख भोगते समय रोने से और आर्तध्यान करने से फिर नये सिरे से अशुभ कर्मों का बध होता है। इस प्रकार दुख और आर्तध्यान करते रहने से दुख के आने का अत होता ही नहीं। अधिक रोने वाला और आर्तध्यान करने वाला नरक में जा सकता है। पति के वियोग में छ माह तक मोह वश आर्तध्यान करने वाली चक्रवर्ती की पटरानी छठे नरक में चली जाती है।

17 सुख भावना के सबध में चितन-मनन-भौतिक सुख को सुख मानने से, उसमें आसक्त होने से और अशुभ कार्य करने से अशुभ कर्मों का बध होता है और थोड़े सुख के बदले में बहुत समय तक दुख मिलता है। जैन ग्रन्थों में यह भी बताया गया है कि भौतिक सुखों में लीन रहने वाला ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सातवे नरक में चला गया। यह बात भी विशेष ध्यान देने की है कि सुख भोगना दुख के आने का कारण नहीं होता किन्तु सुख भोगते समय दुख प्राप्ति के अशुभ कार्य करने से और अशुभ विचार करने से दुख का कारण बनता है। यदि सुख भोगते हुए भी शुभ कार्य और विवेक रखा जाय तो दुख का आगमन नहीं हो सकता है। दुख का आना तभी बद होगा जबकि दुख और सुख दोनों में समता रखी जावे। सुख में रस नहीं लेने वाला, नहीं हँसने वाला जम्बू स्वामी की तरह मोक्ष में जाता है।

18 अशुभ कर्मों का बध करने वाले नीचे लिखे हुए भौतिक सुखों के स्रोत में रस नहीं लेकर मनुष्य को कर्म बध से बचना चाहिए। वे स्रोत ये हैं—

1 ऑंखों से टी वी, सिनेमा, नाटक, नृत्य, मेले, उत्सव, दुर्भावना से

स्त्री पुरुषों को और उनके चित्रों को देखना आदि। 2 कानों से झूँसे गदे गाने सुनना। 3 नाक से इत्र आदि को सूघना। 4 जीभ से नहीं रंयोग्य स्वादिष्ट और हिसा से बनी हुई चीजे खाना, जमीकन्द आदि छू और उसमे रस लेना। 5 कामभोग आदि मे छूबना। 6 मनोरजन झू पॉचो इन्द्रियों से मिलने वाले सुखों मे रस लेना, उन भोगे हुए सुखों को टकरना, भविष्य मे उनको भोगने की कल्पना करना या दूसरों को दुष्ट देखकर खुश होना।

19. आत्म-भावना—शरीर अलग है, मै अलग हूँ। शरीर मेरा नहीं। यह नाश्वान है। मै आत्मा हूँ, मुझे सिद्ध बनना है। “आत्मा हूँ आत्म; सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।”

आत्मा हूँ मैं देह भिन्न हूँ मै अमृत हूँ चेतन हूँ।
मै अवद्य हूँ, मै अदाह्य हूँ अजर-अमर हूँ शाश्वत हूँ।
शक्ति पुज हूँ ज्ञानरूप हूँ हूँ आनन्दघन हूँ चेतन हूँ।
निराकार हूँ निर्विकार हूँ विमल ज्योति हूँ आत्मा हूँ।

आत्म भावना भाने से शिवभूति मुनि को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी जैन और वैदिक दोनों संस्कृतियों मे देहात्मभेद और आत्म भावना को नहीं ही महत्त्वपूर्ण माना गया है।

20 णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण—इसका हमेशा जाप करते रहने यदि मृत्यु के समय भी ऐसी भावना बनी रह जाय तो मनुष्य का उन सफल बन सकता है। जैसे दृढ़ प्रहारी और अर्जुनमाली के पाप के परमात्मा के भजन से ही कट गए।

21 सेवा बिना मुक्ति नहीं—महासती चन्दनबाला राजा की लड़की; उसे भी पूर्व कर्मों के कारण रथी के घर पर सेवा करनी पड़ी। पॉचो पाण्डु और द्रौपदी को विराट राजा के यहाँ, महाराज हरिशचन्द्र और महाराज तारा को काशी मे और महाराज नल को महाराज ऋतुपर्ण के यहाँ से करके कर्म काटने पडे। पूर्व जन्मो के कर्मों के कारण सेवा तो करनी ही पड़ती है किन्तु जो प्राणी हस-हस कर सेवा करता है उसके कर्म नहीं जाते हैं किन्तु जो प्राणी रो-रोकर और उसे बेगार समझकर सेवा करता है उसके नए अशुभ कर्म बध जाते हैं।

दूसरो की यथायोग्य सम्यक् सेवा करना मनुष्य का धर्म है किन्तु दूसरो से अपनी अनावश्यक सेवा कराना पाप है।

दूसरो के प्रति सद्भावना, दुखी को सात्वना देना, भटकते हुए प्राणी को सही मार्ग बताना, दूसरो की आत्म-शुद्धि में और जीवन निर्वाह में सहयोग देना तथा अपने सामने आये हुए कार्यों को अपनी मर्यादा का ध्यान रखते हुए यथाशक्ति, यथा सभव पूर्ण करना आदि सेवा कार्य है।

22 कर्मों की प्रधानता—हमारे इस जीवन के पहले वाले जीवन की समाप्ति के समय उदय में आने वाले कर्मों ने ही हमारा वर्तमान शरीर, परिवार, जीवन साथी, वर्तमान परिस्थिति और वर्तमान उद्योग धधा अर्थात् पेशा दिया है। हमारा कार्मण शरीर ही हमारी रक्षा करता है। मृत्यु को बुलाता है, वही कहीं पर उपादान व कहीं पर निमित्त बनाता है, वही सुख और दुख को खीचकर हमारे पास लाता है और वही हमारा सरक्षक है, वही हमारे प्राय सभी भौतिक कार्यों में प्रधान रहता है, उसके विधान को बदलना कठिन है। अत चिता और राग-द्वेष छोड़कर सतोष और समता रखकर, शुभ और शुद्ध पुरुषार्थ में लगा रहना ही मानव धर्म है।

23 ज्ञानवार्ता—(क) जब कर्मों के प्रभाव से होने वाली पुद्गल स्पर्शना अर्थात् होनहार रुक नहीं सकते तो क्रोध करने से क्या लाभ ? (ख) जब मनुष्य बड़ा नहीं किन्तु समय मनुष्य से अधिक बलवान् है तो अहकार करने से क्या लाभ ? (ग) जब कार्मण शरीर ही इस औदारिक शरीर का सरक्षक है तो यह औदारिक शरीर मेरा नहीं हो सकता। (घ) जब प्रत्येक जीव का सरक्षक ही अलग-अलग है तो उनका एक परिवार मे होने का कोई अर्थ ही नहीं रहता। इन भावनाओं को लाख-लाख बार जपने से जीवन मे परिवर्तन अवश्य ही आता है।

24. मोक्ष प्राप्ति मे कुछ बाधाएँ—

1 मोक्ष प्राप्ति मे प्रथम बाधक विकार है—क्रोध। इससे बचने के लिए इस प्रकार स्वाध्याय कीजिए—“क्रोधी कौशिक, चण्डकौशिक सर्प बना और समताधारी मुनि गजसुकुमाल सिद्ध बने।” बहुत दिनों तक ऐसा स्वाध्याय करने से क्रोध अवश्य ही कम होगा। क्रोध के समय मौन रहना और वहाँ से उठकर दूर चले जाना आवश्यक है।

2 दूसरी बाधा है—मान (अहम् भाव)। इसके लिए चितन और

स्वाध्याय इस प्रकार करना चाहिए—(क) मैं बड़ा नहीं हूँ समय दज्जा देता होता है। (ख) शुभ कर्मों के उदय के समय मनुष्य का काम दर्जा है। (ग) शुभ कर्मों के उदय का समय मनुष्य का शरीर, बल, धन वत्त, बल, बुद्धि बल आदि को विपरीत बनाकर मनुष्य का विनाश भी करता है, अहकार के कारण ही कौरवों का विनाश हुआ। अर्जुन ने महाभारत युद्ध जीता, लेकिन जब भीलों ने गोपिकाओं को लूटा तब वही अर्जुन बचा नहीं सका, मनुष्य बड़ा नहीं होता समय बड़ा बलवान होता है।

रहिमन नर को कहा बड़ा, समय बड़ो बलवान।
काबा लूटी गोपिका, वही अर्जुन वही बाण॥

3 (क) परिवार मोह छोड़ने के लिए वर्षों तक यह स्वाध्याय : चितन करना जरूरी है कि “परिवार मेरा नहीं है” जिन्होने परिवारः छोड़ा वे मोक्ष मे गए, जिन्होने परिवार मोह नहीं छोड़ा वे मोक्ष नहीं सके। (ख) परिवार मोह छूटते ही मरुदेवी माता मोक्ष चली गई। (ग) परि मोह मे मरने वाले कुछ लोग गाय, भैस, भेड़, बकरी, कुतिया, बिल्ली इ पशु बन जाते हैं। महेशदत्त का पिता भैंसा और माता कुतिया बनी। इन कारण परिवार मोह था।

विशेष चिंतन—(क) परिवार मे साथ-साथ रहने से मोह पैदा होता, साथ-साथ रहने वाली सास-बहू मे, देवरानी-जेटानी मे, कमी-द भाई-भाई मे और पिता-पुत्र मे भी शत्रुता बन जाती है। (ख) हमारे अनादिकाल से परिवार को अपना मानने की भावना बनी हुई है। इ कारण मोह पैदा होता है। (ग) इस मोह को हटाने का सबसे उत्तम उपयोग के समय तो इससे अलग होना ही पड़ेगा।

4. चौथी बाधा है—शरीर मोह की (देहात्म शक्ति की)। इसके द्वारा इस प्रकार स्वाध्याय किया जाय—“यह शरीर मेरा नहीं है। मैं (आत्म) अलग हूँ, शरीर अलग है और यह शरीर नाशवान है।”

कुछ वर्षों तक प्रतिदिन इन चार भावनाओं का स्वाध्याय करने महान शाति प्राप्त हो सकेगी और सभव है कि किसी दिन सिद्ध पद प्राप्ति हो सकेगी।

‘नमो सिद्धाण’

दोष मत दो निमित्त को कषाय मुक्ति : सातवा भाग (सिद्ध पद प्राप्ति की साधना)

यह स्वाध्याय जीवन भर प्रतिदिन कई बार करना चाहिए। सामायिक या किसी भी खाली समय में दुकान में, मैदान में, मकान में, किसी भी गह, दिन में या रात में, किसी भी समय बिस्तर पर लेटे हुए किसी भी शा में, बिना स्नान किए भी किया जा सकता है। हजारों लाखों बार शाध्याय करने से सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

दोष मत दो निमित्त को सप्त-सूत्री-स्वाध्याय

- १) दोष मत दो, दोष मत दो, दोष मत दो निमित्त को।
- २) भला हो, भला हो, सबका भला हो।
- ३) नमस्कार है सब सिद्धों को, नमस्कार है सब सतों को।
- ४) शरीर अलग है, मैं अलग हूँ, शरीर नाश्वान है।
- ५) परिवार निमित्त ही बनता है।
- ६) धन कर्माधीन है।
- ७) मैं सिद्ध बनूगा।

थम भावना—अद्वेष भावना अक्रोध भावना

इस भावना का प्रतिदिन अधिक से अधिक स्वाध्याय करने से यह विना मनुष्य के अवचेतन मन में, रोम-रोम में अपना स्थान बना लेगी और स्कार रूप में अनतकाल तक साथ रहेगी।

इनमें प्रथम भावना के हजारों या लाखों बार स्वाध्याय करने से, सके अर्थ का चितन करने से, इस भावना को जीवन में उतारने वाले मुनि जसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि दृढ़ प्रहारी, नि खदक जिनकी जीवित अवस्था में चमड़ी उतारी गई थी और पॉच सौ

संत जिनको धाणी (कोल्हू) मे पेरा गया था आदि की घटनाओं का वार-दर-अनुमोदन करने से और हर समय पूरी सावधानी रखकर इन्हे जीवन के उतारने से क्रोध पर पूर्ण विजय प्राप्त हो सकती है।

लोग कहते हैं कि जो मनुष्य क्रोध को जीत लेता है वह ससार हे जीत लेता है। क्रोध पर पूर्ण विजय प्राप्त करने से पचहत्तर प्रतिशत अधिक साधना सफल मानी जाती है। सर्वप्रथम क्रोध को जीतने का अस्त्व कुछ भीनो तक करना चाहिए। इससे बुराइयों को जीतना सरल हो जाता है। यदि अपने मन मे दूसरे मनुष्य को दोष देने का विचार नहीं आये हैं क्रोध को पैदा होने के लिए स्थान ही नहीं मिलेगा।

‘दोष मत दो, दोष मत दो, दोष मत दो निमित्त को।

निज कर्म फल ही है मिला,

तब निमित्त बेचारा वया करे।

“क्षमा दस लाख मासखमण से भी बढ़कर है।” इस भावना द स्वाध्याय भी क्रोध के हटाने मे समर्थ है। क्रोध को जीतने के लिए निन भौतिक उपाय भी सहायक होते हैं—

मौन रखो अरु हठ ही जाओ।

हठ छोड़ो अरु झुक ही जाओ॥

पानी पीओ क्रोध बुझाओ।

गुरु गुण गाओ शीश झुकाओ॥

सुख या दुःख या कोई चीज पाने वाला उपादान कहलाता है और दूसरो को सुख या दुख या कोई चीज देने वाला निमित्त कहलाता है।

सिद्धों को छोड़कर संसार के दूसरे प्राणियों से हमे सुख या दुःख मिलता है। इसलिए वे सब हमारे लिए निमित्त ही हैं।

मेरे लिए मेरे घर के लोग, बाहर के लोग, पशु-पक्षी, कीड़े-मक्कों मक्खी-मच्छर आदि सभी निमित्त हैं। उनसे मिलने वाले दुख के लिए उनको दोष नहीं देना चाहिए और उन पर क्रोध नहीं करना चाहिए। मेरे अन्तराय कर्म के उदय से यदि मुझे परिवार से सहयोग नहीं मिले तो मुझे परिवार वालों को दोष नहीं देना चाहिए और उन पर क्रोध नहीं करना चाहिए।

दूसरी भावना—परहित भावना

“भला हो, भला हो, सबका भला हो” इस भावना के स्वाध्याय से द्वेष, दुर्भावना, क्रोध, प्रतिशोध अर्थात् बदला लेने की भावना धीरे-धीरे दूर हो जाती है और मैत्री, अनुकम्पा, सम्यक् सेवा, समता आदि की भावना आने लगती है।

एक लेखक ने कहा है कि दूसरों का भला करने वाला और भला चाहने वाला भी तीर्थकर बन सकता है। क्षण भर के अपध्यान से तन्दुल मत्स्य सातवी नरक जाता है तो दूसरों का भला चाहने वाला जीव मोक्ष क्यों नहीं पहुँच सकता? हमारे इस सूत्र के स्वाध्याय से चाहे दूसरों का भला नहीं हो तो भी हमारी शुभ भावना के कारण हमारा भला तो अवश्य होगा। जिससे हमें बाधा पहुँचती है उसका नाम लेकर बार-बार कहना चाहिए कि श्री का भला हो, भला हो, भला हो। हमारी इन भाव तरणों से वह हमारा हित करने वाला मित्र भी बन सकता है।

तीसरी भावना—नमस्कार या विनय भावना

घर बैठे हुए भी इस भावना को भाते समय कल्पना में दोनों हाथ जोड़कर सतों को या सिद्धों को कल्पना में सिर झुकाकर और उनके चरण छूकर भाव-वदना करनी चाहिए और मन में यह कहना चाहिए—“नमस्कार है सब सिद्धों को, नमस्कार है सब सतों को।” इस भावना से पाप नष्ट होते हैं। इससे अहकार और क्रोध भी दूर होते हैं। इससे पुण्य, विनय, केवलज्ञान तक की प्राप्ति होती है। बाहुबलीजी को अहकार पूर्वक बारह महीनों तक कठोर तप करने से भी जो केवलज्ञान अविनय के कारण प्राप्त नहीं हुआ था, वह केवलज्ञान उनके अहकार छोड़ते ही और विनय पूर्वक छोटे सतों को वदना करने जाने के लिए एक पैर उठाते ही प्राप्त हो गया। विनय से केवलज्ञान की प्राप्ति भी होती है। विनय बारह महीने के लगातार उपवास से भी बढ़कर है।

विनय के सबध में एक कविता भी है—

मैत्री भाव जीवों पर रखते।

मानवता का आदर करते॥

नमस्कार संतों को करते।

धार्मिकता के अह से बचते ॥
विनयवान् भगवान् है बनते ।

यदि हम सिद्धों को या सतों को घर बैठे हुए भी बीस बार भाव-ददन करे तो बीस बार ही पाप का क्षय होगा और पुण्य का लाभ होगा और दिन भावना मजबूत बनेगी। यदि अहभाव आ जाये तो उसके लिए पश्चात्तर करके आत्मा को शुद्ध करना चाहिए।

चौथी भावना—शरीर-भावना, आत्म-भावना

“शरीर अलग है। मैं अलग हूँ। शरीर नाशवान है। शरीर मेरा नहीं है।” मैं आत्मा हूँ। मैं देह भिन्न हूँ, मैं अमूर्त हूँ, मैं चेतन हूँ, मैं अवद्य हूँ, मैं अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ, ज्ञान रूप हूँ, आनन्दघन हूँ, जीवन हूँ, निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमलज्योति हूँ, आत्मा हूँ। यह शरीर भावना है। यह देहात्म भेद ज्ञान है, यही आत्म भावना है। इसको भाते रहने से शिवभूति मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। शुरू-शुरू मैं यह भावना अटपटी, विचित्र और अविश्वसनीय लगती है। किन्तु आठ-दस महीनों तक इसे भाते रहने से, इसमें पूर्ण विश्वास जम जाता है।

पांचवी भावना—परिवार मोह

मुक्तात्माओं को छोड़कर ससार के सभी प्राणियों में (देवता, मनुष्य, तिर्यच आदि में) उपादान निमित्त-सबध के कारण ही पिता-पुत्र, स्वामी-सेवक, भिन्न-शत्रु आदि के सबध बनते हैं।

प्राणी के मन, वचन, काया के हलन-चलन से भिन्न-भिन्न कर्म-वर्गणाएँ के पुद्गल आते हैं और कषाय के कारण आत्मा के साथ कर्म रूप में झुंझुनते हैं और इसी कारण प्राणियों में उपादान निमित्त सबध भी नहीं बनते हैं। यदि मनुष्य में कषाय नहीं हो तो उपादान निमित्त सबध भी नहीं बनते। उपादान निमित्त का संबध घनिष्ठ होने के कारण या अधिक साथ-साथ रहने देने के कारण भी प्राणियों में प्रशस्तराग या अप्रशस्तराग या मोह तथा द्वेष आदि पैदा होते हैं।

सिद्धों का जन्म-मरण नहीं होता, उनके शरीर नहीं होता और उन्हें उपादान-निमित्त सबध भी नहीं बनते। वे सब अलग-अलग होते हैं। इन्हें प्रकार सभी प्राणियों की आत्मा मूल रूप में अलग-अलग होती हैं। किंतु

का किसी के साथ सबध नहीं होता। जब तक स्थूल शरीर होता है तभी तक उपादान निमित्त सबध बनते और टूटते रहते हैं।

उपादान-निमित्त सबध सम्यक् द्रव्य सेवा, भाव सेवा, शुद्ध भावनाओं, पश्चात्ताप, तप और समता से समाप्त हो जाता है।

मोह पर विजय पाने के लिए ‘परिवार मेरा नहीं है।’ इस भावना का हजारों बार स्वाध्याय करने से भी मोह टूट जाता है। कभी-कभी किसी भावनात्मक चोट लगने से या किसी विशेष घटना से भी मोह टूट जाता है। जिस प्रकार कि मरुदेवी माता, भरत चक्रवर्ती, बाहुबलीजी, नमिराजर्षि आदि का मोह टूट गया था।

परिवार के सभी सदस्य मेरे लिए केवल निमित्त ही बनते हैं। वे अपने परिश्रम से मेरे कर्मों को नहीं बदल सकते, मुझे शरण नहीं दे सकते, मेरे सरक्षक नहीं बन सकते, क्योंकि मेरे शरीर का सरक्षक तो मेरा कार्मण शरीर ही बनता है। वे तो केवल अस्थाई निमित्त ही बनते हैं। उन पर क्रोध करना, मेरे लिए ठीक नहीं है।

छठी भावना—धन का लोभ

“धन का आना और धन का जाना मेरे हाथ मे नहीं है, यह मेरे कर्मों के अधीन है।” शुभ कर्मोदय के बिना केवल भाग-दौड़ करने और “हाय धन, हाय धन” करने या रोने से धन नहीं आता है। दान-पुण्य, धर्म करने से इच्छा और लोभ के बिना भी साधारण पुरुषार्थ से भी धन की वर्षा होने लगती है।

सातवीं अन्तिम भावना—संकल्प

“मैं आत्मा हूँ, मैं शरीर के भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूगा। मुझ आत्मा के अमूर्त आत्म-प्रदेश सिद्ध लोक मे, सिद्ध दशा मे, अटल-अवगाहना प्राप्त करेगे। मैं आनन्दधन और अभय बनूगा। इस भावना का स्वाध्याय और कल्पना दोनों करनी चाहिए। कल्पना इस प्रकार की जाती है—‘मुझ आत्मा के अमूर्त आत्म-प्रदेश सिद्ध लोक मे, सिद्ध दशा मे, अटल-अवगाहना प्राप्त कर चुके हैं और मैं सिद्ध बन गया हूँ।’ इस साधना से मनुष्य के मन से सासारिक बातों और कामों के चित्र मिट जाते हैं। उसका भौतिक जीवन आध्यात्मिक जीवन बन जाता है। यह सिद्ध पद प्राप्ति की साधना है।

चौथी शरीर भावना और इस सातवी भावना का कुछ अस्यान्त है—
के बाद ये दोनो भावनाएँ केवल छ शब्दो में इस प्रकार भायी जा सकती हैं—

“मैं भीतर हूँ मैं सिद्ध बनूगा।”

इसी प्रकार शरीर परिवार और धन के मोह को दूर करने के लिए
भी इस प्रकार स्वाध्याय किया जा सकता है—“शरीर, परिवार, धन आदि भूमि
नहीं है।

ज्ञानवार्ता

अपने जीवन में जितने पाप किए हो उनको कभी-कभी याद दर्शाने पर
पश्चात्ताप कर लेने से वे हल्के पड़ जाते हैं।

शील पालने के लिए हमें ‘शील, शील, शील’ इस प्रकार का स्वादन
करना चाहिए। विजय सेठ, विजया सेठानी की कथाओं का अध्ययन देने स्वाध्याय,
अनुमोदना करते रहना चाहिए।

अकेली स्त्री को अकेले पुरुष के साथ एकान्त में बैठना या एक-दूसरे
के चिन्त्रों का देखना या एक-दूसरे की कल्पना करना या मादक भोजन
शराब आदि लेना नहीं चाहिए।

जैन ग्रन्थों में सत्य को भगवान कहा गया है। धर्मात्मा (सत्यवादी),
को देवता नमस्कार करते हैं। सत्यवादी देवताओं को प्रिय लगता है,
उसकी सहायता करते हैं। सत्य पौच्छ महाग्रतों में एक व्रत है। सत्य देव
महातप माना गया है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र में देवताओं से अभिषेक
शक्ति थी।



‘णमो सिद्धाण’

सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना

कषाय मुक्ति—आठवा भाग

‘सिद्ध पद पाना ही जीवन का लक्ष्य है।’

—आचार्य श्री नानेश

1. सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना—

स्वाध्याय का पाठ—“मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूगा।”

चितन-मनन-समता विभूति आचार्यश्री नानालालजी म सा ने “मैं सिद्ध बनूगा” इस भावना को समीक्षण ध्यान मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है, अत सिद्ध बनने का सकल्प करके हमेशा बहुत समय तक इस सकल्प को बार-बार दोहराकर इसे दृढ़ बनाना चाहिए और स्वय की (आत्मा की) सिद्ध होने की दशा की कल्पना करनी चाहिए। इससे मनुष्य के मन मे सासारिक बातो व कामो के चित्र मिट जाते है। उसका भौतिक जीवन आध्यात्मिक जीवन बन जाता है, यह सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना है। ये सिद्धो का अरूपी ध्यान जीवन लक्ष्य प्राप्त करने मे सहायक हो सकता है।

2 अह छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

“बडा मत समझो स्वय को॥

बडा समझो बडो को, गुरुजनो को, सतो को।

दयावान को, सत्यवान को, शीलवान को, धर्मी को॥”

चितन-मनन-स्वय को बडा अर्थात् बलवान, बुद्धिमान, धनवान व धार्मिक समझाना और अपने बडप्पन का प्रदर्शन करना अह (अभिमान) है। बडो को अर्थात् गुरुजनो को, सतो को, धर्मात्माओ को बडा समझाना व उनकी सुसेवा करना विनय है। अह का पश्चात्ताप करने से अह और पाप नष्ट हो जाते है। अह से हानि होती है और दुख मिलता है। विनय से बाहुबलीजी की भाँति मोक्ष मिलता है। “विनयवान भगवान है बनता।”

3. क्रोध छोड़ने के लिए स्वाध्याय करने का पाठ—

दोष मत दो निमित्त को, दोष दो तुम स्वय को।

निज कर्म फल ही है मिला, तब निमित्त वेचारा क्या करे॥

चितन—मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली
मुनि दृढ़ प्रहारी आदि ने निमित्त को दोष नहीं दिया, स्वय को ही दोषी
माना, इसलिए वे मोक्ष चले गये।

4. देहासक्ति (शरीर का मोह छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

“शरीर मेरा नहीं है, शरीर नाश्वान है, यह मुझसे अलग है, मैं इस
शरीर से अलग हूँ मैं (आत्मा) सारे शरीर मे फैला हुआ भी शरीर से अलग
हूँ।”

शरीर मोह छूटने के स्वाध्याय का दूसरा पाठ—‘सुख मे फूल मत
दुख मे रो मत, सिद्ध बनेगा।’

चितन—शरीर मेरा नहीं है, यह नाश्वान है, इससे सुख की ओर दुरा
की अनुभूति होती है। इन अनुभूतियों से बचने वाला सिद्ध बन जाता है।

5 आत्मध्यान का पाठ—

आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ मैं अमूर्त हूँ चेतन हूँ।

मैं अवद्य हूँ अदाह्य हूँ अजर-अमर हूँ शाश्वत हूँ।।

शक्ति पुज हूँ ज्ञानरूप हूँ आनन्दघन हूँ जीवन हूँ।।

निराकार हूँ निर्विकार हूँ विमल ज्योति हूँ आत्मा हूँ।।

6. परिवार-मोह छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

“परिवार अपना न हुआ न होगा।”

चितन—जीव अपने कर्मों का फल भोगने के लिए और अपना कर्ज़
चुकाने के लिए उपादान या निमित्त बन कर परिवार मे आता है और परिवार
वालों से लेना-देना समाप्त होने पर उनसे अलग हो जाता है। कर्ण, कर्त्ता
शकुन्तला, अजापुत्र आदि को जन्मते ही माता-पिता से अलग होना पड़ा।
बाली-सुग्रीव को, रावण-विभीषण को भाई कैसे माना जाए? उग्ररोन और
कस को, हिरण्यकश्यप और प्रहाद को पिता-पुत्र कैसे माना जाए? किंवद्दन
भी जीव का किसी भी जीव के साथ हमेशा के लिए स्थायी पारिवारिक सम्बन्ध
नहीं होता।

परिवार मोह छोड़ने का स्वाध्याय का दूसरा पाठ—
परिवार अपना नहीं बना रहता।

चितन—परिवार हमें हमारे कर्म दड़ से नहीं बचा सकता। परिवार हमें हमारे कर्मफल से मिलने वाले सुख से अधिक सुख दे नहीं सकता। उपादान—निमित्त-सबध अर्थात् लेना-देना समाप्त होने पर परिवार हमें अपने साथ रख नहीं सकता। आत्माओं में पारिवारिक सबध होते ही नहीं। परिवार मोह में मरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया बनी और परिवार मोह छूटते ही मरुदेवी माता मोक्ष को प्राप्त हुई।

7 लोभ छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

“सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा, धन का लोभी नहीं बनूगा।”

चितन—ससार में लोभ ही पाप और सब दुखों का मूल है। धन के लिए दूसरों का शोषण नहीं करना चाहिए। जैसे मधुमक्खियाँ फूलों से शहद इकट्ठा करती हैं वैसे ही गृहस्थ को साधारण लाभ (मुनाफा) या वेतन लेना चाहिए।

8 “एमो सिद्धाण, एमो सिद्धाण” या नमस्कार मत्र का बार-बार जप करना और ध्यान करना सब पापों को नष्ट करता है। इसमें एमो सिद्धाण पद का, सिद्धों की अटल अवगाहना का, सिद्धों के अमूर्त भाव का और उनके आठ गुणों का ध्यान किया जा सकता है।

9 ऊपर वाले ध्यान और चितन की विस्तृत सामग्री कषाय-मुक्ति तीसरा भाग, सातवां भाग और ध्यान एक अनुशीलन में दी गई है।

10 सद्भावना—“नहीं दुख हो, नहीं पतन हो। किन्तु सुख सग आत्मोन्नति हो।”

अर्थ—जिस काम को हम करे उनसे किसी को दुख नहीं पहुँचे और उनका और हमारा दोनों का पतन भी नहीं हो किन्तु दूसरों को सुख पहुँचे और साथ-साथ उनकी और हमारी दोनों की आत्मा का भी उत्थान हो, वही काम सद्भावना युक्त होगा।

11 दान में प्रथम स्थान अभयदान का है। इससे सुख और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। दान में सुपात्रदान और अनुकम्पा दान का भी बड़ा महत्व है। किसी भी जीव को अपनी आत्मा के समान समझ कर सहयोग दिया जाय या उसकी सम्यक् सेवा की जाय तो यह भी सुख और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। किसी भी प्राणी को बाहरी दीन-हीन, करुणाजनक

दयनीय स्थिति देखकर करुणाभाव से उसको कुछ दान दिया जाय तो उस करुणादान से भी पुण्य और शुभ कर्मों की प्राप्ति हो सकती है। यह उन्नीति पाने की भावना से किसी को कुछ दिया जाय तो उस दान का अशुभफल मिलना रुक जाता है। अशुभ भावना से दिए गए दान का फल बहुत बुरा होता है।

12 अनुकम्पा और करुणाभाव से दिए गए दान का यदि पात्र दुरुपयोग होता हो तो उसका अशुभफल दाता को नहीं मिलता किन्तु अरुन्धत्रिया करने वाले को मिलता है। दानदाता को तो उसकी भावना के अनुसार ही फल मिलता है। मनुष्य अपनी भावनाओं व कर्मों का फल ही पाता है, दूसरों की भावना व कर्मों का नहीं पाता।

13 परिवार के निमित्त से व्यवहार में हमे जो कुछ मिलता है उसे निश्चय दृष्टि में हमारे किए हुए कर्मों का फल ही होता है। उससे अप्रीत हमे परिवार से या किसी से भी नहीं मिलता क्योंकि अकृत का फल अप्रीत, जो काम हमने नहीं किया उसका फल बनता ही नहीं, पर-कृत का अप्रीत दूसरों के द्वारा किए हुए काम का फल उस काम के कर्ता को ही मिलता है, हमे नहीं मिलता।

“किया स्वयं का ही नर पाता, अधिक नहीं परिवार से पाता। पर-कृत का फल पर को जाता, अकृत का फल कुछ नहीं बनता।

14. धन—यदि हमारे अन्तराय कर्म का उदय हो तो कोई भी निमित्त मनुष्य या देव हमे कुछ नहीं दे सकता। यदि शुभ कर्म का उदय हो तो सुख और धन की वर्षा होने लगती है। साधारण पुरुषार्थ के बदले उदरपूर्ति तो हो जाती है परन्तु बहुत सुख और धन तो शुभ कर्म के उदय से ही आता है।

15 हरेक कर्म का फल भोगना पड़ता है। दिया हुआ व्यर्थ न जाता और लिया हुआ व्यर्थ नहीं आता।

16 यदि धन अशुभ कर्मों से भी आ सकता होता तो सासार में कभी मनुष्य गरीब नहीं रहता। अन्याय, अनीति, झूठ, कपट, हिंसा, पश्चात्याचार, अधर्म, अत्याचार और अशुभ कर्म तो सभी लोग कर रहे हैं फिर भी वे लोग शुभ कर्मादय के बिना गरीब ही रहते हैं। मनुष्य न शुभ पुरुषार्थ करे या अशुभ किन्तु धन आता है शुभ कर्मों के उदय होने तथा धन जाता है अशुभ कर्मों के उदय होने से।

17 अशुभ कर्म के उदय को रोकना और शुभ कर्म को उदय में लाना हमारे हाथ में नहीं, महापुरुषों की बात अलग है। वे कभी-कभी केवली समुद्घात के समय या कर्मों की उदीरणा करने के लिए उन कर्मों को उनके उदयकाल से पहले उदय में लाकर और भोग कर समाप्त कर लते हैं।

18 धन का आना और धन का चला जाना कर्मों का खेल है। अत मनुष्य को लोभ से न पड़कर हमेशा शुभ पुरुषार्थ ही करना चाहिए।

19 कभी-कभी झूट, कपट, हिंसा आदि से धन आ जाता है तो हम समझते हैं कि अशुभ पुरुषार्थ से धन आ गया है, इसलिये अशुभ पुरुषार्थ करते रहे। लेकिन यह हमारा भ्रम है। हमे पापकर्म से जो धन वर्तमान में मिलता है वह धन वास्तव में पापकर्म से नहीं मिला। वह तो पूर्व में किए हुए किसी शुभ कर्म के उदय से मिला है, जिसका हमे हमारे अल्पज्ञान के कारण पता ही नहीं चलता। इस शुभ कर्म के उदय के समय यदि हम अशुभ कर्म नहीं भी करे तो भी उस पूर्वकृत शुभ कर्म के प्रभाव से यह धन आ ही जाता है। शुभ कर्मों के प्रभाव से कभी-कभी चुपचाप बैठे हुए मनुष्य के पास भी धन आ जाता है। जैसे शालिभद्रजी या धन्नाजी को मिला करता था। तीर्थकरों को जब वे वार्षिक दान देते हैं उस समय उनके पास देवताओं द्वारा धन पहुँच जाता है, करोड़पतियों के घर में जो बच्चे जन्म लेते हैं वे बच्चे उसी समय करोड़ों रुपयों के मालिक हो जाते हैं। गोद या वसीयत आदि से भी बिना कमाए धन आ जाता है।

20 यदि दुख धन से दूर हो सकता होता तो ससार के लाखों धनवान मनुष्य दुखी नहीं रहते। वे धन से सुख खरीद लेते। हमारे द्वारा किए अशुभ कर्मों का और असाध्य रोगों का इलाज धन होते हुए भी नहीं हो सकता। अधिक धन के संग्रह से कुछ लोगों में बुरी आदतें पड़ जाती हैं और घर में फूट और कलह हो जाती है। चोर, डाकुओं, धोखेबाजों और हत्यारों का भय बना रहता है।

* 21 सुख मिलता है सातावेदनीय नामके शुभ कर्म के उदय से। हम देखते हैं और सुनते हैं कि हजारों साधारण और गरीब मनुष्य, मजदूर आदि धन के अभाव में भी सुखी हैं। उसका कारण उनके सातावेदनीय कर्म का उदय ही माना गया है।

22 लोगों का यह भ्रम है कि धन के बिना बहुत से काम रुक जाते

है किन्तु जो शुभ कर्म माता के गर्भ के अन्दर या अड़ो के अन्दर भी है की रक्षा करते हैं और खुले आकाश में पेड़ों पर घोसलों में छोटे-छोटे दृश्य की रक्षा करते हैं और पहाड़ों की चट्टान आदि में भी चीटी आदि जीवन भोजन पहुँचाते हैं। वे शुभ कर्म ही मनुष्य से शुभ पुरुषार्थ करवान्कर उन्हें जीवन की रक्षा करते हैं। यह शरीर कर्मों की ही देन है। कर्म ही इन्हें सरक्षक है और वे ही शरीर की रक्षा करते हैं। यदि मनुष्य के अर्थ-अन्तराय असातावेदनीय कर्मों का उदय हो तो उसे बहुत समय तक निराहार रहना पड़ सकता है। प्राणी ने जैसे कर्म किए हैं उन्हीं कर्मों के फल के अनुसार उसके जीवन की सारी सुव्यवस्था या कुव्यवस्था होती है। इसीलिए अशुभ कर्मों से बचना चाहिए और शुभ कर्म ही करने चाहिए।

23 लोग अपनी कन्या के विवाह के लिए पाप आदि करते हैं कमाते हैं, किन्तु लड़कियों के सुख या दुख की व्यवस्था उनके दर्ते अनुसार ही होती है। धनवान् ससुराल में भी रोग कलह आदि कई उन्हें से दुख मिल सकता है और गरीब ससुराल में भी पुण्यवान् लड़की को दुख सुख मिल सकता है। माता-पिता का कर्तव्य है कि लड़की के लिए उन्हें वंश व घर की समानता वाला अच्छा घर और योग्य वर तलाश करे यिन् उसको दहेज देने के लिए झूठ, कपट आदि पाप कर्मों से धन कमाएँ उसको दहेज देने का विचार उचित नहीं है। जिन कर्मों ने लड़की को उन्हें शरीर दिया है या जिस परिवार में जन्म दिलाया है, वे कर्म ही उसके द्विषय होने या न होने या दीक्षा लेने आदि की व्यवस्था करते हैं। चिकित्सा लिए आवश्यकता होने पर धन आदि की व्यवस्था भी उन्हीं शुभ कर्मों प्रभाव से ही हो जाती है।

24 यदि धन ही जीवन का लक्ष्य होता तो शालिमद्रजी, धन्त जम्बू स्वामी, भरत चक्रवर्ती और अनेक राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार आदि धन छोड़कर दीक्षा नहीं लेते, वास्तव में त्याग ही मोक्ष का मार्ग है।

25 जिन लोगों को अपने परिश्रम के बिना माता-पिता द्वारा कम हुआ धन विशेषकर माता-पिता द्वारा पाप कर्मों से कमाया हुआ धन में मिलता है, उनमें से अधिकाश लोग मानवता से भी गिर जाते हैं। उनका भारी पतन हो जाता है।

26 प्रत्येक मनुष्य या जीव का सरक्षक उसका परिवार नहीं ही उसका सरक्षक कार्मण शरीर ही होता है। वह कार्मण शरीर ही जीव

उस जीव की इच्छा न होते हुए भी उससे अच्छा या बुरा पुरुषार्थ करवाता है, उसको हितकारी या अहितकारी निमित्त से मिलाता है, उसको क्षणभर में अमीर या गरीब बना देता है, उसे कभी सुखी या कभी दुखी बनाता है और उसके जीवन की सारी सुव्यवस्था या कुव्यवस्था करता है। अत शुख या दुख आने पर भी किसी से भी राग-द्वेष नहीं करना चाहिए क्योंकि हमारे अपने कर्मों से ही हमें सुख-दुख मिलता है।

27 कभी-कभी किसी पूर्वजन्म के पाप से धन का आना रुका हुआ हो तो वर्तमान के शुभदान, पुण्य, धर्म या शुभकर्म करने से धन की वर्षा होने लगती है।

28 “बाहर कुछ नहीं, सब कुछ भीतर।

रक्षक भीतर, भक्षक भीतर।

चितन—शरीर के भीतर हमारी आत्मा के साथ चिपके हुए सूक्ष्म शुभ कर्म पुदगल सज्जनों को हमारे सुख का निमित्त बनाते हैं और अशुभ कर्म पुदगल दुर्जनों को हमारे दुख का निमित्त बनाते हैं। इसलिए किसी से राग-द्वेष करना भूल है।

29 अप्रत्यक्ष रूप से धर्मात्मा, पुण्यात्मा, सच्चा समाज सेवक उस मनुष्य को समझा जाय जो सामाजिक रीति-रिवाजों में जैसे विवाह आदि में दहेज, रोशनी, बाजा, बहुत बड़ी बारात, बहुत खर्चीले भोजन आदि की व्यवस्था में धन के खर्च को घटाता है जिससे हजारों साधारण मनुष्यों को खर्च घट जाने से अनीति, पाप और हिसा द्वारा धन कमाने के लिए मजबूर नहीं होना पड़े।

30 ज्ञानवार्ता—1 शुभ कर्मों के प्रभाव से शत्रु द्वारा की हुई हानि लाभ में बदल जाती है। जैसे—कौरवों द्वारा दिए गए जहर से भीम को लाभ ही हुआ। 2 प्रद्युम्नकुमार के जन्मते ही देवता द्वारा हरण किया जाना और उसे जगल में भारी पथर की शिला के नीचे दबाया जाना प्रद्युम्नकुमार के लिए बहुत लाभ का कारण बना। 3 मुनि गजसुकुमालजी को उनके सिर पर अंगारे रखे जाने का दड निन्यानवे लाख भव के बाद मिला। 4 अच्छी भावना से की गई सम्यक् सेवा का फल बहुत बड़ी मात्रा में मिलता है। 5 सत्य बोलने के कारण महाराजा हरिश्चन्द्र में तपस्वियों और देवताओं से भी अधिक ताकत थी। 6 अहिसा, सयम, तप और धर्म पालने वालों को देवता भी नमस्कार करते हैं। 7 अपने माता-पिता, वृद्धों और सतों की सेवा

और उनको प्रणाम करने से पुण्य बढ़ता है। 8 मनुष्य जब तक परिवार रहे तब तक यथाशक्ति परिवार की आवश्यक सम्यक् सेवा करता रहे इस परिवार का और ससार का कर्ज उत्तरता है। 9 प्रसन्नचन्द्र मुनि ने दूसरे समय में तीव्र अशुभ भावों से सातवे नरक पहुँचने वाले कर्म पुद्गलों द्वारा उपार्जन कर लिया किन्तु उनका बधः होने से पहले ही उन्हे अपने ही पश्चात्ताप के भावों से नष्ट करके केवलज्ञान उपार्जन कर लिया और उन्हें को प्राप्त किया। 10 धन साथ नहीं जाता किन्तु शुभदान के द्वारा दिए हुआ धन शुभ कर्म रूप में उसी जन्म में या मरने के बाद अलगे जन्म सुख पहुँचाता है। 11 श्रीपाल राजा का कोढ़ और मैनासुन्दरी का दुर्घटना करने से दूर हो गया। 12 जिस मनुष्य के पास धन ठहरने का योग नहीं है, तीर्थकरों द्वारा उसको दिया गया दान भी देवताओं द्वारा उसकी मुर्ति द्वारा छीन लिया जाता है। 13 तन्दुल मत्स्य एक जीव को भी नहीं भारत में भी महादुर्भावना के कारण सातवे नरक में जाता है। 14. किसी भी जीव थोड़ा-सा दुःख दिए बिना भी केवल बुरी भावना से भी मनुष्य पाप करने हैं और छोटे-बड़े जीवों की रक्षा करने की भावना से भी बहुत बड़ा पुण्य करना लेता है। 15 पाप करके खुश होने वाला मनुष्य अधिक पाप करने वाला है। 16 मनुष्य से पाप हो जाने पर उस पाप के लिए पश्चात्ताप करने वाला का दुःख दूर नहीं कर सके। 17 गृह लोढ़ा के पिता राजा थे, उनके पास बहुत धन था, फिर भी धन से मृगा लेने का दुःख दूर नहीं कर सके। 18 जिस मनुष्य का धन और अन्न दूसरों द्वारा उचित उपयोग में नहीं आता वह मनुष्य सहज में ही पापी बन जाता है। 19. किसी का कुछ भला करके, अहकार नहीं करना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि मैं इस प्राणी का कर्जदार था और आज मेरा कर्ज दर्जा गया। 20. यदि मनुष्यों में कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) न हों तो उपार्जित अशुभ कर्मों का बध नहीं होता। वे तुरन्त झड़ जाते हैं। 21 'रूप-शील, शील' ऐसा जप नित्यप्रति करने से मनुष्य शील पालने में दृढ़ रुद्ध है। 22 'समता, समता, समता' ऐसा हमेशा जप करने से मनुष्य समता रुद्ध बनता है। 23 'सत्य, सत्य, सत्य' ऐसा प्रतिदिन जप करने से मनुष्य सत्यवान बनता है। 24. 'क्षमा, क्षमा, क्षमा' ऐसा नित्य जप करने से मनुष्य का क्रोध नष्ट हो जाता है। 25 हमेशा सन्ध्या के समय या किसी भी समय या उसी समय दिन भर किए हुए पापों का पश्चात्ताप किया जाय तो दूसरे

प्राय नष्ट हो जाते हैं। 26 अशुभ कर्मों का बध अहकार के कारण निकावित बन सकता है। 27 किसी से अपनी अनावश्यक सेवा करना पाप है और दूसरों की आवश्यक सुसेवा करना धर्म है। 28 कपट से किसी के पास धन नहीं आता। यदि आता है तो ठहरता नहीं, यदि ठहरता है तो वह धन उसे बरबाद करके चला जाता है। 29 शुभ कर्मों के उदय होने पर ही देवता, तात्रिक या मित्र आदि सुख के निमित्त बन सकते हैं। 30 मनुष्य चाहे डॉक्टर, इजीनियर, वकील या बहुत् बड़ा व्यापारी आदि कुछ भी बन जावे किन्तु शुभ कर्मों के उदय के बिना उसे स्वस्थ शरीर, सुखद परिवार, शुभचितक, मित्र, मन की शांति, धन और सुख नहीं मिलता। 31 सदा दूसरों का भला करने वाला तीर्थकर बन जाता है। 32 टेलीविजन से आँखे बहुत जल्दी खराब हो जाती हैं। कम से कम बारह फुट दूर बैठकर देखना चाहिए। 33 बड़ों की तथा अनुभवी लोगों की राय लेने वाला अहकार, दुख व हानि से बच जाता है। 34 मनुष्य अपने परिवार वालों के कर्म को नहीं बदल सकता इसलिए वह व्यर्थ में ही उनके लिए चिंता करता है। 35 गृह कार्य के कार्य का बैटवारा हो जाने से सदस्यों में मन मुटाव नहीं होता। 36 माता-पिता द्वारा घर की जमीन और सम्पत्ति का बैटवारा हो जाने से उनकी सतान में झगड़ा नहीं होता। 37 मनुष्य के बत्तीस दॉत है इसलिए भोजन के हर एक ग्रास को बत्तीस से ज्यादा बार चबा-चबा कर ही खाना चाहिए। दूध आदि पीने की चीजों को धीरे-धीरे पीना चाहिए। 38 जो मनुष्य दूसरों में गुणों को ही देखता है और उनकी सराहना करता है, वह गुणवान और विनयवान बन जाता है।

31 इस पुस्तक के प्रारम्भ में दिए गए आठ पाठों का प्रतिदिन नियमित रूप से स्वाध्याय करने के साथ-साथ उन्हें आचरण में उतारने का अभ्यास कीजिए और बार-बार दोहराइए, चितन कीजिए और याद रखिये।

1 चौथा पाठ—“शरीर मेरा नहीं है। यह नाशवान है।” भोजन, रोग, चोर, दुख-दर्द, तप, उपसर्ग, मनोरजन या खुशी आदि के समय इन्हे याद रखने से दुखानुभूति-सुखानुभूति, हर्ष-विषाद और राग-द्वेष से मनुष्य बच जाता है और नये कर्म नहीं बधते।

2 छठा पाठ—परिवार अपना हमेशा बना नहीं रहता। परिवार वालों के साथ या उनके बारे में बातचीत या किसी कार्य के समय इस पाठ को दोहराने और याद रखने से परिवार मोह छूट जाता है।

3 दूसरा और तीसरा पाठ—“बड़ा मत समझो स्वय को, दोष नः
निमित्त को।” इस पाठ से अहकार और क्रोध दूर होते हैं।

4 सातवा पाठ—“धन का लोभी नहीं बनूगा।” इसे व्यापार दुःख-
वेतन, मजदूरी, फीस, व्याज आदि के और क्रय-विक्रय में लाभ लेते रहे
याद रखने से लोभ लालच नहीं होता। ~

5 पहला, पॉचवा, आठवा पाठ—“मैं आत्मा हूँ, मैं सिद्ध दनूँ।
“एनमो सिद्धाण।” इनका स्वाध्याय, जप और ध्यान सबैरे शाम रहे
जब-जब समय मिले तभी करना चाहिए।

इन आठों पाठों का स्वाध्याय और चितन सिद्ध पद प्राप्ति का रहा
है।

32 ग्रन्थ पथ सब जगत के, बात बतावत तीन,
राम हृदय मन मे दया, तन सेवा मे लीन।

— जवाहर विद्यार सार की दो पर्टी-

33 भौतिक सुख मे फूल मत, दुख मे रो मत।

सिद्ध बनेगा, इस बात को हर पल याद रख। ||

34 भौतिक सुख या धन आदि प्राप्त होने पर फूलने या खुश होने
के बजाय धन्नाजी और जम्बू स्वामी की तरह यह सोचना चाहिए कि इससे
मेरी आत्मा को तो कुछ प्राप्त नहीं हुआ है। मैं हर्ष किस बात का मन
और कुछ खो जाने या दुख आने पर रोने के बजाय मुनि गजसुनु
आदि की तरह यह सोचना चाहिए कि इससे मेरी आत्मा को तो कुछ
नुकसान नहीं हुआ है। अत मैं दुख क्यों करूँ।

धन तथा सुख प्राप्ति

धर्म के मर्म को जानने वाले और आध्यात्मिक जीवन विताने वाले र
पुरुषों को छोड़कर ससार के प्रायः अधिकाश लोग दिन-रात धनोपार्जन
लिए भाग-दौड़ करते हैं फिर भी सब धनवान नहीं बनते हैं। इस प्रकार
दौड़ लगाने वाले मे कुछ लोग तो ऐसे भी मिलेंगे जिनको पेट भरने दें
पूरा भोजन भी नहीं मिलता।

जिन लोगों ने पूर्व जन्मो मे या इस जन्म मे खटमल या पर-रह
जन्म की तरह दूसरों का खून चूसा है, गरीबों का शोषण विद्या
सीधे-साधे लोगों को उगा है, दूसरों का धन लूट-लूट कर उन्हें दुः

वनाया है, केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति की है और दूसरों के काम में बाधा और अन्तराय पहुँचाई है, उन लोगों ने अन्तराय कर्म और असातावेदनीय अर्थात् दुख देने वाले अशुभ कर्मों का बध किया है। उनको उनके अशुभ कर्म और अन्तराय कर्म धन और सुख को प्राप्ति नहीं होने देते।

अन्तराय कर्म करने वालों को बाधा ही बाधा मिलती है। दूसरों के धन लाभ में अन्तराय डालने वाले को लाभान्तराय के कारण धन का लाभ नहीं होता। दूसरों के भोजन में अन्तराय डालने वाले को भोगान्तराय के कारण धन होते हुए भी भोजन की प्राप्ति नहीं होती है। वह यीमार पड़ जाता है और कुछ खा नहीं सकता। दूसरों के शिक्षा और ज्ञान प्राप्ति में अन्तराय डालने वाले को विद्या और ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती।

अन्तराय कर्म में महान शक्ति है। तीर्थकर ऋषभदेव को भी बारह महीनों तक निराहार (भूखा) रहना पड़ा। तीर्थकर महावीर को भी पाँच महीने सताईस दिन तक अभिग्रह पूरा न होने के कारण निराहार रहना पड़ा। जब तक अन्तराय कर्म की अवधि समाप्त नहीं होती तब तक दिन-रात कठोर परिश्रम करने पर भी मनुष्य को धन और सुख का लाभ नहीं होता।

धन और सुख उन्हे मिलता है जो दूसरों को दान, भूखों को भोजन, प्यासों को पानी, वस्त्रहीन को वस्त्र, आश्रयहीन को आश्रय, रोगी को दवा, दुखी को सात्वना देते हैं और निराश्रित, पीड़ित, विकलाग, रोगी आदि की सेवा करते हैं। ऐसे परोपकारी लोगों में भी जो अधिक पुण्य करते हैं उनको साधारण पुरुषार्थ करने पर और कभी-कभी बिलकुल पुरुषार्थ नहीं करने पर भी केवल पूर्वकृत पुण्य के कारण धन और सुखँ की प्राप्ति हो जाती है। शालिभद्र को उनके पूर्वकृत महापुण्य के कारण परिश्रम किए बिना भी देवलोक से धन आता रहा। धन्नाजी को साधारण पुरुषार्थ से ही हमेशा धन की प्राप्ति होती रही। तीर्थकरों को वार्षिक दान देने के लिए पूर्वकृत महापुण्य के कारण देवों द्वारा बिना किसी परिश्रम के धन प्राप्त होता था।

करोड़पति के घर में जन्म लेने वाला बच्चा जन्म लेते ही करोड़ों रुपयों का स्वामी बन जाता है। कारकुण्ड जिसका बचपन चाड़ाल के घर में थीता, उसको भी आसानी से ही राज्य मिल गया। किसी को वसीयत से और किसी को जमीन में गड़ा हुआ धन मिल जाता है। इस धन की

प्राप्ति मे पुरुषार्थ और बुद्धि प्रधान नही है। केवल धन पाने वाले के कर्मों की प्रधानता रहती है।

धन की प्राप्ति हो न हो किन्तु मनुष्य के जीवन की रक्षा भी इस पुरुषार्थ किए बिना भी उसके पूर्वकृत पुण्यो से होती है। जैसे कौरकों द्वीम को जहर खिलाने के बाद भी उसके जीवन की रक्षा और नहादल प्राप्ति भी उसके पूर्वकृत पुण्य के कारण हुई। प्रद्युम्नकुमार की रुग्न उनेक विद्याओं की प्राप्ति इसी प्रकार हुई। अर्जुनमाली के मुदगर से र सुदर्शन की रक्षा भी केवल उसके पूर्वकृत पुण्य से हुई।

जिस पुरुषार्थ से और बुद्धि से मनुष्य धन कमाता है वही पुरुष और बुद्धि अशुभ कर्मदय के कारण धन के विनाश का कारण बन जाता है। वह धन किसी धूर्त ग्राहक द्वारा ठग लिया जाता है, बाजार के भ गिरने से उसमे हानि हो सकती है, वह धन आग मे जल सकता है चोर-डाकुओ द्वारा छीना जा सकता है या मनुष्य वीमार पड जाता है जै उसका सारा धन रोग खा जाता है। यदि मनुष्य के भाग्य मे धन की प्राप्ति न हो तो तीर्थकरो द्वारा दीक्षा लेने से पहले दिया गया दान भी देवता द्वारा बीच मे ही छीन लिया जाता है। यदि अन्तराय कर्म और अशुभ द

कारण किसी मनुष्य के उपादान (भाग्य) धन के आने या ठहरने का दो हो तो संसार की कोई भी शक्ति या स्वर्ग के देवता भी उसे धन नही सकता। मनुष्य धन कमाने के लिए अपने पुरुषार्थ और बुद्धि का अन्तर्याकरता है किन्तु यह उसका भ्रम ही है क्योंकि “बुद्धि वैसी ही वन जर्त जैसी कर्मों की गति चाहती।” बुद्धि तो प्राय कर्मों के खेलने के लिए ए सुन्दर मैदान तैयार करती है। जिस प्रकार साइकिल के दोनों पहिये हैं उ के साथ ही मुड़ते रहते हैं उसी प्रकार बुद्धि और वल रूपी दोनों पहिये व रूपी हैडल के साथ-साथ ही मुड़ते रहते हैं। बुद्धि और वल की अपेक्षा व मे अधिक शक्ति है।

यह मनुष्य का केवल भ्रम ही है कि कपट या हिसा या अशुभ उगासे धन कमाया जा सकता है या जाते हुए धन को रोका जा सकता, कपट से यदि धन आता तो कोई भी मनुष्य गरीब नही रहता। कपट से क आता नही, यदि आता है तो ठहरता नहीं, यदि ठहरता है तो वह धन अ खामी को बरबाद करके चला जाता है।

कर्म सिद्धात का यह अटल नियम है कि मनुष्य दूसरों को सुख या दुख, अन्न या धन जो कुछ जैसा देता है वह वैसा ही सुख या दुख अन्न या धन उसी रूप में या अन्य किसी रूप में पाता है और यदि एक देता है तो उस दान के बदले में सौ या हजार या लाख या करोड़ गुना पा सकता है। सेठ धनावह के घर में तीर्थकर महावीर को उड्ड के बाकले बहराये गये। उसके बदले में वहाँ सोने की वर्षा हो गई। धनाजी को पूर्वभव में साध्वीजी को खीर बहराने के बदले धन, सुख और सिद्ध पद की प्राप्ति हुई। जो दान देता है, शील पालता है, तप करता है, समता भाव रखता है, शुभ भावना भाता है, स्वाध्याय करता है और दूसरों की सम्यक् सेवा करता है वह उसके बदले में धन, सुख, स्वर्ग और मोक्ष भी पा सकता है।

नहीं रोऊंगा, सिद्ध बनूगा

आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म सा ने अपने एक प्रवचन में फरमाया है कि जीव की जैसी भावना उसकी मृत्यु के समय होती है, वैसी ही उसकी गति बन जाती है। महापुरुष तो अपने गहरे ज्ञान से और मर्यादित जीवन से महाब्रतों का पालन करते हुए अपनी मति और गति सुधार लेते हैं, किन्तु हम साधारण श्रावक हमेशा बहुत समय तक शरीर की आसक्ति और परिवार मोह छूटने की भावनाओं का स्वाध्याय करे और अभ्यास भी करे तो हमारी भी मति और गति सुधर सकती है। स्वाध्याय सबसे बड़ा तप है और इसमें भावनाओं को सुधारने की महान शक्ति है।

मनुष्य को साधारणतया उसके अन्तिम समय में या तो शरीर का कष्ट सताता है या परिवार का मोह बॉध रखता है। शरीर का मोह छोड़ने के लिए इस प्रकार का चितन किया जा सकता है—“यह शरीर मेरा नहीं है। इसकी रक्षा होना या नहीं होना कर्मों के हाथ में है।” इसके लिए स्वाध्याय इस प्रकार किया जा सकता है—“शरीर के कष्ट व दुखों के समय चिता नहीं करूगा। मुनि गजसुकुमाल शरीर कष्ट से नहीं रोये, वे सिद्ध बने। मैं भी सिद्ध बनूगा।”

परिवार का मोह जीव को ससार में बॉधे रखता है। कभी-कभी नरक में भी भेज देता है। परिवार का मोह छोड़ने के लिए इस प्रकार का चितन करना चाहिए—“परिवार बधन किसी को कर्मों के दड से नहीं बचा सकते।

महासती अजना कहती है कि मेरे अशुभ कर्मों ने उदय में आकर दृढ़-
तक मुझे व मेरे पतिदेव को दूर-दूर रखा। उसके बाद मेरे सम्मान-
व पीहर वालों को भी बहका दिया और मुझे घर से निकलवा दिया। और
धन भी किसी को सातावेदनीय कर्मों के उदय के बिना सुन नहीं
सकते। परिवार के और ससार के सभी जीवों को उनके कर्म अद्वेष-
कर्मों में बद रखते हैं। उन कर्मों की आज्ञा के बिना कोई किसी दृढ़-
भी सहायता नहीं कर सकता है।” परिवार की चिता ओर मोह छोड़ने-
ही सिद्ध बनता है। इसके लिए यह स्वाध्याय किया जा सकता है—
जीवों का भला या बुरा करना या उनको सुख या दुख देना उन कर्मों
कर्मों के हाथ में है। उनके परिवार के हाथ में नहीं है। मैं परिवार-
छोड़गा और मरुदेवी माता की तरह सिद्ध बनूगा।”

संक्षेप में अपनी मति और गति सुधारने के लिए इस प्रकार तर-
किया जा सकता है—(क) शरीर कष्ट में और दुखों में नहीं रोड़गा, नि-
बनूगा। (ख) परिवार मेरे कर्मों की स्वीकृति के बिना मेरी सहायता नहीं
सकता। (ग) मरुदेवी माता परिवार मोह छोड़कर सिद्ध वनी।

इनके साथ-साथ जीवन को ऊँचा उठाने व सिद्ध-पद पाने दें।
इस प्रकार का चितन व स्वाध्याय किया जा सकता है—(क) “दोष दूर
निमित्त को” इस भावना के स्वाध्याय से मनुष्य क्रोध से मुक्त हो जाता।
(ख) स्वय को अधिक बुद्धिमान् या धनवान् या धर्मात्मा समझने-
अहकारी बन जाता है और वह फूल उठता है। बाहुबलीजी ने अट्ठ-
छोड़ा और वे केवली और बाद मेरे सिद्ध बने। (ग) “णमो सिद्धाणः
सिद्धाण” व नवकार का ध्यान करने वाला सब पापों से मुक्त हो जाता
और (घ) अपने किए हुए पापों का पश्चात्ताप करने वाला भी अपने पाप
प्राय नष्ट कर देता है। पश्चात्ताप करन से महासती मृगावतीर्जी,
चण्डरुद्राचार्य और मुनि कूरगड़ुक को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।



‘समीक्षण ध्यान’ मेरी दृष्टि में

कथाय मुक्ति नवा भाग
समीक्षण ध्यान एव स्वाध्याय सग्रह

1 आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म सा ने समता दर्शन और समीक्षण ध्यान पर प्रकाश डालकर मानव जीवन का बहुत उपकार किया है। समीक्षण ध्यान का अर्थ है—अपने आत्मा के उद्घार और सुधार हेतु अपने विचारों और कार्यों को देखना, अपने पाप और पुण्य का हिसाब देखना, पिछले किये हुए अशुभ कर्मों से बचते हुए अपने जीवन का नवनिर्माण और सिद्ध पद प्राप्त करने के लिए स्वाध्याय और अध्यास करना।

2 समीक्षण ध्यानकर्ता का यह लक्ष्य होता है कि उसकी विचारधारा व आचरण ऐसे बन जावे कि उसके शरीर, वचन व मन से दूसरों का वुरा न हो, किसी की हिसा न हो। उसके किसी भी कार्य से दूसरों को दुख नहीं हो, उनका पतन नहीं हो, उनको सुख मिले और उनकी आत्मा का उत्थान हो।

न ही दुख हो न ही पतन हो।
किन्तु सुख सग आत्मोन्नति हो ॥

इसके साथ ही साथ स्वयं की आत्मा का उत्थान हो और इसके लिए अपनी तरफ से कुछ त्याग करने की जरूरत हो तो वह त्याग करे।

यह अखेद, अद्वेष, अभय, अभिमानहीन, मोहहीन, चिताहीन, रागहीन वनने की साधना है। वह बाहर की प्रतिकूल या अनुकूल स्थितियों से प्रभावित नहीं होता और भीतर से विचलित नहीं होता। वह पूर्ण वीतराग वनने का प्रयास करता है। ये कार्य भी तभी हो सकता है जबकि हम अपने जीवन के लक्ष्य को समझ ले और स्वाध्याय, जप द्वारा उसे पुष्ट बना ले।

3 इस दृष्टि से समीक्षण ध्यान को तीन भागों में बाटा जा सकता है। सर्वप्रथम मानव जीवन के लक्ष्य को समझना और उसे पुष्ट करना। दूसरे नम्बर पर अपने पहले किए हुए अशुभ कर्मों को पश्चात्ताप द्वारा ओर समतापूर्वक भोग-भोग कर उनको क्षय करना। तीसरे नम्बर पर नये अशुभ

कर्म से बचते हुए जीवन का नवनिर्माण करना अर्थात् अपने धन आदि की चिंता, मोह से बचना।

4 लक्ष्य का स्थिरीकरण—मनुष्य को धन और सुख की चिन्ता सताती है तथा विद्वानों और पडितों को अपनी प्रसिद्धि और पूजा लगी रहती है। मनुष्य को धन और सुख के सम्बन्ध में छ दातां इध्यान रखना चाहिए, जिससे वह धन व सुख के लोभ से दब न (क) जाने वाला धन चला ही जाता है। इसे चले जाने से रोकने वाले ससार में नहीं है। अमीर आदमी भी पापोदय से गरीब हो जाता (ख) अन्तराय कर्म का उदय हो तो कठिन से कठिन मेहनत करने पर धन नहीं आता। कभी-कभी तो बुद्धि विपरीत बनकर मनुष्य के धन सुख दोनों का विनाश कर देती है। (ग) धन होते हुए भी सातावेदनीय के उदय के बिना सुख नहीं मिलता। (घ) सातावेदनीय कर्म के उदय से साधारण आमदनी होते हुए भी मनुष्य सुखी बना रहता है। (ङ) किसी काम के होने का योग नहीं हो तो अपार धन के होते हुए भी दर्द नहीं बनता। (च) यदि किसी काम के बनने का योग हो तो धन नहीं हुए भी कहीं से सहायता मिलकर वह कार्य बन जाता है। इन छ दाता इध्यान रखकर मनुष्य को धन और सुख का लोभ छोड़ना चाहिए और को हमेशा दान और शुभ कार्यों में लगाना चाहिए। दान से धन आप दोनों ही मिलते हैं। दान में महान् शक्ति है।

5 विद्वान्, पडित और धार्मिक लोगों को प्रसिद्धि और पूजा सताती है, जिससे अहम् भाव से उनकी बुद्धि विपरीत बनकर उनका और विनाश करा देती है।

6 मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है सिद्ध पद पाना और सिद्ध पद पा सकता है, जो धन और सुख का लोभ छोड़ दे और प्रसिद्धि व पूजा लोभ छोड़ दे।

7 पुराने अशुभ कर्मों का व पापो का क्षय जिस प्रकार किसान में बीज बोता है, उससे पहले वह खेत को साफ करता है। इसी प्रयत्न में पद पाने की इच्छा करने वाला प्राणी अपने पुराने पापो को याद करने उनके लिए पश्चात्ताप व प्रायश्चित्त करता है और उदय में आने पर को समतापूर्वक भोग-भोग कर क्षय करता है।

8. जीवन का नवनिर्माण—समीक्षण ध्यान में तीसरी मुख्य दाता नवीन कर्मों को आने से रोक देना। यह तभी हो सकता है जबकि दाता

रूपाय को और मोह-ममता को छोड़ दे। इस कार्य को करने के दो उपाय हैं। प्रथम उपाय है स्वाध्याय और दूसरा उपाय अभ्यास। साधारणतया शरीर की आसक्ति, परिवार का मोह, क्रोध और अहकार इन चारों अवगुणों पर छोड़ने से जीवन का नवनिर्माण हो सकता है और वह कभी न कभी सिद्ध पद पा सकता है।

9 शरीर की आसक्ति को छोड़ने के लिए नीचे लिखी भावनाओं का हमेशा वर्षों तक स्वाध्याय, चितन करना चाहिए।

(क) दुख में रो मत, भौतिक सुख में फूल मत, सिद्ध बनेगा।

(ख) शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूगा सिद्ध।

(ग) मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूगा, सिद्ध लोक में सिद्ध दशा में अटल अवगाहना प्राप्त करूगा।

(घ) शरीर कष्ट में, उपसर्गों में रोना छोड़ो, सिद्ध बनोगे। मुनि औजसुकुमाल नहीं रोये, वे सिद्ध बने।

10 परिवार के मोह से मुक्ति पाने के लिए इन भावनाओं का स्वाध्याय केया जा सकता है।

(क) मनुष्य के उपादान में अर्थात् भाग्य में यदि धन और सुख पाने योग नहीं हो तो उसे परिवार से भी धन और सुख नहीं मिलता है।

(ख) कर्म परिवार वालों को क्षण भर में दूर-दूर कर देता है।

(ग) कौन है अपना ? कोई नहीं अपना।

11 क्रोध से मुक्ति पाने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय किया जा सकता है—दोष मत दो निमित्त को, यह कर्म-फल ही है मिला, निमित्त बेचारा क्या करे।

12 अहकार से मुक्ति पाने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय किया जा सकता है। अहकार बुद्धि को विपरीत बना कर बड़ो-बड़ो का विनाश कर देता है।

बड़ा मत समझो स्वय को।

बड़ा समझो बड़ो को, गुरुजनो को, संतों को।

13 सक्षेप में समीक्षण ध्यान के लिए प्रतिकूल को अनुकूल और अनुकूल को प्रतिकूल बनाने का स्वाध्याय कीजिए और इसकी कला सतों से सीखिए और उनका अभ्यास कीजिए। रो मत दुख में, फूल मत सुख में, सिद्ध बनेगा। इस भावना का भी हमेशा बहुत देर तक स्वाध्याय कीजिए।

14 ध्यान हमेशा निश्चित समय पर शातिपूर्ण एकता है : सुखपूर्वक बैठकर करना चाहिए। किन्तु जीवन का नवनिर्माण करने में भावना को अनाशक्त बनाने वाला, वीतराग भाव को मजदूत करने में समीक्षण ध्यान 24 घंटों में जब-जब भी समय मिले तब-तब ही दिया जा सकता है। इसके लिए स्थान की भी कोई पाबंदी नहीं होनी चाहिए। दूर से घर में, दुकान में या बाहर कही भी किया जा सकता है। यह कमज़ोरी या बीमारी की अवस्था में लेट कर भी किया जा सकता है।

याद रखिए—

शरीर की आसक्ति छोड़नी है, परिवार का मोह छोड़ना है क्रोध रहना है और अहंकार से दूर रहना है। इन चार वातों से जीवन निर्माण हो सकता है।

प्रतिकूल और अनूकूल

जो बात हमें अच्छी नहीं लगे, उसे हम प्रतिकूल रियति कहता है। ऐसे समय में हमारे मन में दुर्भावना आती है और हम हिसक पिनार आर हिसक काम करने लगते हैं। जो मनुष्य प्रतिकूल को अनुकूल और अनुकूल को प्रतिकूल समझने की कला को सीख लेते हैं वे मनुष्य रामीक्षण ध्यान की साधना कर सकते हैं। मृत्यु, रोग, चोट, अपमान, हानि आदि को रामण हमें दुख होता है और हम हिसक वन सकते हैं। ऐसे समय में हम दूर दुख की अनुभूति को भुलाना, दुख को समतापूर्वक राहने के लिए अपने विचारों को स्वाध्याय द्वारा दूसरी तरफ मोड़ देना ही प्रतिकूल को अनुकूल बनाना है।

उस समय यह स्वाध्याय करना चाहिए कि—1 यह दुख, दुर्दण है। 2 यह हमारे कर्मों का फल है। 3 इसे तो भोगना ही पठेगा। 4 इस बचने का कोई उपाय नहीं है। 5 इससे आत्मा का कुछ विगड़ा नहीं है। 6. इससे आत्मा का लाभ ही होता है। 7 इस समय समता रहने से कटते हैं। 8 कर्म कटने से जीव को सिद्ध पद मिलता है।

महासती चन्दनबाला को जब मूला सेठानी ने उसका रितर मुक्ति दिया तो उसे कमरे में बद कर दिया था, तब चन्दनबाला ने यहीं भावना भर्या दिया लिए यह अच्छा हुआ। मुझे तपस्या करने और स्वाध्याय करने में समय मिल गया। धन्य है मूला सेठानी, उसने मुझे मेरे कर्म दर्शाया। सहायता दी।

इसी प्रकार अनुकूल को प्रतिकूल समझ कर सुख भोगों से बधने वाले कर्मों से बचा जा सकता है। उस समय इस प्रकार स्वाध्याय करना चाहिए कि-

1 यह सुख सच्चा सुख नहीं है। 2 यह आर्तध्यान है। 3 इद्रियों से मिलने वाले सुख से तृप्ति नहीं होती है। 4 उससे तृष्णा बढ़ती है। 5 इससे आत्मा की हानि होती है। 6 इससे आत्मा को लाभ नहीं होता है। 7 इन सुखों में रस लेने से नये कर्म आते हैं। 8 इसमें रस लेने वाला ससार में भटकता रहता है। 9 भौतिक सुखों को सुख नहीं समझकर इनमें रस नहीं लेने वाला ही सिद्ध बनता है।

प्रतिकूल को अनुकूल समझना और अनुकूल को प्रतिकूल समझना समीक्षण ध्यान का महत्वपूर्ण अग है।

सक्षेप मे नीचे लिखी भावना को हमेशा बहुत देर तक भाते रहिये—“शरीर की, परिवार की चिता छोड़ो, ममता छोड़ो, दुख-दर्द मे रोना छोड़ो, भौतिक सुख मे फूलना छोड़ो, परिवार और शरीर की चिता छोड़ो क्योंकि दोनों की रक्षा केवल कर्मों के हाथ मे है, ममता छोड़ो क्योंकि आयु कर्म और दूसरे कर्म जीव को परिवार से दूर कर देते हैं, दुख-दर्द मे रोना छोड़ो क्योंकि रोने से दुख दूर नहीं होता, रोने से नवीन अशुभ कर्म आते हैं और वे बाद मे दुख देते हैं, भौतिक सुख मे फूलना छोड़ो क्योंकि यह भौतिक सुख खाज-खुजली की तरह है, जितनी खाज शरीर पर करेगे उतनी ही अधिक खाज करने की इच्छा बढ़ती जावेगी, सुख भोगो से कभी तृप्ति नहीं होती है। इससे नवीन अशुभ कर्मों का बध भी होता है।

“शरीर बनेगा मिट्टी—मैं बनूँगा सिद्ध”

कुछ लोग अपने जीवन के अन्तिम दिनों में पछताते हुए और यह कहते हुए पाये गये हैं—हमने अपना जीवन शरीर के मोह मे और सुख भोगो मे खो दिया। हमने अपनी आत्मा के साथ ले जाने के लिए कुछ भी नहीं कमाया। इस पछतावे से बचने के लिए आप आज से ही प्रतिदिन कम से कम डेढ़-दो घटे नीचे लिखे हुए चार सूत्रों का जाप (स्वाध्याय) और चितन-मनन कीजिए—

१ शरीर बनेगा मिट्टी। इस सूत्र के स्वाध्याय के समय अपनी मृत्यु के बाद अपने शरीर के मिट्टी बन जाने की दिशा में कल्पना भी कीजिए।

2. शरीर अलग है, इस शरीर से मैं (आत्मा) अलग हूँ। इस रूप के अन्दर अपने आत्मा के होने की अनुभूति या कल्पना कीजिए।

3. मैं (आत्मा) ही मेरा हूँ। इस सूत्र के स्वाध्याय के साथ केवल अपने आत्मा की कल्पना कीजिए और किसी भी दूसरी चीज की कल्पना मन में नहीं आनी चाहिए।

4. मैं बनूगा सिद्ध। आप अपनी आत्मा की सिद्ध रूप में होने वाली कल्पना कीजिए।

ऊपर वाले चार सूत्रों के भावार्थ के चित्तन-मनन की सामग्री है। नीचे दी जा रही है, कुछ सत महात्माओं से पूछिए, कुछ दूसरी पुस्तकों से प्राप्त कीजिए और शेष अपनी आत्मा से पूछिए जो अनन्त ज्ञान का भरणार है।

5. शरीर बनेगा मिट्टी। ससार में कोई मनुष्य अमर नहीं है। तीर्थकरों को भी देह छोड़नी पड़ी। सभी जीवों के शरीर मिट्टी द्वन जाते हैं। मेरा शरीर भी किसी दिन मिट्टी बनेगा। शरीर के दुख में रोना अमर रुदा में फूलना अज्ञान है और नवीन अशुभ कर्मों के वध का कारण है। रसों के कष्ट से आत्मा कुछ खोता नहीं है। इसलिए दुख में रोना भूल है। समय समता भावना के स्वाध्याय में लीन होकर मुनि गजसुलुमालपा तरह समतामय बन जाना मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। भौतिक रुदा से अलग को कुछ मिलता नहीं, इस सुख के समय फूलना नहीं चाहिए। स्वाध्याय में लीन होकर समतामय बन जाना चाहिए। शरीर के ठिक होने वाले और मोह छोड़ने वाले को मोक्ष मिलता है।

6. संदूक अलग है और इसके भीतर वाले कपडे उससे अलग हैं। ढोल अलग है और उसके अन्दर वाला सामान अलग है। इसी प्रकार अलग है और शरीर के भीतर फैला हुआ मैं (आत्मा) शरीर रो अलग हूँ।

7. मैं आत्मा ही मेरा हूँ। यह शरीर, परिवार, धन आदि मुझसे अलग है। ये मेरे नहीं हैं। इनकी चिंता व मोह छोड़ो। मोह राग छोड़ने से, अनासक्त बनने से मोक्ष मिलेगा।

8. मैं सिद्ध बनूंगा। मैं संसार की सब चीजों को छोड़कर सिद्ध हूँ। मैं सिद्ध दशा में अटल अवगाहना प्राप्त करूँगा। इस समय के अलावा आत्मा के सिद्ध दशा में होने की कल्पना ही मन में होनी चाहिए।

उपरोक्त सूत्रों के जाप और चिंतन से ये विद्यार प्रथम वर्ग हैं। बनकर ज्ञान का रूप धारण करते हैं। उसके बाद साधना जारी होता है।

दूसरे चरण में यह ज्ञान दर्शन अर्थात् दृढ़ श्रद्धा का रूप ले लेते हे और तीसरे चरण में यह दर्शन आचरण में आकर चारित्र का रूप ले लेता हे। यही भोक्ष का मार्ग है। यह स्वाध्याय आभ्यन्तर तप भी है। इससे कर्मों की निर्जरा भी होती है। एक विद्वान् ने लिखा है कि किसी विचार का दस लाख बार जप हो जाने से वह अनन्त काल तक जीव के साथ उसके आचरण में बना रहता है।

“शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूगा सिद्ध ।” इन दो सूत्रों का अधिक से अधिक स्वाध्याय कीजिए ।

साधना की विधि

वहुत से लोगों ने सतो के बहुत से प्रवचन सुने हैं किन्तु उन्हें उनमें से वहुत कम बाते याद हैं और जो याद है उनमें से बहुत कम बाते उनके जीवन में, आचरण में आती हैं। यदि प्रवचन सुनकर उनमें से कुछ बाते घर आकर कॉपी में नोट कर ले तो कभी-कभी इनकी पुनरावृत्ति भी हो जाती है और यदि किसी विचार को साधना के लिए हमेशा कुछ महीनों तक प्रतिदिन कुछ समय तक बार-बार दोहरावे, उसे तोते की तरह रटे, इनकी पर्यटना करे, उसका जाप करे, उसके अर्थ और भावार्थ का चितन-मनन करे, उस विचार की दृष्टि से अपने कार्यों और घटनाओं का चितन-मनन करे तो यह विचार या भावना उस साधक के अवघेतन मन में जम जाती है, आदत का रूप ले लेती है और कुछ महीनों तक इस साधना को जारी रखने से उस साधक का मनचाहा पूर्ण रूपान्तरण भी हो जाता है।

मुनि अर्जुनमाली ने भगवान महावीर द्वारा दिए गए उपदेश की बातों का इसी प्रकार स्वाध्याय किया और साधना से उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उन्होंने उन उपदेशों को शायद कुछ-कुछ इस प्रकार सूत्रों में वॉध लिया होगा—“ससार मे कोई भी जीव किसी का या मेरा शत्रु नहीं है, मैं अपने ही अशुभ कार्यों का फल पा रहा हूँ, यक्ष के प्रभाव मे मेरे आ जाने से, मेरे इस निमित्त से 1141 आदमियों की हत्या हुई है, इसके बदले मे मुझे कठोर दड मिलना चाहिए था, किन्तु ये लोग तो बहुत दयालु दिखते हैं, मुझे थोड़ा-सा दण्ड देकर ही छोड़ देते हैं। मुझे समता रखनी चाहिए। मे इन्हे दोष क्यों दूँ? समतापूर्वक कष्ट सहन करने से मेरे अशुभ कर्म कट जाएँगे।” मुनि अर्जुनमाली ने छ महीने तक उपर्युक्त विचारों का स्वाध्याय किया होगा और कष्ट सहने का अभ्यास किया होगा। छ महीने की इस साधना से उन्हे केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

मुनि दृढ़ प्रहारी ने भी नगर के दरवाजों पर खड़े रहकर पेत्ता लगाकर तक राहगीरों के द्वारा दिए गए उपसर्गों और कठोर वचनों को समझा। अभ्यास के द्वारा साधना करने से उन्हें भी केवलज्ञान हो गया। रामानुजने में समय अवश्य लगता है, मुनि गजसुकुमाल जैसे प्राणी की समझने के लिए एक ही दिन में सफल हो सकती है किन्तु जिन पर कर्मों का भारी दबाव लदा हुआ हो, उनको तो साधना में 2-4 वर्ष और इससे भी कुछ ज्यादा समय लग सकता है।

कुछ लोग कहते हैं—“क्रोध छूटता नहीं। समय पर क्रोध नहीं जाता है। जो लोग अभ्यास में बार-बार चूकते हैं, ऐसे लोग यदि दृढ़ छोड़ने के लिए ही स्वाध्याय करते रहे तो उन्हें भी 2-4 वर्ष में समझने के अवश्य मिल सकती है। एक सूत्र की टीका में लिखा है कि एक रामानुज “धर्मो मगल मुविकद्वा” इस सूत्र का लगातार स्वाध्याय किया तो उसे 12 साल बाद केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। एक विचार का बार-बार स्वाध्याय करने से उस विचार में श्रद्धा उत्पन्न होती है और यह श्रद्धा चारित्र दबाव के ले लेती है। साधना का यही मन्त्र है।

स्वाध्याय तोता रटत नहीं है, तोता अवोध पक्षी है, उसका दबाव बेकार जा सकता है किन्तु मनुष्य तो समझदार होता है। उसका दबाव स्वाध्याय रूप जीवन सूत्र को शुद्ध भावना से रटना कभी भी व्यर्थ नहीं हो सकता। उसका फल इस जन्म या भविष्य के किसी जन्म में अद्यग्य मिलता है। रटना स्वाध्याय का एक अंग है। यह आभ्यन्तर तप है। इससे कर्मों की निर्जरा होती है और आत्मा मोक्ष तक प्राप्त कर सकती है।

धार्मिक शिविरों में क्रोध, मान, माया, लोभ, विता, मोह, सुर्खी, विकथा आदि से मुक्ति पाने का अभ्यास अवश्य कराया जाना चाहिए।
परिवार भावना

(क) सभी जीवों के मुख्य-मुख्य भौतिक काम उनके समझने के दबाव के आदेशानुसार होते हैं। (ख) कोई भी जीव किसी भी दृष्टि के कर्मों को नहीं बदल सकता। (ग) परिवार का या रासायन का दृष्टि जीव किसी दूसरे जीव को उसके कर्मों के दण्ड से बचा नहीं सकता। (घ) इसीलिए परिवार का मेरे लिए ओर मेरा मेरे परिवार के दबाव करना व्यर्थ है। (ङ) परिवार के सदस्यों का एक दूसरे से पिंड दबाव करना व्यर्थ है।

निश्चित है। (च) इसलिए परिवार को अपना समझना और परिवार का मोह करना व्यर्थ है। (छ) परिवार की चिता छोड़ो, मोह छोड़ो। (ज) मनुष्य के ऊपर, परिवार का कर्जा हो सकता है। उसे सम्यक् सेवा द्वारा अपने परिवार व माता-पिता का कर्जा चुकाना चाहिए। प्राणी मात्र की सम्यक् सेवा करना मनुष्य का धर्म है। (झ) चिता और मोह को छोड़ने वाला अनासक्त बन सकता है और मरुदेवी माता की तरह मोक्ष पा सकता है।

शरीर भावना

शरीर भावना इस प्रकार भायी जा सकती है—

(क) यह शरीर अलग है, मैं अलग हूँ शरीर नाशवान है। यह मेरा नहीं है।

(ख) शरीर पर कष्ट आने के समय इस कष्ट को भूलने के लिए उस समय नीचे लिखी हुई भावना मे लीन हो जाना चाहिए—यह कष्ट मेरे कर्मों का फल है, यह मुझे भोगना ही पड़ेगा। इसको भोगते समय समता रखने से ये कर्म कट जाएंगे और चिता व आर्तध्यान न होने से नवीन अशुभ कर्म नहीं बढ़ेंगे। इससे मेरी आत्मा का कुछ भी नहीं बिगड़ा है, मैंने कुछ भी नहीं खोया है, किन्तु मेरा आत्महित ही हुआ है। कर्मों की निर्जरा हो रही है, मेरे मोक्ष के नजदीक पहुँच रहा हूँ इसलिए शरीर की चिता छोड़ो व शरीर का मोह छोड़ो, इससे मुनि खन्दक, मुनि गजसुकुमाल आदि की तरह मोक्ष मिलेगा।

उपर्युक्त भावना को और अधिक मजबूत बनाने के लिए 8-10 महीनों तक डेढ़-दो घण्टे प्रतिदिन स्वाध्याय और चितन-मनन करना चाहिए। इसी प्रकार भौतिक सुख के समय भी मनुष्य को फूलना नहीं चाहिए, खुशी नहीं मनानी चाहिए किन्तु स्वाध्याय करना चाहिए कि—“यह सुख भी सच्चा सुख नहीं है, इससे अशुभ कर्मों का बध होगा।” इस भौतिक सुखानुभूति से बचने वाला ही अनासक्त बन सकता है।

धन, परिवार, शरीर की चिता करने से अशुभ नारकीय कर्मों का बध होता है। अनासक्ति भावना की तरह समता भावना, बारह भावनाएँ, आत्मध्यान, आत्म-भावनाएँ, कषाय मुक्ति की भावनाएँ, भगवान का भजन आदि भी मोक्ष प्राप्ति के मार्ग हैं।

चिता छोड़ो, मोह भी छोड़ो।

अनासक्त को मोक्ष मिलेगा ॥

अनासक्ति भावना को बार-बार दोहराने से, इसका जप इसकी अनासक्ति के सूक्ष्म शुद्ध परमाणु का कवच-सा बन जावेगा, जो सत्त्वात् आसक्ति से बचावेगा। सक्षेप में इस भावना का सूत्र इस प्रकार है। इसके हमेशा एक-डेढ़ घटे भाने वाला सब कर्मों से मुक्त होकर मोक्ष मार्ग पथिक बनता है।

धन, परिवार, शरीर की,
चिंता छोड़ो, मोह छोड़ो,
अनासक्ति को मोक्ष मिलेगा।

कर्म निर्जरा

जीवन लक्ष्य पाने के लिए कर्मों की निर्जरा करना यहुत जरूरी है। इसका प्रथम उपाय है शुभ और शुद्ध कर्मों का अनुमोदन करना। इसका अनुमोदन से मनुष्य के विचार और उसकी भावना शुद्ध बनती है और इसके कठिन परिश्रम के बिना आसानी से धर्म का लाभ होता है। चन्दननामा भगवान महावीर स्वामी को दान दिया और सुबाहुकुमार ने सुमुख गाय के भव में साधुजी को दान दिया और सगम ने साधुजी को खीर दी। इससे वे मोक्षमार्ग के अधिकारी बने। इसका अनुमोदन करने वाले को दान देने का फल मिलता है और यह भवन पार भी कर सकता है।

विजय सेठ और विजया सेठानी के शीलपालन की, रोट मुद्रा, शीलपालन की और दूसरों के शीलपालन की कथा का अनुग्रहन करना। शीलपालन में दृढ़ता आती है और अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है। रानी, महाकाली रानी, सुकाली रानी, धन्ना मुनि आदि के तप की रथ अनुमोदना करने से, तप करने से होने वाले धर्म-लाभ का फल मिलता है। मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदाई, मुनि अर्जुनगाली, प्रहारी, मुनि खण्दक आदि के समता भाव और क्षमा भाव जो अनुग्रह चितन करने से हमारे अशुभ कर्म नष्ट होते हैं।

कर्म निर्जरा का दूसरा उपाय है—अपने किए हुए पापों को पर्द करना और हो सके तो उनका प्रायश्चित लेना। इससे दुरुत रह देता है। पड़ जाते हैं और कुछ कर्म तो नष्ट ही हो जाते हैं।

कर्म निर्जरा का तीसरा उपाय है—समता भाव चर्चा। स्वाध्याय का सूत्र है—‘रो मत दुख में, फूल मत नुख ने, गोकर्ण मार्ग परिवर्तन करना।

कर्म निर्जरा का चौथा उपाय है—शुद्ध ज्ञान, ध्यान मे लीन रहना। शुद्ध ज्ञान के चितन से मन अशुद्ध कामो की तरफ नहीं जाता है और इससे ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय भी होता है और मनुष्य के विचार निर्मल (शुद्ध) बनते जाते हैं।

तीन बाते

स्व आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने पद्य की दो पक्कियो मे थोड़े शब्दो मे जीवन को ऊँचा करने वाला सब धर्मों का सार बता दिया है—

ग्रथ पथ सब जगत् के, बात बतावत तीन,

राम हृदय, मन मे दया, तन सेवा मे लीन।

‘राम हृदय’ इन शब्दो का भाव है कि मनुष्य भगवान का अर्थात् सिद्धों का गुणगान, ध्यान और सिद्ध बनने का सकल्प करे तो सिद्धों का ध्यान और सिद्ध बनने का सकल्प करने वाला और इस भावना को दृढ़ बनाने वाला कर्मों की बहुत निर्जरा करता है। इसके साथ-साथ सिद्धों का ध्यान करते हुए और ‘णमो सिद्धाण्ड’ इस पाठ का जप करते हुए मनुष्य ससारी वातावरण से निकलकर आध्यात्मिक वातावरण और शुद्ध ध्यान मे लगा रह सकता है। यह भक्ति मार्ग है और परमात्मा की भक्ति करने वाला मुनि दृढ़ प्रहारी की तरह परमात्मा बन जाता है।

इस पद्य मे दूसरी बात यह बताई गई है कि “मनुष्य को अपने मन मे सब जीवों के प्रति दया रखनी चाहिए।” दया अर्थात् अनुकम्पा, करुणा आत्मा का सबसे बड़ा गुण है। जो मनुष्य सब जीवों पर पूर्ण दयाभाव रखता है, धर्मरूचि अणगार की तरह क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह से बच जाता है। उसकी आत्मा स्वच्छ, निर्मल और शुद्ध बन जाती है। सभी धर्मों ने दया को, अहिंसा को मनुष्य का प्रथम व सबसे बड़ा धर्म बताया है।

इस पद्य मे तीसरी बात ‘तन सेवा मे लीन’ बताई गई है। जैन दर्शन मे सेवा धर्म को तप से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। अगर कोई साधु तपस्या करता है और इससे उसके दूसरे सतो की सेवा करने मे वाधा आती हो तो वह तप को छोड़ दे किन्तु दूसरे सतो की सेवा अवश्य करे। दूसरों की सेवा करने से मनुष्य का अभिमान दूर होता है। सेवा वही कर सकता है जो अपने शरीर, परिवार और धन के लोभ को छोड़ता है। सेवा मे गृहस्थ और साधु अपनी-अपनी मर्यादाओं का ध्यान रखते हुए अपने आत्म धर्म “ग और पॅंच महाव्रतों का भी पालन कर सकते हैं। इस प्रकार परमा।

भजन, सब जीवों पर दयाभाव और उस दयाभाव के अनुसार दूसरे ही सम्यक् सेवा करना सिद्ध पद प्राप्ति का एक मार्ग बन जाता है।

अंजना का चिंतन

महासती अंजना को ससुराल वालों ने और पितृगृह वालों ने घर से निकाल दिया। तब वन में पहुँचकर वह अपनी सखी वसन्तमाला से कहने लगी—“सखी ! कर्मों का खेल बड़ा विचित्र है। कर्मों के साथ न देने पर कोई भी प्राणी दुख से बच नहीं सकता। मैंने पहले ही कहा था कि वन में जाना ही ठीक है, मेरे अशुभ कर्मों के उदय ने मुझे अपना अशुभ फल देने के लिए, मेरे परिवार वालों को निमित्त बनाकर मुझे घर से निकलवाया। वन में भिजवाया ताकि मैं उन कर्मों का दुख भोग सकूँ उन्हीं कर्मों ने मुझसे प्यार करने वाले मेरे माता-पिता के विचारों को भी बदल दिया और मुझे घर में ठहरने भी नहीं दिया। जब तक उन अशुभ कर्मों का फल मैं भोग नहीं लूँगी तब तक मुझे वन में ही रहना पड़ेगा। उन कर्मों की अवधि समाप्त होने पर मेरे ससुराल वाले और पीहर वाले दोनों ही मुझे प्रेम से अपने पास बुलायेगे। परिवार वालों को मेरा नहीं किन्तु मेरे कर्मों का साथ देना पड़ता है। अतः परिवार का मोह करना व्यर्थ है।”

परिवार है साथी नहीं मेरा।

परिवार है साथी कर्मों का।

ज्ञान की बातें

नीचे लिखे हुए विचार सम्यक् ज्ञानवर्धक है। इनका हर समय और विशेषकर सवेरे, शाम स्वाध्याय किया जा सकता है। इनके स्वाध्याय के लिए सभी समय और सभी स्थान उपयुक्त है। इनका स्वाध्याय सामायिक में या दुकान पर बैठे हुए भी किया जा सकता है। इनके स्वाध्याय के लिए स्नान आदि करने का भी कोई नियम नहीं है। इनके स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय होता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

1. जीव (मनुष्य, पशु-पक्षी आदि) अपने इस जन्म में या किसी पूर्व जन्म में किए हुए कर्मों का फल ही पाते हैं।

2. यह फल जिस जीव को हमने पूर्व में सुख या दुख दिया, यो उस निमित्त से या उस निमित्त के मोक्ष आदि में चले जाने पर किसी दरा, निमित्त से या प्रकृति से (जैसे गिर जाने से, टॉग के टूट जाने पर) मिला।

हे। इसलिए ससार मे किसी को अपना शत्रु समझना या निमित्त को दोष देना भूल है। जो किसी को दोष नहीं देता है, वह क्रोध और द्वेष से बच जाता है।

3 परिवार या धन किसी जीव को अशुभ कर्मों के दड से नहीं बच सकता इसलिए परिवार के मोह या धन के लोभ से बचना ही राग से बचना है।

4 राग और द्वेष से बचने वाला ही वीतरागी बनता है और वही मोक्ष पाता है।

5 ससार मे एक जीव का दूसरे जीव के साथ उपादान निमित्त का सम्बन्ध कर्मों के द्वारा, कर्मों के कारण और कर्मों के विधानानुसार बनता है। इसी उपादान निमित्त का सम्बन्ध निभाने के लिए एक जीव दूसरे जीव के साथ पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन, स्वामी-सेवक आदि के रूप मे परिवार मे या मित्र-शत्रु के रूप मे आते हैं और उपादान निमित्त सम्बन्ध के समाप्ति के साथ ही साथ ससार के दूसरे सारे सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं और एक जीव का दूसरे जीव से वियोग हो जाता है। परिवार केवल उपादान निमित्तो का एक स्थान पर सयोग ही है। इसके स्वाध्याय से मोह से बचा जा सकता है।

6 मनुष्य कर्माधीन है। जीवों को अपने कर्मों का फल भोगने के लिए उपादानो और निमित्तो के रूप मे प्राय एक परिवार मे आना पड़ता है। इस प्रकार जन्म के लिए परिवार का चुनाव करना जीव के हाथ मे नहीं किन्तु उनके कर्मों के हाथ मे है।

7 जब-जब पुराने कर्मों का योग समाप्त हो जाता है और दूसरे नवीन कर्मों का उदय होता है तब-तब जीव को परिवार से अलग होना पड़ता है या मृत्यु जन्म द्वारा दूसरे परिवार मे जाना पड़ता है। इस प्रकार मृत्यु और जन्म का समय कर्मों द्वारा साधारणतया नियत होता है।

8 जीव अपने कर्मों का फल जिस उद्योग धन्दे से भोग सके उसे वैसा ही धन्दा करने की या उसे बार-बार बदलने की योजना भी प्राय कर्मों से बनती है, सम्भव है कभी-कभी कोई बहुत हल्के कर्मों वाला जीव इसमे अपनी उच्च भावना के अनुसार परिवर्तन भी कर सके।

9 भिन्न-भिन्न अन्तराय कर्मों के उदय द्वारा जीव के ज्ञान प्राप्ति मे, धन प्राप्ति मे, सुख प्राप्ति मे, स्वास्थ्य प्राप्ति मे बाधाएँ भी कर्मों द्वारा आती

है और सुख-दुःख भी साता-असाता वेदनीय कर्मों के उदय और लम्बे पर निर्भर करता है।

10 साधारणतया सभी मोटे-मोटे भौतिक कार्यों की योजना कर्म हाथ मे रहती है फिर भी कभी-कभी किसी अज्ञात उच्च भावना के आदर्श पर जीव सब कर्मों को दबाकर ऊपर उठ जाता है और फिर उन्हें आत्महित कर लेता है।

11 सभी जीव अपने ही शुभ कर्मों से ऊँचे उठते हैं और अपने ही अशुभ कर्मों से नीचे गिरते हैं। निमित्त तो केवल निमित्त ही रहता है निमित्त किसी को ना तो ऊँचा उठा सकता है ना ही किसी को नीचा नहीं सकता है। अतः जीव को अपनी ही भावनाओं को उच्च और मज़बूत दृष्टि की जरूरत है।

12 द्रव्य क्रिया दुर्भावना से जीव को नीचे गिराती है और शुद्ध दृष्टि से जीव को ऊँचा उठाती है।

13 काया से मनुष्य जितना पाप, पुण्य या धर्म करता है उसके हजारों, लाखों, करोड़ों गुणा पाप-पुण्य या धर्म वह केवल अपनी ही भावनाओं से कर लेता है। तन्दुल मत्स्य एक जीव को भी नहीं मारता है फिर भी दुर्भावना से सातवे नरक में जाता है और वीतराग अनासत्ता भावना भाने वाला मोक्ष प्राप्त करता है।

14. जीव को हमेशा दान, शील, तप, समता भावना आदि इन अनुमोदन और अपने पापों का प्रायशिचित करते रहना चाहिए। इससे दृष्टि ऊँचा उठता है।

15 दान, शील, तप, समभाव, सेवा, परसेवा और अपने धर्म क्रियाओं का अहंकार करने वाले जीव को इन सब क्रियाओं का शुद्ध किंचित् भात्र मिलता है अतः अहकार आने पर अहकार का प्रायशिचित दर्शन चाहिए। अहकार छोड़ने के निम्नलिखित विशेष सूत्र हैं-

(क) अहकार से रावण जैसे महापण्डित का और हिरण्यकश्यप ऐसे महाशक्तिशाली व्यक्ति का पतन हो गया। मनुष्य अपने-आप को वर्ण-दर्शन से नहीं बचा सकता।

(ख) मनुष्य कर्मों के हाथ का खिलौना है। उसका किसी दर्शन लिए अहंकार करना भूल है।

(ग) शक्ति है थोड़ी, ज्ञान है थोड़ा, अह को छोड़।

(घ) मैंने पर-हित नहीं किया है। अपना निज कर्ज चुकाया है।
इसके लिए अह भाव मन में आना भूल है।

(ङ) बड़ा मत समझो स्वयं को, बड़ा समझो बड़ों को, गुरुजनों को,
सतों को।

16 मोक्ष जाने में शरीर आसक्ति ही बाधक है। इसे किसी स्वाध्याय
से या तप से दूर करने वाला ही मोक्ष पा सकता है। इसका एक सूत्र यह
है—“शरीर बनेगा मिट्ठी, मैं बनूगा सिद्ध।” दो-चार वर्ष हमेशा इसका
स्वाध्याय और इसके भावार्थ का चितन-मनन करते रहना चाहिए।

17 (क) धन का आना और धन का चले जाना कर्मों के हाथ में है।
इसका लोभ करने वाला और इसके लिए चिता करने वाला मनुष्य कभी
सुख नहीं पा सकता।

(ख) जिस घर में छोटे, बड़ों का आदर और उनकी सेवा करते हैं
और बड़े, छोटों में अच्छे धार्मिक सस्कार डालते हैं किन्तु उन्हें धार्मिक
उन्माद से बचाते हैं, उस घर में सभी लोग यदि उनके पूर्व के अशुभ कर्मों
का उदय न हो तो प्राय सभी सुख पाते हैं।

18 महाहिसा, महाआरम्भ, महापरिग्रह और बड़े-बड़े हिसा के कारखानों
की योजना बनाना अशुभ कर्म बध का कारण है। जितने दिन तक जिनती
बार ऐसे कार्यों का विचार किया जाता रहेगा उतने दिन तक उतनी ही बार
अशुभ कर्मों का बध होता रहेगा और उनका उदय होने पर दुख पाना
होगा।

19 इन चार बातों का हमेशा चितन करना चाहिए—

(क) किसी को दोष न देने वाला क्रोध से बच जाता है।

(ख) ज्ञान है थोड़ा, शक्ति है थोड़ी, इसका स्वाध्याय करने वाला
अहकार से बच जाता है।

(ग) परिवार और धन किसी को कर्म बध से नहीं बचा सकते। इसका
स्वाध्याय करने वाला परिवार के मोह और धन लोभ से बच जाता है।

(घ) “शरीर बनेगा मिट्ठी, मैं बनूगा सिद्ध” इसका स्वाध्याय करने
वाला सभी आसक्तियों से बच जाता है और मोक्ष प्राप्त करता है।

20 किया हुआ व्यर्थ नहीं जाता, दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता और
मुप्त में कुछ नहीं मिलता।

21. परमात्मा की भक्ति, दीनों के प्रति दया भावना और सभी जीवों की यथाशक्ति सम्यक् सेवा करना ही मानव मात्र का धर्म है।

सम्यक् सेवा—

सम्यक् सेवा के तीन लक्ष्य और चार विवेक हैं—

जीव को जीविका लायक, ज्ञान प्राप्त करने लायक और मोक्ष प्राप्त करने लायक बनाना। ये तीन लक्ष्य हैं और आत्मा को केवल आत्मा समझना अर्थात् उनको भाई-भतीजा आदि समझकर मोह नहीं करना, नि स्वार्थ भाव से सेवा करना, किसी तीसरे जीव को दुख नहीं देना और अपने स्वार्थ का भी कुछ त्याग करना—ये चार विवेक हैं, अपनी आत्मा का ज्ञान होना ही ज्ञान योग है और आत्म भावना भाने वाला मोक्ष प्राप्त करता है। आत्मभावना ये है—मैं ही मेरा हूँ मुझ आत्मा के सिवाय और कुछ भी मुझ आत्मा का नहीं है। यह शरीर, परिवार, धन आदि मेरे नहीं हैं। इनकी चिंता छोड़ने वाला और मोह छोड़ने वाला मोक्ष पाता है।

22. मनुष्य शुभ कर्म करके बहुत से अशुभ कर्मों को शुभ में बदल सकता है।

23. कपट से धन आता नहीं, अगर आता है तो ठहरता नहीं, यदि ठहरता है तो वह उस व्यक्ति को बरबाद करके चला जाता है।

24. सत्य आचरण और धर्मात्मा व्यक्ति को देवता भी नमस्कार करते हैं, सहयोग करते हैं।

25. शुभ या अशुभ कर्मों का फल यदि उनके करते समय नहीं मिले तो कभी-कभी बाद मेरे इस जन्म या अलगे जन्मों मेरे मिलता है।

26. यदि आप किसी जीव को दुख देना चाहते हैं या गाली देते हैं तो उस व्यक्ति का नुकसान तो उसके अशुभ कर्मों के उदय के बिना नहीं होगा किन्तु आपकी दुर्भाविना के कारण आपके अशुभ कर्मों का घंघ तो ही ही जायेगा और उसका अशुभ फल आपको तो मिलेगा ही।

27. दूसरों का केवल हित चाहने वाला भी तीर्थकर वन सकता है।

28. दोनों वक्त भोजन के समय और रात को सोते समय अपनी भूलें और पाप का पश्चाताप करने से कर्म निकालित नहीं बढ़ते और प्राप्त नहीं हो जाते हैं।

29 दूसरो को गाली देने वाला, दूसरो का बुरा चितन करने वाला और बुरा करने वाला निश्चय मे अप्रत्यक्ष रूप से अपने अशुभ भावो के कारण अपना ही बुरा करता है।

30 दूसरो का हित सोचने वाला और हित करने वाला निश्चय मे अप्रत्यक्ष रूप से अपने शुभ भावो के कारण अपना ही भला करता है और यह तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन करने का एक उपाय है।

31 जिस घर मे माता-पिता अधिक धन कमाने की अपेक्षा बच्चो मे अच्छे सस्कार डालने पर ध्यान देते हैं और बच्चे माता-पिता को सवेरे नमस्कार करते हैं और माता-पिता मे पूरी श्रद्धा रखते हैं वह परिवार सुख समृद्धि से परिपूर्ण रहता है।

32 मनुष्य और कुछ नही कर सके तो 'णमो सिद्धाण्ड', णमो सिद्धाण्ड' इसका स्वाध्याय ज्यादा से ज्यादा समय तक करे, यह भी मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

33 दो मित्रो मे एक मित्र वेश्या के यहाँ गया किन्तु वहाँ जाकर पश्चात्ताप करने लगा—“हाय ! मै, कहाँ आ गया, धन्य है मेरा मित्र जो धर्म चर्चा सुन रहा है।” दूसरा मित्र सतो के प्रवचन सुनने गया किन्तु वह सोचने लगा कि “मै कहाँ इन रुखे शब्दो को सुनने आ गया। धन्य है मेरा मित्र, जो वेश्या के यहाँ जाकर मनोरजन कर रहा है।” ऐसा सोचकर पहले मित्र ने शुभ कर्मो का उपार्जन किया और दूसरे मित्र ने अशुभ कर्मो का उपार्जन किया। अत शुभ या अशुभ कर्म अपनी-अपनी भावना के अनुसार बनते हैं।

34 प्रत्येक धार्मिक क्रिया मे भावना के साथ विवेक रखने से धर्म होता है, किन्तु विवेक नही रखने से अर्थात् जीव रक्षा का ध्यान या यतना नही रखने से या उस क्रिया के परिणाम पर ध्यान नही रखने से पाप भी हो सकता है। जैसे उपवास करना धर्म है किन्तु गर्भवती महिला यदि उपवास करे तो उसे पाप लगता है।

35 दो साधु हैं, उनमे से एक बीमार है। यदि दूसरा साधु तप करता है और तप के कारण बीमार साधु की सेवा नही कर सकता है या वाधा पहुँचती है तो वह तप धर्म नही है।

36 कभी-कभी मनुष्य के मन मे बहुत निकृष्ट, दुष्ट-भावना आती है जिससे वह बिना कुछ किए हुए ही तन्दुल मत्स्य की तरह ओर प्रसन्नचढ़

मुनि की तरह केवल भावना-भावना से ही सातवी नारकी के कर्द्द ह उपार्जन कर लेता है। उस समय यदि वह प्रसन्नचद्र मुनि की तरह पश्चात्ताप कर लेता है तो उन सभी अशुभ कर्मों को उसी समय नष्ट ह कर सकता है। भावना मे इतनी महान शक्ति है कि पश्चात्ताप से प्रसन्नचद्र मुने ने, कुरुगडुक ने, चड़रुद्राचार्य ने और चंडरुद्राचार्य के नवदीक्षित शिष्य = केवल भावना-भावना से ही क्षण भर मे केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ह।

37. धार्मिक चर्चा सिर्फ ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से बहुत कम नात्र ह करनी चाहिए। उसके हार या जीत की सीमा तक पहुँचने से वह झगडे द रूप धारण कर लेती है और पालक व स्कन्दकाचार्य की कहानी दन जरूर है। पालक ने धर्मचर्चा मे हारने के कारण स्कन्दकाचार्य के पांच सांस्कृतिकी हत्या करवायी थी।

38. कम बोलो और अधिक सुनो। जो सुनो उस पर विचार करें उसे समझो तथा उसका पालन करो। इसी प्रकार जितना पढ़ो उसे अधिक उस पर चितन करो और उससे अधिक स्वाध्याय करके उ आचरण मे उतारो। इसीसे जीवन ऊँचा उठता है।

39. सुख मे फूलने का अर्थ यह है कि धन, पद, मान आदि पास अपने-आप को बड़ा समझना, जिससे अहं भाव पैदा होता है। अह भाव कारण मनुष्य की बुद्धि दब जाती है। सच्ची और सही सलाह को सुनने लिए उसके कान बंद हो जाते हैं, सही सलाह देने वालो के सामने उस ऑखे बद हो जाती है। उसके पख लग जाते हैं, वह जमीन पर नहीं घूल थक कर गिर पड़ता है। भौतिक सुख मे फूलने वाले का पतन हो जाता है।

निम्नलिखित महाहिसक चीजों से बचिए

मोटे मुलायम चमडे के लिए जीवित पशुओं के ऊपर उबलता डालकर उन्हे बेतो से पीटा जाता है तथा जीवित अवस्था मे ही उन खाल खीच ली जाती है। बढ़िया जूतों के लिए गर्भिणी मादा पशुओं का करके उनके गर्भ के बच्चों को निकाल कर उनका वध किया जाता असली रेशम जीवित कीडों को पानी मे उबालकर प्राप्त किया जाता लोरिस जानवर की ऑखे पीस कर सौदर्य प्रसाधन बनाए जाते हैं। इन बनाने के बाद जिस लोशन का उपयोग किया जाता है उसकी जांच मिठिग नामक जानवर की त्वचा पर की जाती है। सील मछली के छिप

सिलाई धोप दी जाती है ताकि बेदाग व अखण्ड खाल निकल आए। इसके बच्चे के रोओ से कोट आदि बनते हैं। कस्तूरी मृग व सीवेट को कस्तूरी के लिए मारा जाता है। मृग की नाभि से कस्तूरी मिलती है। इसके चर्म से चप्पले, पर्स, खिलौने बनते हैं। कछुए के अवयवों से प्राप्त चर्बी से तेल बनाया जाता है जो सौदर्य प्रसाधन की तरह काम में लेते हैं। सॉप के गॉल ब्लडर से शराब, दवाई बनाई जाती है। मधुमेह-डायबिटीज की इन्सुलिन नामक दवा भेड़, बैल, गाय के अग्न्याशय से प्राप्त होती है।

शेम्पू की जॉच खरगोश की ऑखो मे की जाती है। टिझो को चर्बी मे मिलाकर चॉकलेट बनाई जाती है। दीमक को तलकर मसालो मे बघारा जाता है। मेढ़क की टॉंगे विदेशो मे बड़ी स्वादिष्ट मान कर खाई जाती है। हाथी दॉत की बनी चीजे, मछली के तेल से बनी हुई दवाइयाँ, चरबी से बनी साबुन, शहद आदि हिसा से बनी हुई वस्तुएँ हैं। भैस की खाल मे चॉदी को पीसकर वर्क तैयार की जाती है।

अशुभ कर्मों को क्षय करने का सरल तरीका है—सिद्धो का ध्यान, स्वाध्याय और सेवा।

समीक्षण ध्यान के कुछ सूत्र

- 1 शरीर मेरा नहीं है, मैं (आत्मा) भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूगा।
- 2 रो मत, रो मत, दुख मे रो मत सिद्ध बनेगा।
- 3 फूल मत भौतिक सुख मे, सिद्ध बनेगा।
- 4 बड़ा मत समझो स्वय को, बड़ा समझो बड़ो को।
- 5 दोष मत दो किसी को।
- 6 'कोई लेनदार कोई देनदार।
परिवार नहीं होता अपना।'
- 7 शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूगा सिद्ध।

ऊपर लिखी हुई भावनाओं मे और अनित्य आदि बारह भावनाओं मे भी जिन भावनाओं का महीनो और वर्षों तक स्वाध्याय अर्थात्—चित्तन ओर जाप होने से उनमे साधक की अटूट श्रद्धा पैदा हो जावेगी और ये भावनाएँ साधक के आचरण मे स्वत उत्तर जावेगी। इन भावनाओं से पूर्णतया भावित होने वाला जीव अवश्य ही मोक्ष पाता है। जरूरत है एक-एक भावना को पॉच-पॉच, सात-सात बार जपने की।

इस कषाय मुक्ति की नवर्णी पुस्तक में इन भावनाओं को पुष्ट दर्शन की सामग्री दी हुई है।

जीवन निर्माण के कुछ उपाय

1. जो मनुष्य दूसरे जीवों की, अपने परिवार और विशेषकर उस माता-पिता की सम्पत्कृति सेवा करता है वह महा-महा पुण्यवान है महाभाग्यवान बनता है। सेवा और स्वाध्याय महातप है। इनसे एवं अशुभ कर्मों का नाश होता है और मनुष्य स्वर्ग या मोक्ष की तरफ उपर बढ़ता है।

2. जो मनुष्य दूसरों को बरबाद करता है वह मरने के बाद सर्व बरबाद घर में जन्म लेकर या वहाँ पशु बनकर पहुँचता है और उस दर्शन का फल भोगता है या वह बरबाद होने वाला मनुष्य उस बरबाद करने द्वारा के घर में पहुँचकर अपने बरबाद करने वाले मनुष्य को बरबाद करता है कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है।

3. जैन दर्शन कहता है उपादान को अर्थात् अपने-आप को सुनारे केवल निमित्त तुम्हे ऊँचा नहीं उठा सकता। यदि उपादान ने शुभ कर्म दर्शन किये हों तो उसके माता-पिता, उसके गुरुजन, स्वर्ग के देवता और तीर्थंकर भी उसे कुछ नहीं दे सकते और ऊँचा नहीं उठा सकते। यदि उपादान अशुभ पुरुषार्थ और अविवेक को छोड़कर शुभ पुरुषार्थ विवेक के साथ दर्शन है तो साधारण पुरुषार्थ से या कभी-कभी पुरुषार्थ के बिना भी केवल उपर्युक्त पुण्य के प्रभाव से और कभी-कभी निमित्त के बिना भी स्वयं दर्शन की तरह ज्ञान और करोडपति के घर में जन्म लेने वाले वच्चे की तरह दर्शन आदि प्राप्त कर लेता है। मनुष्य कभी-कभी अशुभ कर्मों के उदय के नाम कठोर पुरुषार्थ करता हुआ भी धन आदि खो देता है। जैनागमों में निर्दिष्ट से उपादान को अधिक प्रधानता दी गई है।



अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा

कषाय मुक्ति : दसवा भाग

चितन की कुछ भावनाएँ—

{ 1 अद्वेष, 2 अखेद, 3 अभय,
4 अराग, 5 अलोभ, 6 अमान }

- 1 अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा
दोष किसी को कभी न दूंगा
क्रोध द्वेष से बचा रहूंगा।
- 2 दुख-दर्द मे दुखी न होता
अशुभ कर्म समता से धोता।
- 3 मौत का मै भय छोडूंगा
अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।
- 4 किया स्वय का स्वय ही पाता
परिवार भी कुछ काम न आता।
- 5 लोभ से यदि धन है मिलता
जग मे कोई दीन न रहता।
- 6 मान-बडाई ईर्ष्या भावे
वह नर कैसे मोक्ष मे जावे।
- 7 अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा
णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण।

उपर्युक्त भावनाओ का जितना अधिक स्वाध्याय और चितन किया जाएगा उतना ही शीघ्र मनुष्य सिद्ध पद पाने का अधिकारी बनेगा और जितना कम स्वाध्याय किया जाएगा उतना ही देरी से वह मोक्ष जाएगा, इन भावनाओ मे श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए चितन-मनन की सामग्री नीचे दी जा रही है—

(1) अद्वेष भावना—क्रोध मुक्ति

हम अपने ही कर्मों का फल पाते हैं। हम अपने ही अशुभ कर्मों द्वारा अशुभ फल पाते हैं, इसमें निमित्त का कोई दोष नहीं है। दूसरे जीव को ही कर्मों की प्रेरणा से जबरदस्ती निमित्त बनना पड़ता है। अत निमित्त को दाना देना अज्ञान है। यदि हम किसी को दोष नहीं देगे तो हमारे अन्दर हिरण्यं भी जीव के प्रति द्वेष भावना पैदा नहीं होगी। हम क्रोध से बचेगे, दुर्भाग्य से बचेगे, दूसरों के प्रति दुर्व्यवहार से बचेगे, ससार के सभी जीवों के राक्षस हमारे मन में द्वेषभाव, शत्रुभाव भविष्य के लिए पैदा होना बद हो जाएगा। सारे ससार के जीवों के लिए हमारे मन में मैत्री भावना आ जायेगी और अनेक अशुभ कर्मों का आना बंद हो जाएगा, मुनि गजसुकुमाल मुनि स्कन्दक, सेठ सुदर्शन आदि ने किसी को दोष नहीं दिया, वे सिद्ध थे।

(2) अखेद भावना—दुख चेतना से मुक्ति

मनुष्य सासारिक पीड़ा में या अनेक प्रकार की प्रतिकूल अवस्था अन्ने पर रोता है, विलाप करता है, आर्तध्यान में डूबता है, दूसरों के प्रति दाना और भावहिसा के विचार अपने मन में उठाता है और अनेक अशुभ कर्मों द्वारा उपार्जन करता है। यदि वह कर्म सिद्धात आदि के चितन में लग जाता है तो अपने दुख-दर्द को भूलकर अशुभ कर्मों का आना बद कर सकता है। वह विचार सकता है कि यह दुख नहीं है। यह मेरे कर्मों का फल है। इनको समतापूर्वक भोगने से ही मोक्ष मिलेगा। यदि मैं शुभ चितन में या इन कार्य में लग जाऊगा तो अशुभ कर्मों का आना भी रुक जाएगा। इन दुर्दा कार्य में लग जाऊगा तो अशुभ कर्मों का आना भी रुक जाएगा। इनसे मेरी आत्मा का अहित नहीं होता है। इनसे आत्मा का हित ही होता है। कर्म कटते हैं अन्न मैं मोक्ष के नजदीक पहुँचता हूँ। इस विचारधारा से समता की प्राप्ति होगी और अशुभ कर्म नहीं आ पावेगे।

(3) अभय भावना—मौत के भय से मुक्ति

यह देखा गया है कि ससार में मौत का भय सबसे बड़ा भय है। इस भय से भयभीत मनुष्य अनेक प्रकार की द्रव्य और भावहिसा के गतिशील से डूबा हुआ बहुत लम्बे समय तक महामोहनीय अशुभ कर्मों का बदल कर्म में डूबा हुआ बहुत लम्बे समय तक महामोहनीय अशुभ कर्मों का बदल कर्म है। कस ने देवकी के आठवें पुत्र द्वारा अपने मृत्यु की भविष्यताएँ मुद्रित की हैं। बहुत वर्षों तक बहुत भयकर अशुभ कर्मों का उपार्जन किया। गतु रात्रि को बचाने के लिए अनेक मनुष्य महापाप में लगे रहते हैं किन्तु जागरूक

मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है वह तीर्थकर महावीर की भाति, सेठ सुदर्शन की भौति, भक्त प्रह्लाद की भौति द्रव्य और भावहिसा के विचारों से दूर रहता हुआ अपनी आत्मा को नवीन कर्मों के बध से मुक्त रखता है। सेठ सुदर्शन को अभया महारानी ने धमकी दी, वे सूली पर चढ़ाये गए, हरिणी वेश्या ने उनको घर में बद कर दिया, व्यन्तरी ने कपड़ों से आग लगा दी लेकिन सेठ सुदर्शन मृत्यु भय से मुक्त थे, इसलिए उन्होंने मृत्यु की किसी भी धमकी से डरकर अशूभ कर्म का बध नहीं किया।

यदि मनुष्य इसका बार-बार चितन-मनन करे तो मृत्यु का भय हट सकता है।

मनुष्य कई बार बीमार पड़ता है और हर बार मृत्यु भय से भयभीत होकर अशुभ कर्मों का बध करता है किन्तु उसको यह याद रखना चाहिए कि रोग असातावेदनीय कर्मों से आता है और मृत्यु का इस कर्म से कोई सबध नहीं है। चाहे वह कितनी ही बार बीमार पड़े उसे मृत्यु आ नहीं सकती। मृत्यु तभी आयेगी जबकि आयु-कर्म समाप्त होगा। इसलिए रोगों के आने पर मृत्यु के भय से अशुभ चिंतन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना शत्रु भी हमे मार नहीं सकता, बल्कि कभी-कभी तो शत्रु द्वारा मारने का प्रयत्न हमे लाभ पहुँचा देता है। प्रद्युम्नकुमार को मारने की देवता ने चेष्टा की किन्तु उसको लाभ हुआ। भीम को मारने की दुर्योधन ने कोशिश की किन्तु भीम को लाभ ही हुआ। यदि आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना कोई किसी को मार सकता तो बहुत से निर्दयी लोग भले आदमियों को जीने ही नहीं देते।

रोग, शत्रु, चोर, पशु, पक्षी, शरीर की कमज़ोरी आदि किसी के द्वारा आयु-कर्म समाप्त हुए बिना जीव मारा नहीं जा सकता। अत ऐसे मौकों पर आर्तध्यान को छोड़कर शुभ ध्यान में लीन होना चाहिए। कुछ-कुछ ऐसा स्वाध्याय किया जा सकता है—“मौत का मै भय छोड़ूगा, अभय बनूगा, सिद्ध बनूगा” मनुष्य इसमें पूर्ण श्रद्धा रखकर स्वाध्याय व चितन्त-मनन करे तो अभय बनना असम्भव नहीं है।

(4) अराग भावना-परिवार मोह से मुक्ति

मुक्ति प्राप्त करने में परिवार का मोह भी बहुत वाधक होता है, इस सबध में इस पुस्तक में आगे चितन की विशेष सामग्री दी गई है। साधारणतया यह विचार और चितन परिवार मोह को घटा सकता है-

अशुभ कर्म जब उदय मे आता
 कुटुम्ब पराया है बन जाता।
 अपना-अपना रह नहीं पाता
 अपनो को ही दण्ड दिलाता॥

(5) अलोभ भावना

लोभ सब पापो का मूल है और धन के मोह मे ससार के अधिकार
 मनुष्य झूंके हुए है। झूठ, कपट, ठगी, चोरी, अन्याय, अनीति, मिलावट, दूसरों
 का शोषण आदि करते है किन्तु धन का आना और जाना मनुष्य के हाथ
 मे नहीं है। धन के लिए मनुष्य का रोना बेकार हो जाता है। इसके लिए
 यह चितन किया जा सकता है—“अधिक लोभ से धन आता तो ससार मे
 कोई भी जीव गरीब नहीं रहता।” धन के बाबत सक्षेप मे छ दात यदि
 रखनी चाहिए—1 धन का कमाना मनुष्य के हाथ मे नहीं है। यह तो दान
 पुण्य, तप, सेवा, परोपकार आदि शुभ कर्मों के करने से आता है। 2 जाने
 वाले धन को कोई रोक नहीं सकता। 3 धन से सुख मिलना जल्दी नहीं
 है। 4. बिना धन के भी सातावेदनीर्य कर्म से सुख मिल सकता है। 5 धन
 के बिना ससार का कोई कार्य नहीं रुकता। उसके लिए कहीं से भी धन
 आ ही जाता है। 6 यदि किसी कार्य के करने का योग नहीं हो तो यदि
 सुविधा होते हुए भी कार्य नहीं होता।

(6) अमान भावना

अहंकार भी मोक्ष प्राप्ति में बहुत बाधक है। अहकार की यह एक
 विशेषता है कि यह मनुष्य को अपना शिकार बनाकर भी उसे अपने अन्त
 का पता ही नहीं चलते देता। बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुष भी इसके चक्कर मे आ
 जाते हैं और सोचते है कि मैं बहुत ज्ञानी हूँ उस समय यह नहीं सोच पा
 कि मेरा ऐसा सोचना अहकार है, अज्ञान है, मैं ऐसा सोचता हूँ तो इसने
 कहाँ रहा। इसी प्रकार तपस्वी, शीलव्रतधारी, धनवान ओर परोपकार करने
 वाले भी अहंकार के शिकार बन जाते हैं। इस अहकार से उनके अन्तर्मन
 कार्यों के फल भी शिथिल पड़ जाते हैं। अहकार से मोक्ष का मार्ग अन्तर्मन
 जाता है। बाहुबलीजी को भी इतना घोर तप करने के बाद भी अन्तर्मन
 छोड़ने से ही केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। इसके लिए सक्षेप मे इस भावना का
 चितन किया जा सकता है—

मान बड़ाई ईर्ष्या भावे
वह नर मोक्ष मे कैसे जावे।

दूसरा चितन इस प्रकार किया जा सकता है—

अह बम है, विस्फोटक है, महाघातक है।

बचकर रहना, छोट लगेगी, उठ न सकोगे ॥

जीवन की भौतिक बातें

कोई भी जीव किसी भी दूसरे जीव के कर्मों के फल में हेर-फेर नहीं कर सकता। उसे अपने कर्मों का दड़ स्वयं को ही किसी-न-किसी रूप में भोगना ही पड़ता है। वह बचना चाहे तो भी उसकी बुद्धि उसके कर्मों के दड़ से प्रायः बचने नहीं देती। क्योंकि—

बुद्धि वैसी ही बन जाती

जैसी कर्मों की गति है चाहती।

इस दृष्टि से मनुष्य के जीवन की प्राय मोटी-मोटी भौतिक घटनाओं का नियन्त्रण मनुष्य के कर्मों के हाथ में होता है। कुछ लोग तो बचने की कोशिश ही नहीं करते किन्तु कुछ बड़े-बड़े मनुष्य भी बहुत कम परिवर्तन कर पाते हैं। ये घटनाएँ इस प्रकार हैं—

1 जीव की गति—वह क्या बनेगा देव या पशु या मनुष्य।

2 परिवार—जिन लोगों के साथ उसे ये कर्म भोगने हैं, उन लोगों के परिवार में जन्म लेना पड़ता है और यदि उसे परिवार आगे बदलने पड़ेगे तो उसका भी निर्णय कर्मान्सार निश्चित हो जाता है।

3 आयु—यह नया शरीर कितने समय तक टिकेगा।

4 कुछ छोटी-मोटी बाते—उसके साथी, उसके रहने के स्थान आदि-आदि।

5 विद्या-शिक्षा सिलेगी या कम सिलेगी या नहीं सिलेगी।

6 विवाह—किस परिवार मे होगा या वह अविवाहित रहेगा या दीक्षा लेगा या नहीं लेगा आदि-आदि।

७ धधा-व्यापारी बनेगा या कही नौकरी करेगा या मजदूरी करेगा और अपने कर्मों को किस तरह भोगेगा।

8 अमीरी-गरीबी का निर्णय—उसके उपादान में निमित्त से जैसा जितना धन आना है वैसा और उतना ही धन आवेगा और अशुभ कर्मों के योग से जो धन जाना है वह जायेगा।

9 सुख-दुख-उसे किस प्रकार के सुख-दुख उसके सातादेशम्
असातावेदनीय और अन्तरायकर्म के उदय के अनुसार मिलेगा।

10. स्थान और साथी-उसे पुद्गल स्पर्शना के अनुसार निर्देश
स्थानों और साथियों के साथ रहना होगा।

11. रोग और बुढ़ापा-कर्मों के अनुसार जीवन में और दृष्टि के
क्या-क्या रोग आयेगे और कब-कब आयेगे। वे उसके वेदनीय कर्मों के
अनुसार उसे भोगने पड़ेगे।

12. मृत्यु-मृत्यु कब, कैसे और कहाँ होगी। यह भी कर्मों के अनुसार
नियत है।

ये बारह बाते प्राय साधारणतया उसके पूर्वकृत कर्मों के अनुसार होती है, किन्तु विशेष शुभ पुरुषार्थ करने से, दान, पुण्य, ज्ञेय आदि उसके पुराने अशुभ कर्मों के उदय से आये हुए कर्म शिथिल पड़ सज्ज होते हैं।

यह याद रखने की बात है कि स्वाध्याय, सेवा, ध्यान, तप, दान आदि और तीव्र चढ़ते हुए परिणामों में महान शक्ति है। इनकी साधना करने वाले मनुष्य को कभी-कभी इनसे उपार्जित होने वाले महान शुभ कर्मों वा अनुभव तुरन्त ही मिल जाता है और साधक के जीवन में भारी शुभ परिपर्वक सकता है। अत कर्मों में बहुत ही शक्ति है इसलिए मनुष्य को होरण युग कर्म ही करने चाहिए और अशुभ किए हैं तो उसका पश्चात्ताप दर्शन चाहिए।

मोह छोड़ूंगा सिद्ध बनूगा

मरुदेवी माता	मोह
मुनि गजसुकुमाल	दुखानुभूति
जम्बूस्वामी	सुखानुभूति
बाहुबलीजी	अहकार

1 मरुदेवी माता ने मोह छोड़ा, मोह छोड़े वे सिद्ध दने। रुद्रिमा को नमस्कार है, मैं मोह छोड़ूगा, सिद्ध बनूगा।

2 मुनि गजसुकुमाल देह कष्ट में नहीं रोए, वे सिद्ध दने किसी को दोष नहीं दिया, वे क्रोध से बचे रहे। क्रोध नहीं दिया

वने, सब सिद्धों को नमस्कार है। मैं किसी को दोष नहीं दूगा, क्रोध नहीं करूगा, मैं दुख में नहीं रोऊगा, मैं सिद्ध बनूगा।

3 जम्यू स्वामी भौतिक सुख में नहीं फूले। नहीं फूले वे सिद्ध बने। सब सिद्धों को नमस्कार है। मैं सुख में नहीं फूलूगा, मैं सिद्ध बनूगा।

4 वाहुबलीजी ने अह छोड़ा, अह छोड़ा वे सिद्ध बने, सब सिद्धों को नमस्कार है, मैं अह छोड़ूगा, सिद्ध बनूगा।

5 अह वम है, विस्फोटक है, महाघातक है। अह छोड़ा वे सिद्ध बने, सब सिद्धों को नमस्कार है।

नोट—परिवार का मोह छोड़ना मुक्ति को देने वाला है, किन्तु जब तक परिवार में रहे तब तक परिवार की सम्यक् सेवा करके परिवार का कर्ज चुकाना मनुष्य का परम धर्म है।

उपर्युक्त भावनाओं में प्रत्येक भावना का दो-दो, तीन-तीन लाख वार पर्यटन अर्थात् स्वाध्याय और चितन-मनन करेगा वह किसी दिन सिद्ध पद प्राप्त करेगा।

मगल भावना

वीर नहीं बचा सके दो सतों को उनके कर्मों के दड से, कृष्ण नहीं बचा सके यादवों को, उनके कर्मों के दड से। परिवार किसी को नहीं बचाता, उसके कर्मों के दड से।

परिवार मोह से मुक्ति

मनुष्य के सिद्ध पद प्राप्ति में सबसे बाधक है परिवार मोह। इस मोह को ढीला करने का सर्वोत्तम उपाय है स्वाध्याय। अधिक स्वाध्याय करने से परिवार मोह का क्षय होता है।

एक राजा ने एक कैदी से पूछा—“तुम्हारे शरीर में इतना यल है कि तुमने लोह की भारी धेड़ियों को क्षण भर में ही तोड़ दिया तो फिर तुम केंद्र में इतने महीने कैसे रुके रहे ?” इस पर कैदी ने कहा—“महाराज ! मुझे आपके जेल की छड़ों ने नहीं बौद्ध रखा था। मैं परिवार मोह की धेड़ियों न बधा हुआ था। मुझे भय था कि यदि मेरे इन धेड़ियों को तोड़कर निकल जाऊगा तो मेरा परिवार सकट में पड़ जाएगा। आप मेरी जगह उन्हें दड़ देंगे। इसलिए जेल की छड़ों को तोड़कर नहीं भाना।”

महाज्ञानी गौतम स्त्यानी को भहावीर स्त्यानी ने कहा— हे गात्र ! तुमको मेरे उपर प्रशस्त रोग है। यही तुम्हारे देवलङ्गान प्राप्ति म नाभूद है

यह राग दूर होने से तुम्हे केवलज्ञान प्राप्त होगा।”

यह राग देव, मनुष्य, पशु, पक्षी सभी मे होता है। इसका कारण दूर है कि जीव अनादि अनन्तकाल से परिवार राग मे बंधा आ रहा है १३ साथ-साथ रहने से और उपादान निमित्त बनकर एक दूसरे का सहयोग १४ से यह दृढ़ होता जाता है। इस राग को अधिक स्वाध्याय और करार १५ चितन-मनन करके दूर किया जा सकता है।

यह भ्रम है कि परिवार हमारा होता ते १६ मे भी तो वह बना रहता। अत इस भ्रम को दूर करने के लिए इस परिवार का स्वाध्याय करना चाहिए—१ परिवार हमे कर्मदंड से नहीं बचा रखा २ परिवार इस जन्म मे भी हमेशा हमारा साथी नहीं रहता। ३ इस परिवार निमित्त सबध समाप्त होते ही पारिवारिक संबंध समाप्त हो जाता है। ४ ने कर्ण को जन्मते ही दूर कर दिया। शकुन्तला को उसकी माता ने ५ ही जगल मे छोड़ दिया—“कर्ज पुराना पड़ा हुआ है इसीलिए परिपत ६ है।”

उपर्युक्त तीन विचारो का इन तीन भावनाओ का वर्ण तक ७ स्वाध्याय करने से परिवार मोह का डोरा टूट जाता है।

परिवार का हमारे ऊपर कुछ कर्ज भी हो सकता है। उसको ८ के लिए परिवार की सम्यक् धार्मिक सेवा करनी चाहिए और यह भद्दा ९ हमेशा भानी चाहिए कि मेरे परिवार वाले स्वस्थ हो, सुखी हो, धर्मता १० वे सिद्ध बने, परिवार की शुद्ध सेवा करनी चाहिए। इससे परिवार ११ घृणा पैदा नहीं होती। परिवार का मोह टूटने से मरुदेवी माता १२ मनुष्य सिद्ध पद प्राप्त करता है।

आत्मा भावना भी परिवार मोह को हटाती है। अत यह भद्दा १३ भायी जा सकती है कि—“मै ही मेरा हूँ मुझ आत्मा का, मुझ १४ सिवाय और कुछ भी मेरा नहीं है। शरीर, परिवार, धन आदि १५ परिवार मोह छोड़ूंगा, सिद्ध बनूंगा।”

मृत्यु भय और अभय भावना

मृत्यु भय और शरीर की चिता से मुक्त होने वाला सिद्ध पर १६ अधिकारी बनता है।

जब तक जीव का आयु-कर्म समाप्त नहीं होता, तब तक १७ जीव नहीं आ सकती, चाहे वह कई बार कई बीमारियो से एक साथ १८ हो जावे, चाहे उसका शरीर कमजोर हो या उसको अधिक दबान १९

और आराम न मिले, चाहे उसे दूध, फल और पौष्टिक पदार्थ आदि तो दूर रहे भरपेट सादा भोजन भी पूरी मात्रा में नहीं मिले। आदिनाथ भगवान वाहुदलीजी एक-एक वर्ष निराहार रहे। आज के मनुष्य भी दो-दो, तीन-तीन वर्ष तक एक-एक महीने में पॉच-पॉच पचौले का तप करते हुए भी जीवित और स्वस्थ रह जाते हैं।

यदि मनुष्य को परिवार का सहयोग नहीं मिले, सेवा करने वाला नहीं मिले, चाहे उसे अकेला ही रहना पड़े तो भी शरीर का कुछ नहीं बिगड़ता। शत्रु द्वारा की हुई उसे मारे जाने की योजना भी सफल नहीं होती जब तक कि मनुष्य का आयु-कर्म समाप्त नहीं हो जाता। पाण्डव, भीम, प्रद्युम्नकुमार, भक्त प्रह्लाद, सेठ सुदर्शन आदि को मारने की योजनाएँ सफल नहीं हुई क्योंकि उनका आयु-कर्म समाप्त नहीं हुआ था। परिवार का पञ्चत्र, धन की हानि, मान की हानि और मनुष्य को मिलने वाली अनेक असफलताएँ मनुष्य को नहीं मार सकती जब तक आयु-कर्म समाप्त नहीं हो जाता।

मनुष्य को मौत के भय से बचने के लिए चितन-मनन करना चाहिए जिससे अतिम समय में वह सद्भावनाओं के साथ मरता हुआ दुर्गति में नहीं जावे और सम्भव हो तो भावना पूर्वक सथारा भी ले सके।

चितन मे प्रथम स्थान कर्म सिद्धात को देना चाहिए, असातावेदनीय और अन्तरायकर्म दोनो ही आयु-कर्म के समाप्त हुए विना मौत को नहीं ला सकते, मनुष्य को अपने पहाड़ के समान दुख को भी रेत के समान तुच्छ मानना चाहिए। अभय भावना की साधन से दुर्भावनाओं और हिसा आदि पापों से बचा जा सकता है, इससे शरीर का मोह छूटता है ओर सभी चिताए दूर होती है।

“जवाहर विचार सार” मे आचार्यश्री जवाहरलालजी मे सा ने तीन बातें बताई हैं—प्रथम परमात्मा का ध्यान, दूसरा अपने मन मे दुखियों ओर जीव मात्र के लिए दया भावना रखना और तीसरा यथाशक्ति प्राणीमात्र की सम्प्रकृति सेवा मे अपने शरीर को लीन रखना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चिता और अनुकम्पा मे जमीन आसमान का अन्तर हे। जहाँ दूसरे मनुष्य पर ममता है उसके लिए चिता करना चिता और मोह ह किन्तु जहाँ पर दूसरे जीव को आत्मा केवल आत्मा ही सनझा जाता ह उसके लिए चिता करना चिता और मोह नहीं दल्कि अनुकम्पा ह, चिता ज्याला है, अनुकम्पा शीतल जल है, चिता जहर है अनुकम्पा अनृत है जो मनुष्य को अमर, आनन्दघन और अभय बनाता है और मोक्ष पहुँचाता ह।

पंचभिः सह गन्तव्यं, स्थानंतव्यं पंचभि सह।

पंचभि सह वक्तव्य, न दुख पंचभि सह॥

अर्थात् पॉच आदमियों के साथ जाना चाहिए, पॉच आदमियों द्वारा रहना चाहिए, पॉच आदमियों के साथ बातचीत करनी चाहिए, आदमियों के साथ से कोई दुख नहीं होता, पॉच आदमियों होने पर मेश्वर की राय मानी जाती है, पॉच आदमियों की राय लेकर काम रखने से हानि नहीं होती। व्यक्ति दुख से बच जाता है और अहकार अपश्च घटता है।

अमृतवाणी

ये दो कविताएँ बच्चों को याद कराइये और कभी-कभी सुनते रहें-

- 1 'सच बोलूगा सच बोलूगा,

निश्चय ही मैं सच बोलूंगा।

चाहे मेरा सिर कट जावे,

झूठ कभी भी नहीं बोलूंगा।"

- 2 "चोरी से मैं दूर रहूँगा,

चोरी से मैं बचा रहूँगा।

माता ने चोरी सिखलाई,

बेटे को फॉसी दिलवाई।"

3. माता-पिता और बड़ों की सेवा करने वाला,

भाग्यवान् महापुण्यवान् बनता है।

- 4 जिस घर मे प्रेम और सहयोग रहता है उस घर मे लक्ष्मी आती है

फूट व कलह से लक्ष्मी चली जाती है।

- 5 दान पुण्य और सेवा महान् धर्म है इससे कभी-कभी इसी जन्म

और सुख की प्राप्ति हो सकती है।

- 6 दूसरो के प्रति दुर्भावना रखने वाला, ठगी और चोरी आदि द्वारा नहीं

को बरबाद करने वाला कभी-न-कभी स्वयं दुखी व वरयाद होता है।

7. संसार मे दूसरो का बुरा चाहने और बुरा करने से बढ़कर कोई नहीं है

और दूसरो का भला चाहने और उनका भला करने उपर्युक्त है।

अनुकम्पा करने से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

हम क्या करे

मोक्षार्थी को यह समझ लेना चाहिए कि विचारों और भावनाओं में महान् शक्ति है और शुभ विचार करके हम आसानी से मोक्ष पहुँच सकते हैं। मनुष्य जितनी बार कोई विचार करता है उतनी ही बार वह शुभ या अशुभ विचारों का बध या क्षय कर लेता है।

एक मनुष्य बीस दिन तक दिन में पॉच-पॉच बार किसी मनुष्य की हत्या करने का विचार करता है तो वह उस मनुष्य को यदि नहीं मारे तो भी एक सौ बार हत्या करने के विचारों से आने वाले अशुभ कर्मों का बध कर लेता है। यदि एक मनुष्य किसी दूसरे दुखी मनुष्य को सात्त्वना देने या धैर्य बधाने या मदद देने का विचार करता है तो यदि वह उसे मदद नहीं दे सके तो भी इस विचार से आने वाले शुभ कर्मों का उपार्जन करता है और यदि उसकी भावना अति तीव्र हो तो वह क्षणभर में अनेक वर्षों के अशुभ कर्मों का क्षय कर लेता है और केवलज्ञान भी प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार अनेक मकान बनाने के विचारों का या हिस्क कारखानों का या महाआरम्भ या पाप के कार्यों का विचार करता है तो वह कुछ भी नहीं करता हुआ भी तन्दुल मत्स्य की तरह या कालसौरिक कसाई की तरह महापाप के अशुभ कर्मों का बध कर लेता है। प्रसन्नचद्र मुनि ने क्षणभर में सातवीं नरक में ले जाने वाले कर्मों का उपार्जन किया और विचारधारा बदलने से केवल पश्चात्ताप द्वारा उन सभी कर्मों को क्षणभर में नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

आपको जितना अधिक-से-अधिक समय मिले उस समय में इस भावना का स्वाध्याय अर्थात् पर्यटन और चितन करे—“सिद्ध भगवान् है, वे अशरीरी हैं, वे अतिसूक्ष्म हैं, वे दिखाई नहीं देते, वे ज्ञानस्वरूप हैं, वे ज्ञान के भण्डार हैं, वे सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल अवगाहना प्राप्त करके, आनन्दघन बनकर विराजे हुए हैं। उनको, उन सब सिद्धों को नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। यमो सिद्धाण, यमो सिद्धाण, यमो सिद्धाण।

इस विचार का या भावना का हमेशा अधिकाधिक चितन करने वाला अपने पापों का क्षय करता है और वह अत समय में यदि इसी ध्यान में जमा रहकर मरण प्राप्त करता है तो वह इसी जन्म में या भविष्य में कभी-न-कभी अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकेगा।

मधु बिन्दु

1. परिवार या अपनो का कर्ज उतरा, वे अलग हुए, अलग हुए
भावना के बार-बार चितन से मोह नष्ट होने लगता है।

2. शरीर अलग है, मैं अलग हूँ, शरीर नाशवान है, मेरा नहीं है;
आत्मा हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा' इस भावना के बार-बार चितन करने से ऐसे
मोह नष्ट होता है। इसका विशेष विवरण 'ध्यान एक अनुशीलन' का
पुस्तक मे मिलेगा।

अहं से मुक्ति

"अहं को छोड़ो, विनय को धारो, सिद्ध बनोगे"

अहं बम है, विस्फोटक है, महाधातक है,

बचकर रहना, चोट लगेगी, उठ न सकोगे।

अकड़ न करना, झुककर रहना, सुख पाओगे।

रावण अकड़ा, कौरव अकड़े, सुख नहीं पाये॥

भौतिक शक्ति है बहुत ही थोड़ी।

देह कष्ट से पता है चलता॥

कर्म दण्ड से बच नहीं सकता।

जो चाहता सो कर नहीं सकता॥ टेर॥ अहम् .

ज्ञान है थोड़ा, बहुत ही थोड़ा।

जीवन मे यह उतर न पाया॥

मन मे भारी अह भरा है।

ऊँचा-ऊँचा उछल रहा है॥ अहम्

अह में मानव भूल है करता।

भले बुरे का ज्ञान न रहता॥

अह बुद्धि विपरीत बनाता।

बड़ो-बड़ो को अहं गिराता॥ अहम् .

बड़ा स्वयं को नहीं समझता।

गुरुजनो का विनय जो करता॥

उनकी आज्ञा पालन करता।

वही किसी दिन सिद्ध है बनता॥ अहम्.

मोक्ष मार्ग का पथिक कषाय मुक्ति : ग्यारहवां भाग

१ कषाय मुक्ति

दया भावना मन मे रखता ।
सेवा करता वह सिद्ध बनता ॥
पश्चात्ताप से पाप है कटता ।
सिद्ध ध्यान से सिद्ध पद मिलता ॥१॥
चोरी हत्या महापापो को ।
प्रहरी ने पॉच मास मे ॥
पश्चात्ताप अरु प्रभु भजन से ।
काट-काट कर सिद्ध पद पाया ॥२॥
क्रोधी मरकर सर्प है बनता ।
अभिमानी मुर्गा है बनता ॥
माया कपट से औरत बनता ।
लोभी मृगा लोढ़ा बनता ॥३॥
खोट मिलाता, चोरी करता ।
झूठ बोलता, धोखा देता ॥
साहू बन धन लूट मचाता ।
अति लोभी दुर्गति मे जाता ॥४॥
आत्म ध्यान से मोह है हटता ।
हिसा पाप लगने से बचता ॥
दान जो देता वह सुख पाता ।
विनयवान भगवान है बनता ॥५॥
माता-पिता की सेवा करता ।
देवलोक मे देव वह बनता ॥

अह छोडता वह सिद्ध बनता।

कषाय मुक्त है सिद्ध पद पाता॥६॥

2. सिद्धों का अरूपी ध्यान

(क) “एमो सिद्धाण, एमो सिद्धाण। सभी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।”

सिद्धों के अरूपी ध्यान का यह बहुत ही सरल और साधारण है। इसको इस प्रकार भी किया जा सकता है—“एमो सिद्धाण, “नमस्कार है सब सिद्धों को” या “सब सिद्धों को नमस्कार है।

इस ध्यान को करते समय जो आत्माएँ सिद्ध बनी हैं उनके नाम करके, उनका नाम लेकर, उनके आत्म प्रदेशों को लोक के अद्वारा अटल अवगाहना में होने की कल्पना करके यह कहना चाहिए—“सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।” इस समय उनके अरूपी शरीर के अग्रभाग में होने की कल्पना करनी चाहिए। मैं नमस्कार करता हूँ। इन शब्दों को बोलते समय हाथ जोड़कर, शीश झुकाकर वदन करना चाहिए जिससे मन की एकाग्रता हो सके। मन इधर-उधर नहीं दोड़े।

(ख) इस ध्यान को करते समय जो मनुष्य सिद्ध बने हैं, उनके नाम को याद करके, उनके अरूपी होने की कल्पना करके उनको हाथ जड़े चाहिए, तथा गुणगान करना चाहिए। सभी तीर्थकर सिद्ध बने हैं। अर्थात् भगवान के परिवार के प्राय सभी सदस्य सिद्ध बने हैं। स्कन्दकार्थ के पाँच सौ शिष्य सिद्ध बने हैं। दान देने वाले सुमुख गाथापति, धृति चन्दनबाला, शील पालने वाले विजय सेठ, विजया सेठानी, सेठ दुर्ग तपस्या करने वाली काली, महाकाली, सुकाली आदि की तपस्या करके समता विभूति गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुन मुनि स्कन्दक आदि पश्चात्ताप करने वाले, प्रसन्नचन्द्र मुनि, चण्डो आदि की मुख्य घटनाओं को याद करके इन सबको शीरा नमस्कार करना चाहिए। यह भावना रखनी चाहिए कि सभी सिद्ध नमस्कार करता हूँ, वदन करता हूँ। इस प्रकार का सिद्धों का ध्यान को मोक्ष का अधिकारी बनाता है। सिद्धों का ध्यान इस प्रकार भी ही सकता है—“सिद्ध भगवान, सिद्ध भगवान।

आत्म द्रव्य है, अति सूक्ष्म है, अगम अगोचर अजर अमर है।

वे सर्वज्ञ है, शक्तिमान है, आनन्दघन है, निराकार है।।

सब सिद्धों को नमस्कार है।”

(ग) समता विभूति आचार्यश्री नानालालजी म सा सिद्धो के अरुपी ध्यान पर बहुत जोर देते हैं। इस ध्यान से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसा कि नमस्कार मत्र मे बताया गया है। दृढ़ प्रहारी तो प्रभु का भजन करने से चार मोटी हत्याओ के पाप से न्यारा हो गया था। जो जैसा विचार करता है, वह वैसा ही बन जाता है। फिर सिद्धो का ध्यान करने वाला यदि सिद्ध वन जावे तो इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है ?

आचार्य भगवन् ने समीक्षण ध्यान के अन्दर “मैं सिद्ध बनूगा” इस भावना पर बहुत जोर दिया है। इसका स्वाध्याय इस प्रकार किया जा सकता है—“मैं भीतर हूँ, मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूगा। सिद्ध लोक मे, सिद्ध दशा मे, अटल अवगाहना प्राप्त करूगा। आनन्दधन और अभय बनूगा।

‘सब सिद्धो को मैं नमस्कार करता हूँ और मैं सिद्ध बनूगा।’

सिद्धो के आठ गुणो का, पन्द्रह भेदो का, अटल अवगाहना का, अमूर्त भाव आदि का चितन करते हुए चित्त को एकाग्र करना चाहिए। इन भावनाओ का हजारो, लाखो बार जाप और चितन-मनन करना चाहिए। यह सामायिक या बिना सामायिक भी, सोते हुए या बैठे हुए, कही भी, कभी भी किया जा सकता है।

2 (क) सिद्धो के ध्यान के अलावा आत्म भावना भी केवलज्ञान प्राप्ति की साधना है। वह इस प्रकार भायी जा सकती है—

आत्मा हूँ मैं, देह नही हूँ
मैं अमूर्त हूँ चेतन हूँ।
मैं अवद्य हूँ, मैं अदाह्य हूँ
अजर, अमर हूँ शाश्वत हूँ॥
ज्योतिपुज हूँ ज्ञान रूप हूँ
मैं चेतन हूँ जीवन हूँ।
निराकार हूँ निर्विकार हूँ
आत्मा हूँ मैं चेतन हूँ॥

(ख) शरीर अलग है, मैं आत्मा अलग हूँ। शरीर नाशवान है, यह मेरा नही है। मैं आत्मा हूँ, मैं सिद्ध बनूगा। मैं ही मेरा हूँ मुझ आत्मा के सिवाय मुझ आत्मा का ओर कुछ भी नही है। शरीर, परिवार धन ये मेरे नही है।

3. समीक्षण ध्यान

मोह छोड़ो परिवार का मैं सिद्ध बनूगा	सिद्धो का ध्यान और गुणनाम सब सिद्ध बने
--	---

(क) आत्मा की मुक्ति कषाय छोड़ने से ही हो सकती है। उत्पत्ति का मूल मोह, ममत्व भावना है। मोहनीय कर्म सब कर्मों का है। इसको जीत लेने वाला निश्चय ही सिद्ध पद प्राप्त करता है। प्रकार का है परन्तु परिवार का मोह शायद सबसे अधिक प्रबल है। इसको जीतने का अचूक उपाय स्वाध्याय है।

(ख) 'मोह छोड़ूगा परिवार का' इस पाठ का कुछ उदाहरणों देने चितन-मनन करना और प्रतिदिन काफी समय तक स्वाध्याय एवं आवश्यक है। यह मोह अनादिकाल से हमारे साथ लगा हुआ है। इसको हटाने के लिए हजारों लाखों बार स्वाध्याय करना जरूरी है।

(ग) मोह मे मनुष्य तीन बातों का विचार करता है—1 परिदृष्टि है। 2 यह हमेशा मेरे साथ रहने वाला है। 3 यह हमेशा मेरी मदद देता है ये तीनों विचार ही भ्रमात्मक हैं और अज्ञान से भरे हुए हैं। सर्वात्मक अलग-अलग हैं। किसी का किसी के साथ स्थायी सबध नहीं है; आत्माओं का इस ससार मे स्थायी सबध होता तो वह सबध में रहता, किन्तु ऐसा नहीं है।

दूसरा विचार है कि परिवार हमेशा मेरे साथ रहने वाला है। भ्रम है। जब तक साथ रहने के लिए कर्मों की स्वीकृति है और उपादान संबंध बना हुआ है तभी तक परिवार साथ रह सकता है। उपादान संबंध समाप्त होते ही सभी प्रकार के पारिवारिक सबध समाप्त होते ही कर्ण, करकण्डु, कबीर, शकुन्तला, नूरजहा आदि को जन्मते ही मेरे से अलग होना पड़ा। विभीषण ने रावण को मरवाया, सुग्रीव ने मरवाया। कस ने अपने पिता उग्रसेन को कैद किया। पांचित पिता श्रेणिक को कैद किया। कौरव-पाण्डव चर्चेरे भाई ही थे।

तीसरा विचार है कि परिवार से मदद मिलती है किन्तु सहायता कर्मों की स्वीकृति के बिना नहीं मिलती। असातावेदनीय कर्म उदय मे आकर परिवार को दूर हटा देते हैं।

जीव को नाच नचाता है उस समय यह परिवार को शान्तु बनाकर मनुष्य की हत्या तक करवा देता है।

(घ) परिवार मोह से एक भयकर हानि हो सकती है। परिवार मोह में मरने वाला जीव महेशदत्त के माता और पिता की तरह कुतिया एव पाड़ा (भेस का बछड़ा) बन सकते हैं। वे बिल्ली, चूहा, कौआ आदि तिर्यच बनकर वही चक्कर लगाते हैं किन्तु परिवार मोह को बिलकुल छोड़ देने वाले मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। अत 'मोह छोड़ूगा परिवार का' इस भावना का लाखो करोड़ो बार जप और चितन-मनन करना प्रत्येक प्राणी के लिए लाभदायक है।

(ङ) परिवार मोह छोड़ने का अर्थ यह नही है कि परिवार को छोड़ दिया जाय। जब तक मनुष्य परिवार में रहता है तब तक उसे परिवार की सरल और नि स्वार्थ भाव से सम्बन्ध सेवा करनी चाहिए।

(च) 'मैं सिद्ध बनूगा' इस भावना को जपने वाला और इस सकल्प को दृढ़ बनाने वाला कभी-न-कभी अवश्य ही सिद्ध बनता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो जैसा विचार करता है वह वैसा ही बन जाता है। 'सब सिद्ध बने' इस भावना का जाप करने वाला अपनी मगल भावना से खय मगल रूप बन जाता है। ऐसा साधक दुर्भावनाओं से, दूसरों के प्रति अनिष्ट चितन से, द्वेष और क्रोध भाव से और अनेक प्रकार के अवगुणों से बच जाता है और वीतराग दशा प्राप्त करता है।

4 समता आचरण

परिवार मोह छोड़गा सिद्ध बनूगा	रो मत दुख दर्द में	फूल मत सुख व मनोरजन में	अह छोड़ो
-------------------------------------	-----------------------	-------------------------------	----------

(क) 'परिवार का मोह छोड़ूगा' महेशदत्त की माता परिवार मोह के कारण कुतिया बनी व पिता भैसा बने। नन्दन मणिहार मेढ़क बना। एक राजा अपनी रानियो के मोह के कारण मरकर उन रानियो के मल-मूत्र के कुण्ड मे लाल रग का कीड़ा बना। चक्रवर्ती की पटरानी मोह के कारण पति वियोग मे छ महीने विलाप करती हुई छठे नरक मे गई। "मैं परिवार छोड़ूगा व सिद्ध बनूगा।" परिवार मोह छोड़ने से मरुदेवी मांता सिद्ध बनी।

परिवार मोह से होने वाली हानियों का और परिवार मोह छोड़ने से वाले लाभ का बार-बार चितन-मनन करने से परिवार मोह छूट लें।

(ख) परिवार मोह छोड़ने की जरूरत है। परिवार को या परिवार सम्यक् सेवा को छोड़ने की जरूरत नहीं है। परिवार के स्वतः दुःसिद्ध बनने की कामना करना और परिवार के प्रति अपने कर्तव्य करना मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।

(ग) ये मत दुःख दर्द में इस शरीर की रक्षा करना मेरे हाथ में है। इसकी रक्षा होना या विनाश होना मेरे उन कर्मों के हाथ में हैं जिनमें अपना फल भोगने के लिए मुझे यह शरीर दिया। शरीर के कष्ट और किसी दुख के समय दुखानुभूति, आर्तध्यान, क्रोध, द्वेष और दुर्भाग बचने के लिए—(अ) कर्म सिद्धात (ब) आत्म भावना या आह अथवा (स) समीक्षण ध्यान (द) श्री जवाहराचार्य की तीन बाते राम हृदय दिया, तन सेवा में लीन ध्यान में रखने से मनुष्य को दुख में दुर्दण्ड नहीं होती और वह समता भाव धारण करके कर्मों को काटता है। पद का अधिकारी बनता है।

कर्म सिद्धात इस प्रकार है—यह दुख, दुख नहीं है। यह मेरे जीवन का फल है। इसे भोगना ही पड़ेगा। इससे आत्मा का कुछ पतन नहीं है। इससे आत्मा का लाभ होता है, कर्म कटते हैं। आत्मा मोक्ष मार्ग में बढ़ती है। यह पुद्गल स्पर्शना है। यह टल नहीं सकती। मेरे किसी दूख नहीं दूगा। तब मुझे क्रोध नहीं आएगा। इस प्रकार मैं द्वेष भावना नहीं जाऊगा। शरीर का मोह भी धीरे-धीरे नष्ट हो जाएगा। मुनि गजनु दुःख में नहीं रोए, वे सिद्ध बने।

(घ) 'फूल मत मनोरंजन में' आत्म भावना, सिद्धों का ध्यान, भावना आदि आत्मा का स्वाध्याय है। मनुष्य अपनी पॉचो इन्द्रियों के लिए मनोरंजन करता हुआ भारी अशुभ कर्मों का वध करता है। तथा किसी दूसरे को दुःख में देखकर खुश होता हुआ यहुत वडे असुख का वध करता है। इस बात को याद रखिए—'फूल मत भातिर मनोरंजन मे और दूसरे को दुःख में देखकर।' भातिक सुखों के विरुद्ध कर्म सिद्धात मे, आत्म भावना मे, समीक्षण ध्यान मे और श्री जवाहराचार्य की तीन बातों मे लीन होता हुआ सुखानुभूति से वचकर अशुभ कर्मों का वध सकता है। जम्भू स्वामी भातिक सुख मे नहीं फूल, वे मिल दें।

(ड) 'बाहुबलीजी ने अह छोड़ा, वे सिद्ध बने।' अह छोड़ने के लिए "बड़ा मत समझो स्वयं को—तप मे, ज्ञान मे, धन मे, दान मे और धार्मिक वातो मे।" अहकार से बहुत बड़े-बड़े लोगो और महात्माओं का पतन हुआ है। इससे शुभ कर्मों का फल मिलना रुक जाता है। अह छूटने से बाहुबलीजी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। 'अह बम है, यह महा विस्फोटक है।'

(च) इन चारों भावनाओं का कोटि चितन करने से अवश्य लाभ होगा। यह भौतिक सुख मीठे जहर के समान है, किम्पाक फल के समान है, जो देखने और खाने मे तो अच्छा लगता है किन्तु खाने वाले की मृत्यु का कारण बनता है।

5. क्रिया और भावना

मनुष्य जो भी करता है उसके मूल मे या उसे कराने वाली जो भावना होती है, उसी शुभ या अशुभ भावना के अनुसार उसे शुभ या अशुभ फल मिलता है। क्योंकि बिना विचार या भावना के कोई काम नहीं होता। अत अशुभ विचार से किसी भी क्रिया का फल, दान या सेवा का फल भी अशुभ हो जाता है। अत साधु, परिवार या शत्रु की सेवा करने वाला या किसी को कुछ देने वाला अपनी भावना के अनुसार शुभ या अशुभ कर्म बाधता है। अत परिवार की भावना मे भी मोह छोड़कर परिवार वालों को केवल आत्मा समझकर अनुकम्पा भाव से सेवा करने वाला ही कर्म निर्जरा और पुण्य का अधिकारी बन सकता है। जो व्यक्ति दुर्भावना से, अपने मन मे दुख करता हुआ जो भी कार्य करता है वह अशुभ कर्म उपार्जित करता है। अत प्रत्येक कार्य अनुकम्पा भाव से करना चाहिए।

6. क्रिया का फल

(क) भारतवर्ष के बौद्ध भिक्षु धर्मबोधि ने चीन देश के सप्राट बुश से कहा—"राजन् ! तुम कहते हो कि मैंने हजारों धार्मिक स्थान बनवाये। धर्म का खूब प्रचार किया, ग्रथ लिखवाये। धर्म पर खूब पैसा खर्च किया, लेकिन तुमने यह सब काम प्रसिद्धि की भूख, कीर्ति का लोभ होने के कारण किये। इससे तुम्हारा नाम फैला। तुम्हारे अहकार की तुष्टि हुई। इससे ज्यादा तुम्हे कुछ मिलना नहीं है। अहकार से खर्च किए हुए धन से मोक्ष नहीं मिलता।

(ख) साधु सुपात्र होता है फिर भी भगवान महावीर को के दिना दिए हुए दान से पूर्ण सेठ को महापुण्य की प्राप्ति

दान की भावना रखने वाले जीर्ण सेठ को भगवान महावीर को दान दें। अवसर नहीं मिलने पर भी केवल भावना से ही पुण्य की प्राप्ति हुई।

(ग) अनुकम्भा से किए हुए काम दान, धर्म तथा सेवा आदि रूप सबसे श्रेष्ठ, महापुण्य को देने वाला और मोक्ष प्राप्ति का साधन है। सकता है। अपग, बीमार, लंगड़ा, अधा आदि की सेवा की जाए अनुकम्भा है।

(घ) दूसरों को शिक्षा देना, जीविकोपार्जन के योग्य बनाना, पर चलाना आदि महान सेवाएँ हैं। परिवार वालों का भी भोइ छोड़ने निःस्वार्थ केवल आत्मा समझकर उनकी सेवा करना महापुण्य को देने है। है। परिवार में रहता हुआ परिवार की सेवा नहीं करने वाला महान धा उपार्जन करता है। जिसके ऊपर परिवार का भार है, उस भार दोनों निभाने वाला और परिवार को असहाय छोड़ने वाला अशुभ कर्म और उपार्जन करता है।

(ङ) भौतिक कामों में सौदा पटने पर दलाती मिलती है। आध्यात्मिक कामों में सौदा पटे या नहीं पटे, भावना के कारण दलती है। मिल ही जाती है।

7. आशीर्वाद और श्राप

साधारण मनुष्यों का यह भ्रम है कि दूसरों का दिया हुआ आर्थिक और श्राप भला और बुरा कर सकता है। लेकिन आशीर्वाद या श्राप किसी का भला या बुरा नहीं हो सकता। मनुष्य के जिस भले या दुरुदारी करने पर उसको श्राप या आशीर्वाद मिलता है, उस भले या दुरुदारी गुप्त अदृश्य फल के कारण ही मनुष्य का भला या बुरा होता है। अतः या श्राप से जिसको वह दिया जाता है उसको लाभ या हानि नहीं। किन्तु श्राप या आशीर्वाद तो देने वाले का ही बुरा या भला कर रखने बच्चों की गालियों से और अपराधियों के श्राप से अद्यापकों या बदलावों का कुछ नहीं बिगड़ता। धनवानों या शक्तिशाली पुरुषों के बल से भले होकर उनको जो आशीर्वाद दिया जाता है, उस आशीर्वाद से उनकी जमीदारों या आतक फैलाने वाले पुरुषों का भला नहीं हो सकता।

शिक्षा प्राप्ति के साथ-साथ सेवा करते हुए पुण्य करना आवश्यक नहीं। या इस जन्म के पुण्य से विद्या और धन आते हैं। पुण्य के द्विनामिक धन प्राप्त नहीं हो सकते। भगवान महावीर का स्पष्ट उपदेश है-

किया स्वयं का स्वयं ही पाता ।
पर का दिया कुछ काम न आता ॥

8. दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता

जब मनुष्य अपने परिवार, पड़ोसी, शत्रु, भिखारी या किसी सम्पत्ति को कुछ सहयोग देता है तो उस दाता को अपनी भावना के अनुसार सुख या दुख के रूप में उस दिए हुए (दान) का बदला अवश्य मिलता है। वह बदला, यदि जिसे दिया गया है, उससे नहीं मिले तो किसी अन्य निमित्त से मिल जाता है और कभी-कभी प्रकृति से या उसके अपने शुभ कर्मों की सहायता से अपने-आप ही मिल जाता है। प्रह्लाद, प्रद्युम्नकुमार, भीम, पाण्डव आदि को उनके किए हुए पुण्य के प्रभाव से सुख ही मिला तथा उनकी रक्षा हुई। सेठ सुदर्शन विना किसी रक्षक की सहायता के अर्जुनमाली के मुद्गर से बच गया। दूसरों का भला करने वाला मनुष्य अपने शुभ कर्मों के प्रभाव से करोड़पति के घर जन्म लेकर या वसीयत से या गोद लेने से धनवान बन जाता है। शुभ कर्मों से मनुष्य को स्वस्थ शरीर, सहायक मित्र, ऊँचा पद व सुखी जीवन आदि भौतिक व आध्यात्मिक ऐश्वर्य मिलता है। दूसरों को दुख देने वाले तथा अशुभ कर्म करने वाले रावण को, बाली को और कौरवों को दुख ही मिला। अभय रानी, हिटलर आदि ने आत्महत्या कर ली। पापी मनुष्य अपने अशुभ कर्मों के कारण रोगी और विकलाग शरीर पाता है। वह जल में डूब सकता है, अग्नि में जल सकता है। वह हमेशा शत्रुओं से धिरा रहता है तथा दुख ही पाता है। इसलिए कहा गया है कि—“दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता।” उसका बदला सुख या दुख के रूप में अवश्य मिलता है।

किसी से लिया हुआ भी मुफ्त में नहीं मिलता है, उसका बदला अवश्य चुकाना पड़ता है। इस बदले में निमित्त की प्रधानता नहीं रहती। निमित्त के बिना भी उपादान की किस्मत में जो लिखा होता है, वह उसे अवश्य मिलता है। जैसे कबूतर आदि पक्षियों को चुगने के लिए अनाज डाला जाता है और घर से निकाली हुई गायों को खाने के लिए घास डाला जाता है। उसका फल भी हमें अन्य रूप में मिलता है। प्रायः दूसरे निमित्तों से और दूसरे ही रूप में तथा कभी-कभी इसी जन्म में और कभी भविष्य के जन्मों में मिलता है। वे फल पाने की दृष्टि से उपादान ही बनते हैं। इसमें निमित्तों का विशेष महत्त्व नहीं रहता। उपादान ही प्रधान होता है।

अर्थात् किसी को कुछ दिया जाए तो उस दान का शुभ फल दान देने मिलता है। निमित्त चाहे कोई बने।

परिवार के संबंध में भी लोगों को यह भ्रम है कि परिवार जहाँ दिए हुए का बदला नहीं मिलता। यहाँ यह बात समझ लेनी चाही। परिवार तो सिर्फ उपादानों या निमित्तों का ही संजोग है। परिवार ने किसी को कुछ दिया जाता है या किसी से कुछ लिया जाता है, उसका स्तर का हिसाब स्वयं चालित कर्म पुद्गलों पर स्वयं ही अकित हो जाता है। उन्हीं की शक्ति से बदला देने लेने का काम इस जन्म में या अपले जन्म में पूर्ण होता है। मुनि गजसुकुमाल को, उनके सिर पर अंगारे रखे जाने निन्यानवे लाख जन्म या भव पहले का बदला जो कर्म पुद्गलों पर आया था, वह मिला। परिवार में हरेक सदस्य अपने-अपने कर्मों का फल है। वहाँ मुफ्त में लेने देने का काम तो हो ही नहीं सकता।

किसी कार्य के बदले सुख या दुख मिलेगा और वह कितने में मिलेगा इसका निर्णय कभी भी भूल नहीं करने वाले कर्मों द्वारा तराजू पर तुलकर कर्म पुद्गलों पर अकित होता है। इसमें कभी भूल ही नहीं सकती। इसमें मनुष्य अपने परिवार की सहायता भी नहीं मात्रा में नहीं कर सकता। वास्तव में तो कोई किसी को न कुछ दे रहे हैं और न कुछ ले सकता है। वह उपादान को देने में केवल निर्दिष्ट बनता है। इसलिए किसी को सहायता देकर अहकार व कीर्ति दी जानी चाहिए और परिवार को सहायता देते समय उसे दबाव समझकर मन में आर्तध्यान नहीं करना चाहिए। इससे कर्मों का फल क्षीण या नष्ट हो जाता है तथा अशुभ कर्मों का वध हो जाता है। सहायता देते समय उसे अनुकर्ष्णा भाव रखना चाहिए आर्तध्यान विचारते रहना चाहिए कि यह मेरा अहोभाग्य है कि मुझे अनुकर्ष्णा करने परिवार की सेवा करने का मौका मिला है। इससे मेरे सुख, स्वर्ग तक प्राप्त करने का अधिकारी बन रहा हूँ। अनुमोदना करने से सुख जाता है और पश्चात्ताप करने से शुभ और अशुभ दोनों ही दृश्य हो जाते हैं। अहं भाव और कीर्ति का मैल पश्चात्ताप लपी राधुन तक चाहिए। हिसक भावना, कपट और आर्तध्यान का जहर दान तक नहीं सम्मिलित होने देना चाहिए। शुभ कर्मों का अमृत अनुवन्न तक पात्र में सुरक्षित रखना चाहिए। यही मोक्ष का मार्ग है।

स्वास्थ्य चर्चा

स्वस्थ रहने के लिए मनुष्य को इन बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए—

भोजन का प्रत्येक ग्रास (कवा) छोटा हो, उसको गिन-गिन कर वर्तीस बार चबा करके खाना चाहिए। सूर्य का प्रकाश रहते हुए (छिपने से पहले) किया हुआ भोजन लाभदायक और स्वास्थ्यप्रद होता है। अधिक चटपटा, खट्टा भोजन स्वास्थ्य खराब करता है। तली हुई चीजे जैसे—पूड़ी, कचोरी, पकौड़ी, मिठाइयाँ आदि पेट को खराब करती हैं। जिनको दूध से गैस बनती हो वह थोड़ा-थोड़ा करके तीन-चार बार में दूध पीवे। जितनी भूख हो उससे $\frac{1}{4}$ (एक चौथाई) भोजन कम खाये। कभी-कभी उपवास या ऊनोदरी तप करे। यह स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। दवाइयाँ कम से कम लेनी चाहिए।

जीवनोपयोगी चर्चा

1 जे न मित्र दुख होहि दु खारी ।
तिन्ही विलोकित पातक भारी ॥

जो अपने मित्रों अर्थात् परिवार के लोगों सम्बन्धियों, पड़ोसियों आदि के दुख में दुखी नहीं होता अर्थात् उन पर दया नहीं करता और उनकी तन, मन, धन से सहायता नहीं करता उस पुरुष को कभी सिद्ध पद प्राप्त नहीं हो सकता। वही मनुष्य परमात्मा बनने का अधिकारी है जो अपने शत्रु से भी बदला लेने की बात सोचना तो दूर रहा, किन्तु अपने दया भावना से, नि स्वार्थ त्याग से और सेवा से उसका भला करने की बात सोचता है और करता है।

2 बुरा काम करते हुए यदि धन आता है तो उसे उस बुरे कर्म का फल सोचना भूल है। वह किसी पहले हुए कर्म का ही फल है। इस वर्तमान कर्म का बुरा फल आगे कभी इसके उदय में आने पर ही होगा। इसलिए हमेशा अच्छा कर्म ही करना चाहिए।

3 आलसी मनुष्य को कोई अपने पास नहीं रखना चाहता। गरीबी हमेशा उसको घेरे रहती है। प्रथम मीठी बोली, दूसरा मिलनसार स्वभाव, तीसरा सत्य भाषण, चौथा ईमानदार तथा पॉचवा परिश्रम—ये पॉच गुण होने से मनुष्य ऊँचा उठता है।

4 लोभी को कुछ धन देकर, क्रोधी को हाथ जोड़कर,

.....

उसकी इच्छानुसार चलने देने पर और पण्डित को सत्य बोलकर उपर्युक्त मे किया जा सकता है।

5. माता-पिता को सवेरे उठते ही प्रणाम करने से मनुष्य का भवन खुलता है।

6. झूठ बोलने वालों को भविष्य के जन्म मे बोलने वाली जीवन नहीं मिलती। अर्थात् वह पशु-पक्षी आदि बनता है।

7. चोरियों करने वाले को हाथ की जगह दो पैर मिलते हैं और दो चौपाया पशु बनता है।

8. कपट करने वाला मनुष्य अगले जन्म मे स्त्री बन सकता है।

9. अपने नौकर से बहुत ज्यादा काम लेने वाला अगले जन्म मे नेपाल बनता है और उसको अधिक काम और कम भोजन मिलता है।

10. मांस खाने वालों को अगले जन्म मे पशु आदि बनकर दूसरे दो अपना मास खिलाना पड़ता है।

11. अपने दान और तप की प्रशस्ता और अहकार करने वाले को दान और तप से मिलने वाला फल शिथिल पड़ जाता है।

12. अहकार और अपने पाप का पश्चात्ताप करने से कर्म हत्या दो जाते हैं या नष्ट भी हो सकते हैं।

13. सेवा अर्थात्—अनुकम्पात्मक क्रिया मोक्ष का मार्ग है।

नियत-अनियत

भंगवान महावीर का अनेकान्त सिद्धांत यह बताता है कि न तो सा बाते नियत है और न ही सब बाते अनियत है। कर्मवाद के अनुसार कर्म का कर्म पूर्व के कर्मों मे परिवर्तन कर सकता है। दिव्य दिवाकर द्वारा सातवा भाग, साठ पेज मे यह लिखा है कि दान से विधाता का लेह झूठा पड़ जाता है। बडे-बडे जैन विद्वानों का कहना है कि सर्वज्ञ रामी इन की सभी पर्यायों को जानते हैं। इसका अर्थ यह है कि जो नियत है उनका नियत रूप में जानते हैं तथा जो अनियत है उनको अनियत रूप में नहीं है। दृढ़ प्रहारी ने चोरी और चार हत्याओं के महापापों को परवाताम रोका प्रभु भजन से क्षीण कर दिया। अनिकाचित कर्मों का अर्थ है कि वे पूर्ण द्वारा से नियत नहीं हैं, उन्हे बदला जा सकता है। वहुश्रुत र्घुर्णिय द्वारा समरथमलजी महाराज सा. एक मत्री पुत्र की कथा सुनाकर कहता है कि कर्मों को बदला जा सकता है। तत्र-मंत्र, तप और दान आदि से दोनों परिवर्तन होता है।

दूसरी ओर स्वर्गीय कवि श्री अमरचंदजी म सा ने जैनत्व की झाँकी नामक पुस्तक मे समवाय के पाठ मे साफ लिखा है कि चाहे कुछ भी करो, होता वही है जो नियति को स्वीकार है। श्री कानजी ऋषि ने 'क्रमबद्ध पर्याय नामक पुस्तक मे स्पष्ट लिखा है कि अगले जन्म स्थान का रिजर्वेशन (आरक्षण) हुए बिना मरना भी मनुष्य के हाथ मे नही होता। भव स्थिति पके बिना मोक्ष की प्राप्ति भी नही होती। भव्य-अभव्य द्रव्य नही हो सकता और अभव्य भव्य नही हो सकता। प्रकृति की बहुत-सी बाते सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रों की गति की तरह नियत है। वृद्धालोयणा मे लिखा है कि पुद्गल स्पर्शना टलती नही है।

एक बहेलिये (चिडीमार) ने एक पक्षी को पकड़ा और एक केवलज्ञानी को झूठा साबित करने के लिए पूछा कि मै इसे मारूगा या छोड़ूगा। तब केवलज्ञानी ने जवाब दिया कि तुम इसे मार भी सकते हो और छोड भी सकते हो। इन सब बातो से यही प्रकट होता है कि कुछ बाते नियत ओर कुछ अनियत है। हम सर्वज्ञ नही हैं इसलिए नियतिवाद और अनियतिवाद के झगडे को छोड़कर कषाय आदि को जीतने के लिए निश्चय दृष्टि मे विश्वास रखते हुए व्यवहारवाद का पालन करना चाहिए। इससे हमें दया भावना आदि की वृद्धि मे सहायता मिलती है और हम कर्म काटकर मोक्ष मार्ग पर चल सकते हैं।

पाप का पश्चात्ताप

किसी से झूठ बोलकर, धोखा देकर, चोरी करके या दबाव आदि से धन या कोई चीज लेना बहुत बड़ा पाप है। इस प्रकार लिया हुआ धन या चीज प्राय अपने साथ धोखेबाज के घर या घर से अधिक धन किसी न किसी रूप मे लेकर निकल जाता है। धोखा देने वाले को धोखे से ली हुई चीज या उसकी कीमत असली मालिक को पश्चात्ताप करते हुए लौटा देनी चाहिए। यदि लौटाई नही जा सके तो उसके फल रूप मे दृढ़ प्रहारी और अर्जुनमाली की तरह पश्चात्ताप करते रहना चाहिए जिससे उस किए हुए पाप का फल हल्का हो सके या नष्ट भी हो सकता है।

सत्-सकल्प

सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा, ममता अरु इच्छा छोड़ूगा।

समता रखकर, कर्म काटकर, सिद्धों का पद प्राप्त करूगा॥

पश्चात्ताप से, सिद्ध ध्यान से, सब पापों का नाश करूगा।

झूठ, लूट से बचा रहँगा, सच बोलूगा, दया करेगा।

काम क्रोध, मद, मोह छोड़कर, आनन्दघन और अभय बनूगा।।

नोट—“सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूंगा, ममता अरु इच्छा छोड़ुगा” इन्हीं
दस लाख बार स्वाध्याय करने से जीव सिद्ध बन सकता है।

“भलो हो, भला हो, सबका भला हो” इस वाक्य का दस लाख बार
स्वाध्याय करने से कषाय छूट सकती है।

मानव की भूल

मानव की सबसे भारी महाभयंकर भूल यह है कि वह अपने विजयों
को अपनी बुद्धि को तथा स्वयं अपने-आप को सर्वोपरि समझता है। अद्वा
मे आकर अपनी मनमानी करता है। इससे कभी-कभी वह भारी कर्ज़ द
कचरे में भी फस जाता है और दुख के दल-दल में धस जाता है। इन्हीं
निकलना उसके लिए असभव-सा हो जाता है। जो स्वयं को दहा न
समझता तथा बड़ों का आशीर्वाद लेकर उनके बताए हुए मार्ग पर चला
है वही यथार्थवादी मानव है और वही सुखी बनता है। अहंकारी प्राय नहीं
के मार्ग पर जाता है लेकिन विनयवान भगवान बनता है।

मोक्ष का मार्ग

महापुरुषों ने मोक्ष प्राप्ति का एक अति सरल मार्ग बताया है। उन्होंने
कहना है कि “यमो सिद्धाण्” या “सब सिद्धों को नमस्कार है” १
भावनाओं को जितनी बार जपोगे तथा अपने मन को, वित्त को रिहोगे २
अरुपी ध्यान में लीन रखोगे उतना ही मोक्ष के नजदीक पहुँचोगे दो ३
सिद्धों के ध्यान से पाप कटता है और सिद्ध पद मिलता है।

मधु बिन्दु

1 परिवार का प्रत्यके सदस्य और ससार के सभी प्रार्थी १०
पिता-पुत्र, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य सभी अपना-अपना लेना देना दुःख ११
और अलग हो जाते हैं। मुफ्त मे किसी को कुछ नहीं मिलता। १२

2 झूठ, ठगी, चोरी, मिलावट, साहूकार बनकर लोगों को दृढ़ १३
दुर्भावना—ये महापाप हैं जिससे मृगा लोढ़ा जैसा शरीर मिलता है। १४

3 दान देना, दया करना, सेवा करना, सच बोलना—ये धर्मिता १५
है।

ज्ञेय, हेय, उपादेय

- 1 कर्मों के सामने इच्छा नहीं चलती।
- 2 पुद्गल स्पर्शना अर्थात् होनहार नहीं टलती। किसी को दोष मत दो, क्रोध मत करो।
- 3 लेन-देन बाकी नहीं रहता।
तब परिवार अलग हो जाता।
- 4 दया भावना—निस्वार्थ भाव से दूसरे का भला करने का विचार—दया भावना है। भला करना सेवा है, धर्म है और यह मोक्ष का मार्ग है।
- 5 लोभ और लूट—(क) धनवान बनने की इच्छा लोभ है। (ख) वैतन पाते हुए भी अपने काम के लिए जनता से और अधिक धन लेना भी लूट है। (ग) साहूकार कहलाते हुए चीजों में मिलावट, चोरी, झूठ, कपट द्वारा या बिलकुल मुफ्त में लोगों का धन छीनना या शोषण करना और अपनी चीज की उचित से बहुत अधिक कीमत लेना लूट है।
- 6 मुफ्त में न तो कुछ आता है और न कुछ पाता है। पति-पत्नी को भी अपना-अपना कर्ज, कर्म तराजू पर तोलकर किसी-न-किसी जन्म में चुकाना पड़ता है। मुफ्त में लेना व खाना छोड़ो, देना व खिलाना तथा दया करना सीखो।
- 7 पश्चात्ताप और प्रभु भजन से पाप नष्ट होता है और मोक्ष मिलता है।
- 8 दूसरों की आलोचना व निन्दा करना छोड़ो। कम घोलो, मोन रखो।
- 9 अह से धर्म का फल शिथिल पड़ जाता है तथा पाप का फल निकायित और भयकर हो जाता है।
- 10 “माता-पिता की सेवा करता।
देवलोक में देव वह बनता।।”



कषाय व मोह छोड़ने के उपाय

कषाय मुक्ति : बारहवां भाग

कषाय और मोह सम्बन्धी विचार

1. अन्याय है या अपना कर्म दण्ड—जिस घटना को साधारण मत्तु; अपने ऊपर किया जाता हुआ अन्याय समझते हैं और क्रोध करते हैं तभी पूर्ण ज्ञानी मनुष्य अपने अशुभ कर्मों का फल समझकर समता रखा करता है; निर्जरा करते हैं। वे सिद्ध बनते हैं।

2 (क) सत्संकल्प—समता विभूति श्री नानेशाचार्य म जा का ८८ मुख्य उपदेश यह है कि जीवन का लक्ष्य है सिद्धत्व प्राप्त करना। इस लिए स्वाध्याय करने का यह सूत्र है—“सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा दि: लोक मे सिद्ध दशा मे अटल अवगाहना प्राप्त करूगा, आनन्दघन ओऽसि बनूगा।”

2. (ख) सत्संकल्प को तथा दूसरे सूत्रों को पाँच-सात लाठ व जपने से यह भावना रोम-रोम मे अपना घर बना लेती है और मनुष्य अवश्य ही सफलता मिलती है।

2 (ग) इस जाप को दिन मे, रात मे, सामायिक मे या फि: सामायिक के समय भी, सोये हुए या बैठे हुए भी दुकान मे या राहत मे, किसी भी स्थान पर, किसी भी समय पर और किरी भी दर्ता किया जा सकता है। इससे पुण्य की प्राप्ति और कर्मों की निर्जरा होती है।

3 (क) गंदा नाला—महापुरुषों के मनोविज्ञान के अनुसार ताला व सुखाने के लिए उसके अन्दर गदा पानी लाने वाले नालों को गंद दिये जाते हैं वह तालाब कभी सूख नहीं सकता। इस रोक के लिए सूत्र है—“किसी एक का या सबका ही बार-बार हमेशा जप करना।

(ख) इसका पहला सूत्र है—“भलो हो, भला हो, सवदा नहीं दूसरा सूत्र है—“बुरा नहीं हो, बुरा नहीं हो, किसी का भी दुर नहीं तीसरा सूत्र है—‘मै सबको क्षमा करता हूँ सभी मेरे मित्र हैं, याँ हैं।’

नहीं है।” चौथा सूत्र है—“मैं किसी की अशुभ आलोचना, निदा या विकथनहीं करूँगा।”

(ग) इन ऊपर वाले सूत्रों से दुर्भावना और अशुभ कर्म आने रुक जायेगे और साधक मुफ्त में ही तन्दुल मत्स्य या कालसौरिक कसाई बनने से बच जाएगा। यह स्व. गणेशाचार्य जी की अद्वेष भावना है।

4 (क) कषाय को छोड़ने के लिए कुछ उपाय नीचे दिये हैं—प्रथम उपाय है कि मनुष्य को कषाय से प्राय पशु का जन्म मिलता है। उसे यह जाप करना चाहिए—“क्रोधी मरकर सर्प है बनता।” दूसरा सूत्र है—“अभिमानी मुर्गा है बनता।” तीसरा सूत्र है—“माया कपट से मादा (औरत) है बनता।” मल्लिनाथ भगवान ने तीर्थकर होते हुए भी मादा अर्थात् औरत रूप में जन्म लिया था। चौथा सूत्र है—“लोभी मृगा लोढ़ा है बनता।” मृगा लोढ़ा के हाथ पैर नहीं थे, उसका जीवन बहुत दुखी था।

(ख) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार प्रकार के अशुभ कामों से दुख पाने वाले लोगों के जीवन की कथा सतो व साधियों से पूछिये और कषाय मुक्ति की भाग एक से ग्यारह तक की प्रस्तकों में पढ़िये।

(ग) अपने अडोस-पडोस में रहने वालो को कषाय से होने वाले दुखो से अवगत कराइये।

5 (क) मोह छोड़ने के लिए और अराग भावना को मजबूत बनाने के लिए यह चितन-मनन करिए। प्रथम शरीर मोह को छोड़ने के लिए विचार करिये कि मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि खन्दक जिनकी चमड़ी उत्तारी गई और स्कन्धाचार्य के 500 शिष्य जिनको पालक द्वारा घाणी में पैला गया उन्होंने शरीर का मोह छोड़ा और वे सिद्ध बने।

(ख) अराग भावना को मजबूत बनाने और वीतरागी घनने के लिए परिवार मोह को छोड़ना जरुरी है। यह याद रखिए कि केवल परिवार को छोड़ने से या अपने शिष्यों को छोड़ने से मनुष्य वीतरागी नहीं बनता। छोड़ना है केवल मोह को और जब तक परिवार में रहे तब तक परिवार को श्री जवाहराचार्य के विचारों के अनुसार परिवार को भी तिराने वाली जहाज समझकर धारिणी रानी की तरह इनकी अनुकम्पा भाव से सेवा करे। कूर्मा पुत्र केवली की तरह अनुकम्पा भाव से, दया भाव से परिवार की पूरी सेवा

करना आवश्यक है। परिवार मे रहना और परिवार की सेवा नहीं करना—इस सेवा को बेगार व बेकार समझना व आर्तध्यान करना महज़ है।

(ग) धन का लोभ व मोह—इस सबध मे यह चितन करना चाहिए ॥
“धन का लोभी सर्प है बनता, धन की वह रखवाली करता है।

6 (क) श्री जवाहराचार्य ने व वर्तमान श्री नानेशाचार्य ने प्रमु भृः को मोक्ष प्राप्ति का बड़ा साधन माना है।

(ख) “सिद्ध ध्यान से पाप है कटता। सिद्ध ध्यान से रिद दः मिलता।” दृढ़ प्रहरी ने चोरी हत्या और महापापो को पाँच महीनों मे उत्तिलिया व सिद्ध बन गये।

7 अब श्री जवाहराचार्य की दूसरी बात मन मे दया से पाप नहीं है। व निर्जरा होती है। इसका अध्ययन इस प्रकार भी किया जा सकता है—आचार्य भगवन स्वस्थ हो, सुखी हो। सभी सत् स्वस्थ व समतादर्शी हों, अमुक व्यक्ति मासाहार व अंडे खाना छोड़े, अमुक व्यक्ति माता-पिता व आज्ञाकारी व विनयवान बने। अमुक सत् का सकट दूर हो। अमुक दूर को परमात्मा सुबुद्धि दे, सुमति दे तथा सम्यक् ज्ञान दे। सभी देवता दूर करे। अमुक व्यक्ति का भला करे।

8 श्री जवाहराचार्य की तीसरी बात—तन सेवा मे तीन तिराने का जहाज—साधु-साध्वी, माता-पिता, सास-ससुर, वृद्ध-विकलाग व्यक्ति, व लूले-लगड़े, रोगी, अबाल व अबोध पशु-पक्षी और दुखी जीव सरार-गण से तिराने वाली जहाज के समान हैं। इनकी अनुकम्पा भाव से संग दूर से मनुष्य ससार सागर से तिर जाता है।

इनकी सम्यक् सेवा से पुण्य की बहुत कमाई व कर्मों की दूर निर्जरा होती है किन्तु सेवा को बेगार समझने वाला आर इस कार्य के दूर आर्तध्यान करने वाला कभी-कभी इस कार्य से अधिक पुण्य छो टेगा। व पाप कमा लेता है।

9 पश्चात्ताप से प्रसन्नचन्द्र मुनि, चण्डलद्राचार्य और दृढ़ प्रहरी तरह बहुत से पापों को क्षण भर मे नष्ट कर सकता है। पश्चात्ताप व पानी की तरह मनुष्य के शरीर रूपी कपड़े के सब पापों को दूर करता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जा सकता है—“मैंने अमुक व्यक्ति दूर कर दिया, महापाप किया। मुझे इसके लिए धिक्कार है। मैं इन्हें दूर कर

तप कर्लगा या अमुक वस्तु खाना छोड़गा। मैंने भूल से या जान बूझकर अमुक व्यक्ति से इतने रुपये या सामान ठगे, मैं महापापी हूँ, हो सकेगा तो उसके रुपये लौटाऊगा। मैंने अमुक व्यक्ति की नौकरी छोड़ायी, हो सकेगा तो मैं उसकी सहायता करूँगा। अति लोभी को दुर्गति में जाकर भारी दड़ सहना पड़ता है। मैंने रिश्वत ली। मैंने मुफ्त में अमुक व्यक्ति का धन खाया, पाप किया। दूसरे का धन मुफ्त में या धोखा देकर या बहुत अधिक ब्याज लेकर मैंने एक प्रकार से दूसरों का खून चूसा। मैं इन सबका पश्चात्ताप करूँगा और करता हूँ।

10 कषाय मुक्ति ग्यारहवा भाग मे 'ज्ञेय, हेय, उपादेय' इस शीर्षक मे दस नियम दिये हैं उन्हे हमेशा पढ़िये।

11 दूसरों पर व्यवहार में दिखते हुए अन्याय को रोकने के लिए यथाशक्ति, यथा मर्यादा, अनुकम्पा भाव से शुभ प्रयास करना हमारा परम और पवित्र धर्म है।

12 धन के आठ नियम—1 उपादान रूप मे आने वाला धन अवश्य आता है। 2 अशुभ कर्म से जाने वाला धन रुक नहीं सकता। 3 धन के बिना भी शुभ कर्मों के उदय से सुख मिलता है। 4 धन होते हुए भी सभी अशुभ कर्मों से दुख मिलता है। 5 धन होते हुए भी योग नहीं हो तो काम नहीं बनता। 6 धन नहीं होते हुए भी होने वाले काम के लिए कहीं से धन आता है तथा वह काम अवश्य बनता है। 7 धन दान-पुण्य से ही आता है। 8 धन का लोभी सर्प बनकर उसकी रखवाली करता है।

13 कभी-कभी कर्ज चुकाने के लिए पशु का जन्म लेना पड़ता है।

14 आम के पेड़ व दान का शुभ फल बहुत समय तक मिलता है।

15 पति-पत्नी को भी अपने लेन-देन का हिसाब किसी-न-किसी रूप में चुकाना पड़ता है।

सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा ।
ममता अरु इच्छा छोड़ूगा ॥
समता रखकर कर्म काट कर ।
सिद्धों का पद प्राप्त करूगा ।

परिवार मोह

परिवार नहीं अपना होता ।
 परिवार पराया है होता ॥1॥
 जब लेन-देन बाकी नहीं रहता ।
 तब परिवार अलग हो जाता ॥2॥
 कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता ।
 कर्म दंड से बचा न सकता ॥3॥
 कोई हमेशा साथ न रहता ।
 मर कर अगले घर वह जाता ॥4॥
 शत्रु भी घर में जन्म है लेता ।
 वह अपना बदला है लेता ॥5॥
 सब अलग-अलग है, अलग-अलग हैं ।
 अलग-अलग है, अलग-अलग है ।
 अलग-अलग है, अलग-अलग है ॥6॥
 परिवार मोह से कुतिया बनता ।
 मोह छोड़ता, वह सिद्ध बनता ॥7॥
 परिवार है साथी नहीं मेरा ।
 परिवार है साथी कर्मों का ॥8॥
 मोह छोड़ूगा, सिद्ध बनूगा ।
 सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा ॥9॥

नोट—कषाय मुक्ति तीसरा भाग मे सेवा धर्म, कर्म सिद्धात और इन
 ध्यान पर काफी सामग्री दी हुई है।

मोक्ष के पाँच मार्ग

1. दुर्भावना से बचना ही मोक्ष का प्रथम मार्ग है। इसमें
 है—‘सबका भला हो।’ इस सूत्र को खूब जपना चाहिए, इसमें
 सद्भावना रोम-रोम मे रम जाए तथा जिससे पाप वधने वाले दर्शन हों
 जीव बच जाए। तन्दुल मत्स्य कुछ भी हिसा नहीं करता, इसमें
 दुर्भावना के कारण नरक में जाता है। इसका जाप इस प्रकार होना चाहिए—
 सकता है—‘अमुक व्यक्ति का भला हो।’

2 दूसरा सूत्र इस प्रकार है—जीव पर अनेक दूसरे जीवों का अनेक प्रकार का ज्ञात व अज्ञात ऋण चढ़ा हुआ है। उसे नि स्वार्थ भाव से दया, दान और सम्यक् सेवा द्वारा उतारो। मुनि गजसुकुमाल ने निन्यानवे करोड़ जन्मों के बाद अपना आग से जलाने वाला पाप समता-भाव से काटकर मोक्ष प्राप्त किया था। वैदिक सस्कृति में भी बताया गया है कि जीव माता-पिता आदि का ऋणी बने बिना जन्म नहीं ले सकता। ‘ऋणम् वई जाय मान।’

3 अपने सभी पापों को बार-बार याद करके पश्चात्ताप द्वारा तथा प्रभु भजन द्वार काट लो।

4 सिद्धों का ध्यान करो। सिद्धों के ध्यान से दृढ़ प्रहारी ने उसी एक जन्म में सब हत्या के महापापों को भी काटकर प्रभु भजन से मोक्ष प्राप्त किया था।

5 ‘सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा’ इस सकल्प को जाप द्वारा मजबूत बनाओ। इस सकल्प से सिद्ध पद प्राप्त होता है।

चितन-मनन की चार बातें

1 परिवार नहीं किन्तु पश्चात्ताप कर्म दड़ से बचा सकता है। दृढ़ प्रहारी ने गाय, ब्राह्मण, गर्भवती स्त्री और बालक की हत्या का पाप पश्चात्ताप और प्रभु भजन से नष्ट किया और मोक्ष गए। अर्जुनमाली ने 1141 मनुष्यों की हत्या का पाप पश्चात्ताप और समता से काटा और मोक्ष गए।

2 (क) परिवार, पिता, पुत्र आदि कोई भी कुछ भी मुफ्त में नहीं देता। उसका बदला पहले या बाद में, किसी जन्म में तथा किसी-न-किसी रूप में चुकाना ही पड़ता है।

(ख) दूसरों का धन मुफ्त में खाने वालों को तथा चोरी या उचित से अधिक कीमत लेकर लाया हुआ धन मनुष्य को बरबाद कर देता है या उस मनुष्य को मृगा लोढ़ा अर्थात् बिना हाथ पैर के शरीर वाला मनुष्य बनाता है। मुफ्त में खाना छोड़ो। दया भाव से दूसरों का उपकार करो।

3 परिवार मोह मेरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया घनी, उसका पिता भैसा बना। मोह मेरकर मनुष्य पशु भी बनता है।

4 परिवार मोह छोड़ने वाली मरुदेवी माता सिद्ध घनी।

मुफ्त में कुछ नहीं मिलता

संसार में किसी भी जीव को किसी भी जीव से यहाँ तक कि मैं भी एक दूसरे को मुफ्त में कुछ नहीं मिलता। उनके लेन-देन का हिसाब कर्मों के नियमों के अनुसार कर्मों के अरूपी बही खातों में स्वयं अरूपी लेखनी के द्वारा अंकित हो जाता है और वह लेन-देन के रूप में या बदले हुए रूप में कर्मों के माप-तोल के अनुसार चुपचाना है। इसमें छूट नहीं होती किन्तु वह कर्म पश्चात्ताप द्वारा नष्ट हो सकता है।

कोई मनुष्य पहले, कोई बाद में दाता और पात्र अर्थात् निर्मि-
उपादान या साहुकार और आसामी (कर्जदार) बनता रहता है। मुझे यह
कुछ आता है और न कुछ जाता है।

समझदार मनुष्य मोक्ष की इच्छा रखने वाला धन आने पर नहीं और खो जाने पर रोता नहीं है। वह जानता है कि जितना राह में लिखा है उतना तो ईमानदारी से भी मिल जाएगा। इसलिए मुक्त खाना छोड़ो। मुफ्त में जरूरतमंदों को खिलाना सीखो। दान देना चोरी, ठगी, लेन-देन आदि का बदला पहले या बाद में लेना-देना अत धन प्राप्त करने के लोभ से बचना चाहिए तथा दान, सेवा द्वारा से अपना अज्ञात कर्जा चुकाना चाहिए। यही धर्म और मानव का मर्द है।

मोक्ष मार्ग में रुकावटें

1 जो मनुष्य अपनी भूल को स्वीकार नहीं करता और दूसरे समझदार लोगों से पूछकर उसमें सुधार नहीं करता वह गोँड़ नहीं पाता।

2 जो मनुष्य धन के लोभ में दूसरों को अनीति से लूटता है वह
नहीं जा पाता।

3 जो मनुष्य अपने धन, बल, बुद्धि और मान का दिया है,
उसकी बुद्धि का दिवाला निकल जाता है और उसका अहंकार
नहीं पहँचने देता।

मोक्ष का दरवाजा

पश्चात्ताप से पाप कटता है तथा मोक्ष का दरवाजा खुलता है। पश्चात्ताप इस प्रकार किया जा सकता है—“अरे भाई मोहन ! मुझे क्षमा करो, मैंने बहुत पाप किए हैं। मैंने तुम्हे ठगा है, धोखा दिया है। उसके लिए मुझे धिक्कार है। मुझे माफ करो।

बहुत दिनों तक बार-बार इस प्रकार पश्चात्ताप करने से पाप नष्ट होते हैं। दृढ़ प्रहारी, अर्जुनमाली आदि ने इसी प्रकार पश्चात्ताप करते हुए अपने पूर्वकृत पापों को नष्ट किया और मोक्ष पद को प्राप्त किया।

किसी चितन की पुनरावृत्ति होना भूल नहीं है यह स्वाध्याय तप का अग है।

भगवान महावीर के तीन सिद्धांत

1 महाहिसा से बचो और अहिसक बनो। मकान बनाने, जमीन खुदवाने, चुने आदि के भट्टे, भुजिया आदि बनवाना, बैल गाड़ियों किराये पर देना, दास-दासी का व्यापार आदि ये महाहिसा के कार्य हैं। कसाईखाना, पशु-धध आदि महाहिसा के कार्य हैं। इनसे बचो और अहिसक बनो।

2 महापरिग्रह से बचो। जीवन की आवश्यकता पूरी हो उसी में सतोष रखो। अधिक धन, जमीन, मोटर गाड़ियों आदि मत रखो। अल्प परिग्रही बनो।

3 एकान्तवाद-धर्म नहीं है। सब कुछ नियत नहीं है। मैं जो सोचता हूँ या कहता हूँ या करता हूँ वही ठीक है इस एकान्तवाद को छोड़ो और अनेकातवादी बनो।

सब कुछ नियत नहीं है। मैं जो करता हूँ, कहता हूँ वह गलत भी हो सकता है। दूसरों की बात सुनो, सोचो, समझो, यह अनेकातवाद है। यदि सभी कुछ नियत होता तो कर्मों के दो भेद निकाचित और अनिकाचित क्यों किए जाते ? सर्वज्ञ नियत को नियत रूप में और अनियत को अनियत रूप में देखते हैं।

ध्यान एक अनुशीलन

ध्यान

ध्यान, ध्यान ही है। वह ध्येय नहीं है। वह साध्य नहीं है। अन्तिम लक्ष्य नहीं है। वह ध्येय साध्य या अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति नहीं है, क्रिया है, उपाय है, एक मार्ग है।

जिस प्रकार गंतव्य स्थान पर पहुँचने के अनेक मार्ग होते हैं, कोई लम्बा, कोई छोटा, कोई कठिन और कोई सरल व सुगम होता है। प्रकार जीवन के लक्ष्य प्राप्ति के भी अनेकान्त सिद्धान्तानुसार हो सकते हैं। जैसे विपश्यना, त्राटक ध्यान, नासाग्र ध्यान, इत्यर्थ ध्यान, हठ योग, सहज योग, समीक्षण ध्यान आदि। इनमें से रुद्र अपनी-अपनी मान्यता, योग्यता एवं परिस्थिति के अनुसार किसी एक को अपना लेता है और वह भी कुछ-कुछ परिवर्तन के साथ।

भगवान् महावीर के जैन आगमों में चार ध्यान वर्ताये गये हैं। अनेक भेद-उपभेद हो सकते हैं। इन चारों में प्रथम दो अर्द्ध-रौद्रध्यान सर्वथा हेय हैं और अतिम दो धर्मध्यान और शुक्लध्यान हैं। ध्यान सूत्र—जिस विषय का ध्यान करना हो उसका एक वाक्य या स्वाध्याय सूत्र बना लीजिये। कुछ सूत्र इस पुस्तक द्वारा गये हैं।

स्थान—स्थान जहाँ तक हो सके शात, एकान्त और मरण से उपसर्गों से मुक्त होना चाहिए। वह शोर से दूर हो और मन दा आकर्षित करने वाला नहीं हो।

आसन—शरीर स्थिर दशा में हो। ध्यान सीधे लेटकर, या शरीर की कमजोरी के कारण लेटकर भी किया जा सकता है। व स्थिर रह सके वह सुखासन ही उचित आसन है।

समय—रात्रि का समय या सवेरे उठते ही नृदीदय तक उषाकाल का शांत वातावरण अधिक उपयुक्त है। ध्यान निर्दिष्ट प्रतिदिन किया जावे।

पुनरावृति—स्वाध्याय या साधना के सूत्रों को दिन दोहराना चाहिये। केवल आधे घंटे धर्मध्यान और साढ़े लेंटर रौद्रध्यान का अभ्यास साधक को कितनी सफलता देगा, यह

विचारणीय बात है। अपने सूत्रों को सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय स्मरण कीजिये। दिन में समय निकाल कर कई बार दोहराइये।

प्रारम्भिक तैयारी—दुख चेतना, सुख-चेतना एव आर्त-रौद्रध्यान से निवृत्ति की साधना के लिये अपने अवगुणों की सूची बनाइये। इनके सबध में गहरा अध्ययन एव चितन मनन कीजिये। इन अवगुणों को दूर करने के लिये कुछ सक्षिप्त छोटे वाक्य या सूत्र बना लीजिये। उन सूत्रों को कुछ महीनों तक बार-बार दोहराते रहने और जीवन में उतारने से आत्मा निर्विकार बन सकेगी।

साधना का प्रारम्भ—मन बहुत चचल है। मन को वश में करने के लिये कई प्रकार के ध्यान किये जाते हैं। किन्तु आत्म-शुद्धि के लिये साधना करने वाले प्राणी को प्रारम्भ से ही किसी एक दुर्गुण-निवृत्ति की साधना के लिये अच्छा यह रहेगा कि प्रारम्भ से ही उस दुर्गुण के विरोधी भाव का अध्ययन, चितन, ध्यान, जप, स्वाध्याय एव बार-बार स्मरण किया जावे और पूर्ण सजग रहकर जीवन की प्रत्येक छोटी या बड़ी सभी घटनाओं में उस दुर्गुण से बचा जावे।

सर्वप्रथम क्रोध निवृत्ति हेतु समता के किसी सूत्र का ध्यान करना प्रारम्भ किया जावे। इसका एक सूत्र है—“चोट, रोग या गरीबी को अपने पाप-कर्म का फल मानो। दुख में समता रखते हुए दुख को पाप-कर्म काटने की दवा मानो। उसमें निमित्त बनने वाले को पाप-कर्म काटने की दवा देने वाला डॉक्टर मानो।”

कुछ दिनों या महीनों की साधना के बाद क्रोध-निवृत्ति में सफलता मिल ही जावेगी। सफलता देरी से मिले तो भी धैर्यपूर्वक साधना में लगे रहे।

क्रोध निवृत्ति के बाद किसी दूसरे विकार निवृत्ति की साधना प्रारम्भ कर दीजिये और उसमें सफलता मिलने के बाद किसी तीसरे अवगुण-निवृत्ति का प्रयास प्रारम्भ करे। इस प्रकार एक के बाद दूसरे की ओर दूसरे के घट तीसरे की निवृत्ति में लगे।

साधना में सफलता के लिये जितनी आवश्यकता एकाग्रता की है उससे भी ज्यादा महत्त्व स्वाध्याय के सूत्रों की पुनरावृत्ति का है। “जितनी पुनरावृत्ति, उतनी ही सफलता।”



विकार निवृत्ति की साधना में निम्नलिखित शब्द-चित्र द्वारा भी काफी सहायक होता है।

क्रोध	दुख-चेतना	अहंकार
दुर्भावना	सुख-चेतना	सद्गु
परिवार-मोह	इच्छा	विकार

इस शब्द-चित्र या मानस-चित्र को बार-बार देखने से, पढ़ने से, बार-बार लिखने से यह मानस पटल पर अकित हो जाएगा, बार-बार आँखों के सामने आने से अवचेतन मन में उत्तर कर जाएगा, अग बन जाता है।

आर्तध्यान और रौद्रध्यान की निवृत्ति की साधना में धर्मादी से ज्यादा साधना तो बन ही जाती है। धर्मध्यान की दरां भगवान् महावीर की आज्ञाओं, उनके निर्देशों का प्रतिदिन स्फुरण जाना आवश्यक है।

साधक पिछस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानों दा र्हने कर सकता है। इनका वर्णन जैन आगमों में विस्तार से दिया गया है। पंचपरमेष्ठी के गुणों का चित्रन एवं ध्यान है।

नवकार मन्त्र का बार-बार जप व ध्यान करना भी धर्मादी साधना है। इसके लाख जप करने से तीर्थकर नाम कर्म का रूप हो सकता है। ऐसा पुस्तकों में उल्लेख है।

ध्यान का प्रथम मूल लक्ष्य विकार-निवृत्ति ही है। विकार-निवृत्ति, विशेष साधना की विधि और उसके लिये कुछ स्वाध्याय-सूत्र इनके अन्तिम भाग में दिये गये हैं।

विकार निवृत्ति के बाद आत्म-ध्यान में काफी सफलता होती है। आत्म-साधना के लिये प्रथम देहात्म-भेद-ज्ञान और आत्म ज्ञान ही आवश्यक है। उसके बाद आत्म-ध्यान प्रारम्भ करना ठीक है।

सब ध्यानों में निज आत्मा का ध्यान ही प्रवान ह। इससे अंतर्मुखिता से अनासक्ति, अनासक्ति से समता, समता से अद्वितीयता में परमात्म-पद की प्राप्ति होती है।

देहात्म-भेद-ज्ञान

देह-आत्म-भेद-ज्ञान का महत्त्व सभी धर्मों ने माना है। तो इसका इतना महत्त्व बताया गया है कि शिवमूर्ति मुनि द्वारा

कुछ भी ज्ञान नहीं होते हुए भी केवल देहात्म-भेद-ज्ञान की अनुभूति से कि जिस प्रकार छिलके से दाल अलग होती है उसी प्रकार शरीर से आत्मा अलग है, उन्हें केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो गई थी।

शरीर और आत्मा दोनों ऊपर से एक ही शरीर के रूप में दिखाई देने पर भी वास्तव में दोनों अलग-अलग हैं। शरीर तो पानी, मिट्टी, आग, हवा और आकाश—इन पाँच तत्त्वों से बना है। आत्मा अति सूक्ष्म अमूर्त चेतन द्रव्य है जो अशरीरी और पूर्णतः ज्ञान स्वभावी और आनन्दधन है। यह अजर, अमर, अविनाशी है, जिसका छेदन, भेदन आदि नहीं हो सकता।

बहुत से लोगों को शरीर और आत्मा के अलग-अलग होने का पता भी नहीं है और जिन्होंने इस विषय में कुछ पढ़ा या सुना है उन्हे इसका विश्वास भी जल्दी नहीं होता। क्योंकि आत्मा प्रत्यक्ष रूप में दिखाई नहीं देती और जब तक लोग किसी चीज़ को देख नहीं लेते, उसकी अनूभूति नहीं कर लेते या उसके पुष्ट प्रमाण नहीं मिल जाते, तब तक वे सहसा उस पर विश्वास नहीं करते।

जिस प्रकार दूध मे धी मिला हुआ रहता है किन्तु वह दिखाई नहीं देता उसी प्रकार शरीर मे आत्मा व्याप्त है किन्तु वह दिखाई नहीं देती। किसी लोहार की दुकान मे तेज आग मे खूब तपा हुआ लाल-लाल लोहे का गोला देखने वाला मनुष्य समझ जाता है कि लोहा अलग चीज है और गोले की ललाई दूसरी चीज है। उसी प्रकार चिन्तनशील ज्ञानी पुरुष समझता है कि मिट्टी की बनी हुई देह एक चीज है और इस देह को चेतना, जीवन, शक्ति आदि देने वाली आत्मा दूसरी चीज है। वह शरीर मे होने वाली अनेक शारीरिक एव मानसिक क्रियाओं के चितन-मनन द्वारा शरीर और आत्मा के अलग-अलग होने की अनुभूति करने लगता है।

जिस प्रकार तिलो मे तेल, वनस्पति मे शहद, फूलो मे सुगन्ध, काष्ठ मे अग्नि, दूध मे धी मिला हुआ है उसी प्रकार इस जड भौतिक देह मे आत्म-प्रदेश मिले हुए है। कुछ भौतिक पदार्थों की मिलावट को तो अलग करके देखा जा सकता है किन्तु शरीर से आत्मा को पृथक् करके इन भौतिक औँखो से नहीं देखा जा सकता। आत्मा के अस्तित्व की तो केवल अनूभूति ही की जा सकती है। शरीर के अन्दर से आत्मा के निकल जाने पर शरीर की क्रियाएँ बद हो जाती हैं। उसका हिलना-डुलना, चोलना, देखना आदि सब समाप्त हो जाते हैं और वह निर्जीव देह जला दी जाती है या गाड दी जाती है।

आत्मा की अमरता के कारण ही प्राणी संसार में दृष्ट-दृश्य हैं और अपने पिछले किए हुए पाप या पुण्य का फल अगले जन्म या सुख के रूप में भोगते हैं। वर्तमान काल में पाप करने दासे हैं का अत्यन्त समृद्धिशाली होना और दूसरे पुण्य करने दृष्ट-दृश्य सड़-सड़ कर जीवन बिताना आत्मा की अमरता और उस प्राणी के पुर्व लेकर पूर्व जन्मों के कर्म फल भोगने के ही प्रमाण है।

कुछ लोग कहते हैं कि यदि आत्मा अमर होती आंतरिक दृष्टि तो हमारे पूर्वजों में से कोई तो कभी हमारे पास आकर हम कुछ देता। इसके उत्तर में ज्ञानी पुरुषों का कहना है कि देवलोक इतना और सुखद है और मनुष्य-लोक उसकी तुलना में इतना दुर्गम्य दुखद है कि देवलोक के देवता यहाँ आना नहीं चाहते। फिर भी दृष्टि देव आकर अपनों की सुधि लेते हैं। सभी धर्म ग्रन्थों में ऐसे उल्लेख हैं कि देवता अपने पूर्व जन्म के राग-द्वेष से जुड़े हुए प्राणियों की रूप है। जैन कथाओं में शालिभद्रजी को उनके पिता द्वारा देवलोक से असम्पत्ति के बराबर भेजे जाने का वर्णन आया है। और नरक से यहाँ आने नहीं दिया जाता।

ऐसी घटनाएँ भी घटी हैं जिनमें एक प्राणी ने अपने पूर्व अपरिवार के लोगों को अच्छी तरह पहचान लिया है आर उस जन्म के घटनाओं का भी परिचय दिया है। ये सब बातें आत्मा के अर्थात् उसकी अमरता की और उसके पुनर्जन्म की सत्यता को प्रमाणित किसी प्राणी का विकलाग, लूला, लंगड़ा, अंधा होकर जन्म लेना आत्मा के पूर्व में होने का ही प्रमाण है।

किसी केवलज्ञान प्राप्त व्यक्ति का आयुष जय पूर्ण हो जाता है और उसके कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो वह समुद्घात करने के बाली सुमद्घात कहते हैं। इसमें वह आत्मा स्वयं का द्विनाश करती है।

ऐसे अवसर पर उस आत्मा के प्रदेशों का लुछ भाग उत्तर और शेष भाग बाहर आकाश तक फैल जाता है। इससे गर्वता भिन्न होना प्रमाणित होता है।

आत्मा-ज्ञान

आत्मा अति सूक्ष्म, अमूर्त, अशरीरी, ज्ञान-स्वभावी संसार की किसी भी वस्तु से इसका सादृश्य नहीं है। यह संसार

अद्भुत ज्योति है। किन्तु अग्नि, दीपक, बिजली आदि की ज्योति की भौति इसको मानकर आत्म-ध्यान करना सही ध्यान नहीं है। वह आत्मा ध्यान नहीं है। ऐसा ध्यान तो मात्र पुद्गल का ध्यान नहीं है।

आत्मा अरूपी चेतन द्रव्य है। इसका लाल, पीला, सफेद आदि कोई रग नहीं है। आत्म ध्यान करते समय किसी रग का ध्यान करना जड़ पुद्गल का ध्यान ही है।

आत्मा अमूर्त है, अरूपी है। इसके कोई शब्द रूप, रस, गध, स्पर्श नहीं है। यह चर्म-चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। ससार के किसी भौतिक पदार्थ से इसकी उपमा नहीं दी जा सकती। इसको केवल, ज्ञान द्वारा ही जाना जा सकता है।

आत्मा के ध्यान करने के सबध मे इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि जिस प्रकार सिद्धो का ध्यान उनके गुणों के माध्यम से ही किया जा सकता है उसी प्रकार आत्मा का ध्यान भी आत्मा के गुणों के माध्यम से ही किया जा सकता है। आत्मा मे चेतना, ज्ञान, सवेदनशीलता, शक्ति आदि है। उन्हीं के ध्यान से आत्मा का ध्यान किया जा सकता है।

आत्मा के स्वरूप का, उसकी शक्ति का यथार्थ ज्ञान ही आत्म-दर्शन के नाम से पुकारा जाता है।

मन सूक्ष्म होते हुए भी पुद्गल है। वह अमूर्त, सूक्ष्म चेतन आत्मा को नहीं देख सकता। महात्मा विनयचदजी ने कहा है—

अनत जिनेश्वर नित नमू अद्भुत ज्योति अलेख ।

ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख ॥

सूक्ष्म थी सूक्ष्म प्रभु, चिदानन्द चिद् रूप ।

पवन शब्द आकाश थी, सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप ॥

असल मे दीर्घकाल के आत्म-ध्यान के अभ्यास से आत्मा स्वय ही स्वय को जान व पहचान सकती है।

आत्मा के ध्यान मे मुख्य रूप से तीन बातों की साधना करनी चाहिये। प्रथम, शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। दूसरी, यह शरीर मेरा नहीं है। तीसरी, इस शरीर मे जो चेतना है वही मैं (आत्मा) हूँ।

आत्म ध्यान की विधि

1 आप सीधे खड़े होकर या सीधे बेटकर या सीधे लेटकर, अपने शरीर को देखकर सोचिये—“यह शरीर मैं नहीं हूँ। यह शरीर अलग है, म

अलग हूँ।” फिर शरीर के किसी भाग को छू कर उसमें द्यदः नृ^१
की अनुभूति करते हुए सोचिये—“इस शरीर में यह जो सूक्ष्म वृत्त
मैं (आत्मा) हूँ।” कुछ समय तक इस चेतना की एकाग्रता^२
करते हुए चितन करते रहिये—“यह जो सूक्ष्म चेतना है वह मैं मैं

मनोविज्ञान बताता है कि मनुष्य जिस पिचार को द्वारा-द्वारा
है वह विचार उसके मन में स्थायी रूप से जम जाता है। उन
संस्कार बन जाता है। वह अवचेतन मन में उत्तर जाता है और इन
जीवन में आचरण का अग बन जाता है।

प्रारम्भ में देहात्म-भेद में श्रद्धा नहीं होने वाले व्यक्ति, वे यह
साधना में कुछ महीनों तक लगे रहे तो मनोवेज्ञानिक नियम के
उनमें श्रद्धा उत्पन्न हो जावेगी।

इसी प्रकार इस मानव देह में व्याप्त सवेदनशीलता, शक्ति^३
अन्य गुणों की अनुभूति द्वारा आत्मा को अर्थात् रक्षा को प्राप्त नहीं
पहिचाने। स्वय के स्वरूप एवं शक्ति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं।
धीरे-धीरे देहासक्ति घटे और आत्मा का विकारा हो राखे।

जिस प्रकार गुणों के चितन से सिद्धों का रूपांतरित ध्यान ॥ १ ॥
है उसी प्रकार ज्ञान, सुख, अगुरुलघुत्व अपने शरीर प्रभाव आया ॥ २ ॥
आदि के चितन द्वारा आत्मा का ध्यान किया जा सकता है।

स्वय को कर्म मुक्त मानकर, कल्पना द्वारा लोक को आगमन
मानकर, सिद्धों की भौति स्वय का भी सिद्ध रूप में ध्यान दिया जा सकता
है।

2. कल्पना कीजिये कि आपके सामने आपणा योर्दि नृ^४
मनुष्य बैठा है। आप उसके शरीर में व्याप्त, किन्तु उसके वर्ण^५
उसकी आत्मा की कल्पना कीजिये। चितन कीजिये—“उन मनुष्यों^६
है, सवेदना है, शक्ति है, ज्ञान है, जीवन है, वहीं इसकी प्राप्ति^७
इस प्राणी की आत्मा और सिद्धों की आत्मा समान है। कर्म-^८
यह भी सिद्ध बन सकेगा।” आप उसके शरीर का, उसके द्वारा^९
नहीं करे। किन्तु उसके आत्म तत्त्व का चितन करें। ध्यान ॥ ३ ॥
प्रथम देहात्म भेद श्रद्धा बढ़ेगी। दूसरे, उससे गमन-दूसरी वृत्ति^{१०}
इस चिंतन में दोनों का ही लाभ होगा।

यहाँ इस वात का ध्यान रखें कि पुरुष, वृत्ति दृष्टि,
स्त्रियाँ, स्त्रियों के शरीर में आत्मा के अन्तर्द्वारा जो नियम ॥ ४ ॥

3 पशु-पक्षियों के शरीर में आत्म तत्त्व का चितन करने से उनके प्रति आप में दया भाव की उत्पत्ति भी सम्भव हो सकेगी। कीड़ों-मकोड़ों में आत्म तत्त्व का चितन करने वाला व्यक्ति अनेक प्राणियों की अनावश्यक हिस्सा से वच सकेगा।

4 पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय, अग्निकाय एव वायुकाय मे भी आत्म तत्त्व का विचार करने वाला व्यक्ति इनकी अनावश्यक हिसा से दब सकेगा।

5 आत्म-ध्यान इस प्रकार भी किया जा सकता है—“इस शरीर में सर्वेदनशीला है वही मैं (आत्मा) हूँ।”

6 इस शरीर मे जो क्रिया-शक्ति है वही मै हूँ।

7 इस शरीर का सचालक मैं ही हूँ।

8 इस शरीर मे जो जीवन है वही मै हूँ। मेरे बिना यह निर्जीव, निष्क्रिय, वेकार हो जाता है।

9 जो सब कुछ जानता है, जो ज्ञान-स्वभावी है, चितन के साथ-साथ जिसमें ज्ञान प्रकट होता रहता है वही ज्ञान का भडार मैं हूँ।

10 जो स्वयं का ध्यान करते हुए स्वयं में लीन होकर आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता वही में (आत्मा) है।

11 आत्मा हूँ आत्मा हूँ देह से मे भिन्न हूँ।

कर्म मुक्त होने पर, मैं सिद्ध हूँ, मैं सिद्ध हूँ।

विकार-निवृत्ति की साधना

आत्म ध्यान की भाँति कषाय या विकार निवृत्ति की साधना भी आत्मा पर आये हुए विकारों को हटाने के लिये अत्यावश्यक है। इसमें 1 अपने अवगुणों की सूची बनाई जावे। 2 उनके लिये पश्चात्ताप किया जावे। 3 किये हुए पापों के लिए प्रायश्चित्त लिया जावे। जैसे कुछ समय के लिये मीठा या नमक छोड़ना, तप करना, दान देना आदि। 4 उन विकारों के घरे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जावे। जैसे उस विकार के प्रकार, कारण, कार्य, हानि, उसके त्याग से लाभ कुछ उदाहरण हैं। उनसे निवृत्ति होने के उपाय सोचे जावे। 6 निवृत्ति की साधना की जावे।

इस साधना में स्वाध्याय का प्रमुख स्थान है। हमार अन्दर साधारणतया जो अवगुण पाये जाते हैं उनमें से कुछ से निवृत्ति पाने एं लिये कुछ सूत्र यहाँ दिये गये हैं जिनका निष्प दिन ने कई दार चितन द रखाध्याद दिल जाए।

स्वाध्याय सूत्र

1. क्रोध—चोट, रोग, गरीबी और कष्ट को अपने पाप-दाने मानो। दुख में समता रखते हुए दुख को पाप-कर्म काटने की ददा उसमे निमित्त बनने वाले प्राणी को पाप-कर्म काटने की ददा देन डॉक्टर मानो। इससे दुख चेतना और क्रोध से बचो।

2 दुर्भाविना—दूसरों को दुख देने का विचार करने पाला और को दुख मे देखकर खुश होने वाला और केवल दुर्भाविना के द भयंकर नरक गति के कर्मों का बंध करता है। दुर्भाविना की निष्पत्ति हमेशा दस-बीस मिनट इस सूत्र को दोहराया जावे—“रायका भ सबका भला हो, सबका भला हो।”

3 परिवार-मोह—किसी प्राणी को उसके पाप-कर्म-फल-भी तीर्थकर भी नहीं बचा सकते। परिवार बेचारा क्या करे ?

4. सुख चेतना—भौतिक सुख और काग वासना सुरा भ सुखाभास है। सभी शारीरिक सुख प्रारम्भ से अता तक दुर्रो रो भ “खण्मेत सोकखा, वहुकाल दुक्खा।”

“थोड़े समय का सुख, बहुत समय का दुख।”

5. इच्छा—यदि पुण्य का उदय है तो इच्छा के बिना भी सुरा-की वर्षा होने लगती है। यदि पाप का उदय है तो इच्छा करने कठोर पुरुषार्थ करने पर भी सुख नहीं मिलता। फिर इच्छा-निर करके कर्म क्यों नहीं काटते ?

6 अह—एक प्राणी को भी तुम उसके पाप-कर्म-फल-भोग बचा सकते। फिर शक्ति का अहकार क्यों करते हो ?

अपने निकाचित कर्मों को तीर्थकर भी उन्हे भोग दिना क्यों भी नहीं काट सकते। तुम अपनी शक्ति का अहकार क्यों करते हो ? विनाशकाल मे तुम्हारी ही बुद्धि तुम्हारा विनाश कर देती है। इस अहकार क्यों करते हो ?

7. सग्रह—धन, सम्पत्ति, परिग्रह आदि का सग्रह भा दन, दान, पुण्य, परमार्थ, धर्मार्थ मे दो। जो दान मे दोगे वरी तुम्हारा भा और पर-भव मे तुम्हे मिलेगा।

मरते समय यदि किसी से मोह-नमता रह गई तो मरने द द बिच्छु, छिपकली, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, कोका, भूत, ऐन इर्दद यह

मड़राते रहोगे और दुख पावोगे । दान दो, दान दो, दान दो, सग्रह मत करो, दान दो ।

8 विकथा—दूसरे लोगों की वातों की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषों का कथन, श्रवण, दर्शन, चिंतन, दुनिया भर को स्वार्थ प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपातपूर्ण गन्दी राजनीति आदि की वातों के सच्चे-झूठे समाचार, लेख, भाषण एव आलोचनाओं को पढ़ना और उनके सबध में राग-द्वेषात्मक विचारों में पड़ना विकथा अर्थात् व्यर्थ की कथा है । यह भाव हिस्सा है, अनर्थ दण्ड है, प्रमाद है, असत्य आचरण है । इससे बचने का साधारण उपाय है—मोन और मित-भाषण (कम बोलना) और वास्तविक अचूक उपाय है सत्सगाति, सत्साहित्य का पढ़ना, स्वाध्याय, आत्म-चितन, आत्म-ध्यान एव निस्वार्थ निष्काम शुद्ध पर-सेवा में लगे रहना । विकथा भयकर मानसिक रोग है, इससे बचिये, बचिये, बचिये ।

मुनि गजसुकुमाल आदि के गुणों का चितन कथन विकथा नहीं है । यह गुणानुराग है, प्रमोद भावना है, कर्मों की निर्जरा है और धर्मध्यान है ।

9 शील-पालन—सेठ सुदर्शन की शील रक्षा की ओर विजय सेठ और विजया सेठानी के अखडित शील-पालन की कथा का श्रवण कथन, अध्ययन, अनुमोदन एव ध्यान करने से उत्पन्न होने वाली शील तरगों से दृढ़ यनी शील-भावना को ससार की कोई भी शक्ति खडित करने में समर्थ नहीं है ।

10 “शील, शील, शील” की ध्वनि से, जप से, ध्यान से शील के पुदगल हमारे पास एकत्रित होकर हमें शील पालन में दृढ़ बनाते हैं ।

11 “समता, समता, समता” की ध्वनि जप व ध्यान से समता के सूक्ष्म पुदगल आकर हमें समता पालन में दृढ़ बनाते हैं ।

12 सत्य—साधारण मनुष्य से देवता में देवता स तपस्ची में, तपस्ची से सत्यवादी में अधिक शक्ति होती है । सत्य में हजार हाथियों का घल होता है । सत्यवादी की देवता भी सहायता करते हैं ।

13 देहासक्ति हटाने का सूक्त—यह शरीर भेरा नहीं है । यह नाशदान है । यह रोगों का घर है । यह दुखों की खान है ।

14 परिवार मोह हटाने का सूक्त—जट पुण्य दुन्हार पास नहीं छिपा तुग्हार वया करे ?

अटल सत्य

इस संसार का कोई भी मनुष्य निश्चयपूर्वक यह नहीं करता कि जो कुछ होना है वह अनादिकाल से नियत है। यदि यह यह है तो उस नियत काम के हो जाने के बाद जिस व्यवहार में हुआ है नहीं। अनेकों घटनाएँ नियत नहीं हैं। वे इन्हें यह नहीं कहते हैं में घटती रहती है तथा संसार को बढ़ाने वाले हैं इन्हें यह नहीं रहता है। वास्तव में मनुष्य को व्यवहार में हुआ होना सारांश संसार है और यही अनुकम्पा की इन्हें है यह यह यह अटल से मेरी लिखी हुई कथाय-मुक्ति में हुआ है यह यह कर प्रभावना आदि के रूप में बढ़ावाने वाले हैं यह यह का छूट है।

- प्राप्ति -

